RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2016-2018

AISECT™
GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

The **AISECT Group of Universities** is India's leading higher education group whose mission is to establish world-class and affordable universities at locations that are in dire need of quality higher education. The Group's core ideology across all its higher education endeavors has been to groom its students into responsible, proficient and ethical professionals. With over three decades of unparalleled experience in skill development and job placement, the Group offers its students immense opportunities through its extensive industry linkages and expertise in entrepreneur development.

Awards & Accolades

- Most Innovative University of Central India by News 18
- RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
- ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
- World Education Summit 2017 (Dubai)
- World Education Summit 2016 (Dubai)
- World Education Summit 2015 Award
- NIELIT Award 2014
- ASSOCHAM Excellence in Education Award 2014

32 Skill Courses in these skill-based universities

9 Centres of Excellence and Skills housed in the universities

15 International & 30 National Level collaborations
Huge **in-house funding** to promote research

State of Art Studio and Centre for **e-Learning**
Students from **23 states** and **10 countries**

First to establish **IoT Lab by Frugal and Intel, Cloud Computing Lab** by **Microsoft**

Where **aspirations** become **achievements!**

nirf INDIA RANKINGS 2017 (Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India) Among all Central, State, Private and Deemed universities
AAA+ Ranking By Engineering Ranking Survey 2017
BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 TOP 600+ BY CAREERS360
BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 TOP 600+ BY CAREERS360
AWARDED WITH AAA RANKING 2017 BY CAREERS360
ANNOUNCED UNDER THE TOP 20 COLLEGES FOR PLACEMENTS BY CAREERCONNECT

Established **Niti Aayog's prestigious Atal Incubation Centre**

Over **1000 papers and 50 books** published by faculty and students

Project Unnat Bharat awarded by **MHRD**

Excellent **Hostel facility, canteen** and **sports facilities** of International standard

Publication of 2 **UGC Approved Copernicus Indexed Journals**
A pool of **400+employers**

Exclusive Campus Radio Channel 90.4 Radio Sanskar
Microsoft Ed-Vantage Platinum Partnership Microsoft

Global University Linkages
• ICE WaRM (Australia) • University of SIGEN (Germany) • NCTU (Taiwan) • Rensselaer Polytechnic Institute (USA) • KAIST (South Korea) • KYIV University (Ukraine) • Tribhuvan University (Nepal) • Benaka Biotechnologies Inc. (USA) • Mol University Eldoret (Kenya)

Our Universities

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE | NCTE | BCI | AIU | Joint Committee : (UGC | DEB | AICTE) | Recognized by : UGC | A NAAC Accredited University

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™
MADHYA PRADESH, BHOPAL (Formerly known as AISECT University)
AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU

AISECT UNIVERSITY™
JHARKHAND, HAZARIBAG AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Bihar, Vaishali AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Madhya Pradesh, Khandwa AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC Approved by : MP. Govt.

AISECT Group of Universities Headquarters :
RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
Tel: +91-755-2499657, 3293214/16/72, 3207080, Fax: +91-755-2429096, Email: aisect@aisect.org, Web: www.aisect.org
For more information, call: **09893350135, 09993233374, 09113342042, 09827948482**

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

अनवरत प्रकाशन के ग्यारहवें वर्ष का 126 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

मासिक पत्रिका

वर्ष 11 ■ अंक 06 ■ पूर्णांक 126 ■ सितम्बर 2018 ■ ₹ 60/–(व्यक्ति) ₹ 150/–(संस्था)

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य

रेखांकित : सोनी पाण्डेय की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय

कविताएँ : पुनिता जैन, वेद हिमांशु,
मानव बजाज, सूर्यप्रकाश मिश्र

समकाल : कथाकाल
कहानी : नोट की चोट : अनीता सक्सेना
चयन : मुकेश वर्मा

विवेचन कथा मध्यप्रदेश : खण्ड-4 : बी.एल.आच्छा

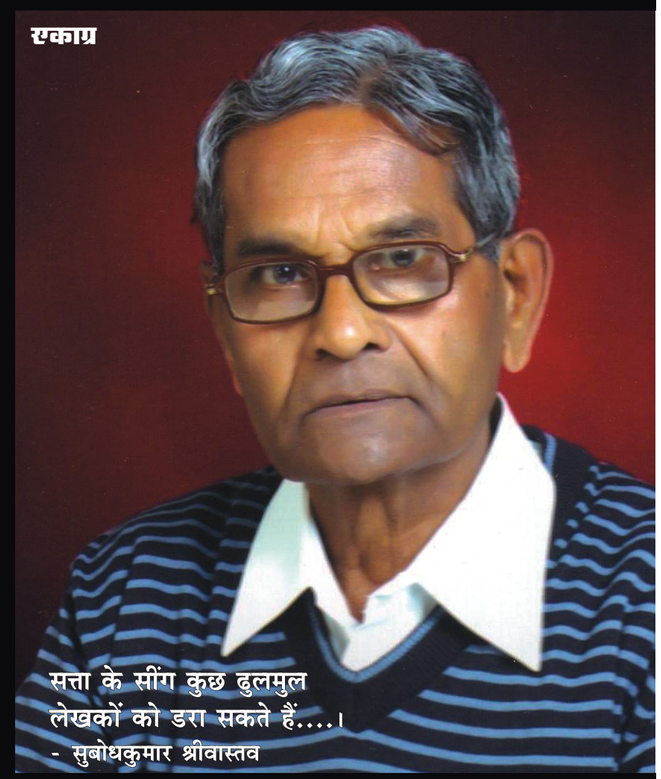

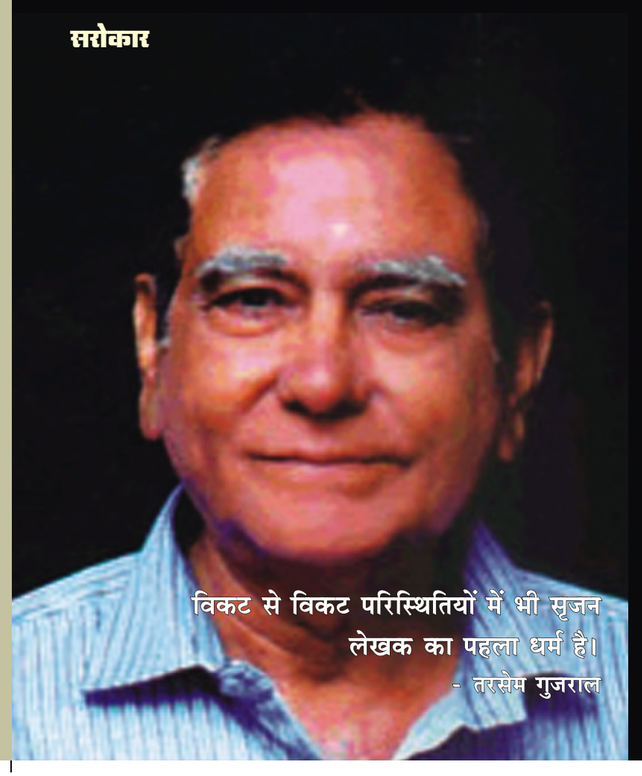

वक्रोक्ति-28
(व्यंग्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)
वक्राभिमुख : सूर्यकांत नागर
व्यंग्याग्र : ब्रजेश कानूनगो
व्यंग्यशीर्ष : काजलकुमार, देवेन्द्र शर्मा,
जवाहर चौधरी के कार्टून
व्यंग्य : शांतिलाल जैन
व्यंग्य लघुकथा : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
और अंत में : श्रीराम दवे

प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल, नई किताबें

ISSN - 2348-8638

वर्ष 11 ■ अंक 06 ■ पूर्णांक 126 ■ सितम्बर 2018 ■ रू. 60/- (व्यक्ति) रू. 150/- (संस्था)

समावर्तन

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/-
संस्थागत प्रति अंक 150/- वार्षिक 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय
आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)
© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन

सितम्बर -2018

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : तू है तो हमारी जन्मकथा है : मुरलीधर चाँदनीवाला 05
अभिमुख : भाषा बीमार है : रमेश दवे 06
मेरा नमन : इनसे मिलिए (बारह) : अजय भट्टाचार्य 07

एकाग्र

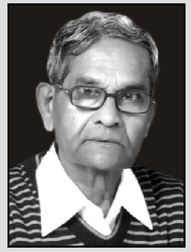

सुबोध श्रीवास्तव

परिचय : सुबोध कुमार श्रीवास्तव : 08
आत्मकथ्य : और आज भी लिख रहा है : 09
कहानी : बिन बाप के : 11
सुबोध की सहज, सरल सुबोध कहानियाँ : धनंजय वर्मा : 15
स्वजिनों की दृष्टि में सुबोध कुमार श्रीवास्तव : 16
सुबोध कुमार श्रीवास्तव से भूपेन्द्र हरदेनिया की बातचीत : 17

सरोकार

तरसेम गुजराल

परिचय : तरसेम गुजराल : 25
आत्मकथ्य : आत्मवंचन नहीं
आत्मकथन : तरसेम गुजराल : 26
कहानी : लोग कहेंगे : तरसेम गुजराल : 28
तरसेम गुजराल की राजेन्द्र टोकी से बातचीत : 31

रेखांकित : सोनी पाण्डेय की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 19
समकाल कथाकाल : अनिता सक्सेना की कहानी : नोट की चोट : चयन : मुकेश शर्मा : 23
लघुकथाएँ : सतीश राठी, लता अग्रवाल : 24
प्रथम पृष्ठ एवं अनन्तिम स्तम्भों के शतक पर विशेष आलेख : डॉ.बालकृष्ण शर्मा एवं निरंजन श्रोत्रिय : 36

वक्रोक्ति -28

(व्यंग्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ) 39-52

कविताएँ : पुनीता जैन, वेद हिमांशु, सूर्यप्रकाश मिश्र : 53
सृजन स्मरण : धर्मवीर भारती का पत्र पुष्पाजी के नाम : 55
विवेचन : कथा मध्यप्रदेश खण्ड-4 : बी.एल.आच्छा : 57
वीक्षा : रमेश दवे, सूर्यकांत नागर, कैलाश मण्डलेकर, पिलकेन्द्र अरोरा : 61
नई किताबें : रमेश दवे : 66, साहित्यिक हलचल : 67
अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे, ऋषि तिवारी

प्रथम पृष्ठ

ऋग्वेद के दशम मंडल का आप:सूक्त बहुत प्रसिद्ध है। इस सूक्त में नौ ऋचाएँ हैं, जिनमें जल की प्रशस्ति है। यह सूक्त यजुर्वेद और बाद के धर्मग्रंथों में भी मिलता है। धार्मिक अनुष्ठानों में प्राणायाम के बाद मार्जन के विनियोग में इस सूक्त के मंत्रों के उच्चारण की दीर्घ परम्परा है। इस सूक्त की काव्य-भंगिमा का आनंद नहीं लिया,तो सब अनुष्ठान अर्थहीन।

आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे।।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः।।
तस्माअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः।।
ऋग्वेद : आप:सूक्त : 10.9.1-3

तू है, तो हमारी जन्मकथा है

हे जल !
तू हमें अपनी ऊर्जा से भर दे ।
मेरी वाणी में तेरी सरलता हो ,
मेरी आँखों में तेरी तरलता हो।।1।।

हे जल !
तेरे भीतर छुपा हुआ रस
सबके कल्याण के लिये है ।
हमारे जीवन में वह रस
वैसे ही घुल जाये ,
जैसे माँ का दूध घुल जाता
हम सब में ममता बनकर ।।2।।

हे जल !
हम तेरे ही गीत गाते हैं ,
क्योंकि तू हमारे होने की
अभीप्सा से भरा है ।
तू है तो हमारी जन्मकथा है ,
तू है तो गूँज उठती है जीवन-ऋचाएँ।।3।।

हे जल !
तू दिव्य कृपा से भरा हुआ है ।
हमारे जीवन में शान्ति की वर्षा कर ।
तू हमें अभीष्ट है, हमारी रक्षा कर।
हमारे चारों ओर
शान्तिपूर्वक प्रवाहित हो।।4।।

हे जल !
तू हमारी आशाओं का स्वामी है,
तू ही हमारी कामनाओं का आश्रय।
उस ओषधि की याचना करता हूँ मैं
जो तेरी बूँद- बूँद में व्याप्त है।।5।।

हे जल !
तेरे भीतर ओषधियों का भंडार है,
यह बात मुझे सोम ने बतायी ।
तुम्हारे भीतर वह अग्नि है
जो सब रोगों का शमन करने में
सदा समर्थ है।।6।।

हे जल !
तेरे पास दिव्य ओषधियाँ हैं ।
मेरी देह से रोगों का निवारण कर ,
ताकि मैं दीर्घकाल तक
सूर्य को देखता रह सकूँ ।।7।।

हे जल !
जो कुछ भी मुझमें अपवित्र हो ,
उसे बहा दे।
मेरे अवचेतन में बैठी
द्रोह की भावना को बहा दे।
मेरे क्रोध को शान्त कर।
मेरे सभी अनृत ,
सभी पातक नष्ट हो जायें।।8।।

हे जल !
मेरा आचरण अब तेरे जैसा हो ,
तेरा रसायन मेरी पोर-पोर में समा जाये ।
तू प्रवाहमान अग्नि है ,
तू आ! मुझे तेजस्वी बना ।
वर्चस्व प्रदान कर ।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

भाषा बीमार है

रमेश दवे

क्या हुआ है भाषा को? कौन सा रोग लग गया है? किस भाषा को लगी है बीमारी? ऐसे अनेक प्रश्न उठने लगते हैं मन में जब हम हिन्दी भाषा के बारे में सोचते हैं। सच पूछिए तो हिन्दी को अंग्रेजी रोग लग गया है। डॉक्टर अंग्रेजी का है, मास्टर अंग्रेज़ी का है, किताबें अंग्रेज़ी की हैं, परीक्षा अंग्रेज़ी की है, प्रमाण पत्र अंग्रेज़ी का है, नौकरी अंग्रेजी की है। बताइए इतने इतने अंग्रेज़ी रोग अगर हिन्दी के आसपास मंडरा-मंडरा कर उसमें अंग्रेज़ी के मल्टीपल यानी कई तरह के इंफेक्शन कर चुके हैं तो अब ऐसी नाजुक हालत में पड़ी-पड़ी हिन्दी ऐसी लग रही है जैसे कोमा में पड़ी भाषा भूल गई कि वह ज़िन्दा है।

अंग्रेजी का संक्रमण इतना तेज है, छूत की ऐसी बीमारी जैसे कोई इंग्लिश मलेरिया हो जिससे हिन्दी के बदन में कँपकँपी मच गई हो या अंग्रेजी प्लेग, स्वाइन फ्लू, चिकनगुनिया या निमोनिया हो जो भाषा को खींच कर किसी मँहगे पाँच-सितारा मल्टी-स्पेशियलिटी अस्पताल में ले जा रहे हों और डॉक्टर हिन्दी की इस बेसहारा मरीज को देखने से इंकार कर रहे हों, कह रहे हों हम गरीबों का इलाज नहीं करते, यहाँ जो थैली भर नोट लेकर आएगा, थैली खाली करके जाएगा, बस वही स्वस्थ हो जाएगा। ले जाइए वापस अपनी भाषा की इस मरीज को किसी सरकारी हास्पिटल में। वहाँ इलाज हो या न हो मगर ऐसे मरीजों की जगह सरकारी अस्पताल ही है। यह भी कितनी बड़ी हिकारत है अपनी भाषा से कि एक सांस्कृतिक कहे जाने वाले देश में स्कूल कॉलेजों के नाम अंग्रेज़ी में, होटलों-अस्पतालों के नाम अंग्रेजी में, अनेक संस्थानों के नाम अंग्रेज़ी में। ऐसा लगता है जैसे हमारी भाषा में नामों का अकाल हो और अंग्रेज़ी में नाम रखने वालों को हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के अपमान का अधिकार मिल गया हो। हिन्दी देश की सबसे अधिक बोली, लिखी, पढ़ी और समझी जाने वाली भाषा मानी जाती है। यदि साठ-सत्तर करोड़ लोगों के दैनिक जीवन की यह भाषा है तो भाषा के जीवन की रक्षा भी लोगों को ही करनी चाहिए। जहाँ तक हमारे शासकों-प्रशासकों, बुद्धिजीवियों और संभ्रान्त नागरिकों का प्रश्न है वे तो सदा अपने वर्ग को छोड़कर शेष जनता को भाषा-विहीन, शिक्षा विहीन और विचार-विहीन रखना चाहते हैं ताकि उनके लिए अनपढ़या कमपढ़नौकर-चाकर पैदा होते रहें और उन्हें गरीबी-रेखा का कार्ड पकड़ा कर कहते रहें कि हम आय पर कितना बड़ा अहसान कर रहे हैं। भारत की आम गरीब जनता का सरकारी स्कूल गरीब अस्पताल गरीब और सुविधाएं तो गरीबी के अभिशाप से हर छोटी बस्ती में ग्रस्त। ऐसे में हिन्दी के बीमार, अशक्त, उपेक्षित और अपमानित होने की चिन्ता ही कौन करे? हिन्दी को सतत बीमार बनाए रखने का यह छल जब सत्ताएँ ही कर रही हों, तो हिन्दी कैसे तो राष्ट्रभाषा और क्या राजभाषा का आसन गृहण कर सकती है? ऐसा लगता है स्वतंत्रता के बाद अपराध आज़ाद हुए, सत्ता-विपक्ष की नैतिक मर्यादाएँ अमर्यादित और आजाद हुईं, मगर भाषा और शिक्षा आज़ाद नहीं हुईं। सरकारी अस्पताल संसाधनों के अभाव में मौन बाँटने को आज़ाद हुए मगर इलाज का धर्म निभाने को आज़ाद कहाँ हुए? अगर श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यास ''राग दरबारी'' में शिक्षा को रास्ते में पड़ी कुतिया की तरह कह गए तो आज कोई दूसरा श्रीलाल शुक्ल अगर लिखे तो वह सकता है भाषा को भी हमने रास्ते में पड़ी कुतिया की तरह लात मारना शुरू कर दिया है।

कैसी विडम्बना है हिन्दी दिवस, सप्ताह पक्ष और मास मनाने की? बैंक और केन्द्रीय संस्थान-संस्थाएँ इसको ऐसे मनाते हैं जैसे वे एक बीमार भाषा पर अहसान कर रहे हों। हिन्दी की संस्थाएँ, हिन्दी के साहित्यकार, हिन्दी के अखबार, संचार-माध्यम, हिन्दी के अध्यापक-प्राध्यापक, सब अंग्रेंजी के समक्ष नत-मस्तक हैं। अरबपति औद्योगिक घराने जहाँ से हिन्दी की साप्ताहिक, मासिक पत्रिकाएँ और अखबार निकाले जाते थे, उस वक्त हिन्दी के पाठक थे, उच्च कोटि के लेखक थे, बड़े-बड़े पत्रकार थे, श्रेष्ठ अध्यापक-प्राध्यापक थे और हिन्दी हमारी गर्व की भाषा बनने लगी थी। आज तो हिन्दी समाज एक बौने समाज में समा गया है, जहाँ अपनी ईर्ष्या, दलगत प्रतिबद्धताएँ, घृणा और सही व्यक्ति के अपमान, उपेक्षा की अप संस्कृति पनप रही है। ऐसे में हिन्दी विचारी जिये तो कैसे जिए ? फिल्मों ने हिन्दी में बड़ा योगदान दिया और आज भी दे रही हैं, मगर अब उनके भी नाम अंग्रेजी में आने लगे हैं। कला फिल्मों को बॉक्स ऑफिस में दफना दिया गया है। हिन्दी अपने ही लोगों की नफरत और गाली भरी उपेक्षा से अपना मानसिक संतुलन खो रही है। हिन्दी के वे चर्चित स्वनाम धन्य बड़े चेहरे हिन्दी की कमाई पर यश पुरस्कार और सम्मान भोग रहे हैं; मगर कहते हैं हम हिन्दी नहीं पढ़ते, हिन्दी वालों से हमें नफरत है। अगर यह साहित्यकारों का सोच है तो फिर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न देखना बंद कर देना चाहिए। अंत में यही कहा जा सकता है कि हम हिन्दी दिवस, सप्ताह, पक्ष आदि मनाएँ मगर हिन्दी के पक्ष में भी खड़े हों। अगर सत्तर करोड़ हिन्दी भाषी जनता लोकतंत्र की ताकत है तो वह हिन्दी की ताकत क्यों नहीं बन सकती? साहित्य के नाम पर दिए जाने वाले सम्मान-पुरस्कार सरकारी-गैर सरकारी संस्थाओं में तिकड़मों, परिचयों और आपसी समझौतों से ऐसे लोग दे रहे हैं जो अपनी मरजी की ज्यूरी या निर्णायक मण्डल बनाते हैं, सरकार में जो अपनी झूठी आस्था से पदों पर बैठ गए हैं जिन्होंने सही व्यक्ति के खिलाफ अपने अधिकारों का दुरूपयोग शुरू कर दिया है जो कल तक विनम्र थे, वे पद पर बैठते ही अनम्र हो गए, अहंकारी हो गए। जिस भाषा के संस्थान, उसके संचालक आदि ही अपने पद के अहंकार में जी रहे हों वे हिन्दी को भाषा नहीं बल्कि भिखारियों को भीख में देने वाली भाषा मान बैठे हैं।

समाज भाषा में जीता, सोचता और रहता है। रोटी, पानी, हवा के बाद उसका दैनंदिन जीवन भाषा से ही संचालित होता है। अगर हमारी भाषा या भाषाएँ बीमार होकर किसी नर्सिंग होम में पड़ी है तो हमें चाहिए हम अपनी भाषा को स्वस्थ और जिन्दा रखने के अभियान में जुट जाएं वरना हिन्दी जैसी बड़ी भाषा प्रादेशिक भाषाओं एवं लोकभाषाओं के बढ़ते आक्रमण से छोटी कर दी जाएगी और हिन्दी भी अंग्रेजी और अन्य भाषाओं की भीड़ में दबकर किसी दिन प्राण त्याग देगी। इसलिए इस वर्ष का हिन्दी दिवस भाषा की रक्षा का दिवस बने। इन शब्दों के साथ हिन्दी दिवस की सबको बधाई। इस अंक में कथाकार-व्यंग्यकार सुबोध कुमार श्रीवास्तव के कृतित्व पर जहाँ एकाग्र है वहीं बहुविध लेखक-कथाकार श्री तरसेम गुजराल के कृतित्व को 'सरोकार' में संयोजित किया गया है। व्यंग्य प्रधान अर्द्धवार्षिक प्रस्तुति 'वक्रोक्ति' भी इस अंक को समृद्ध कर रही है।

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये (बारह)

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

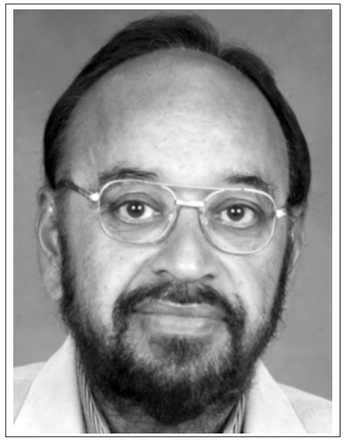

पिलकेन्द्र अरोरा

समावर्तन के नियमित लेखकों में डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा का नाम बहुपठित है। स्कूली दिनों से लेकर मेरे सूरत आ जाने तक मैंने उन्हें अखिलभारतीय टेपा सम्मेलन के प्रमुख सूत्रधार शिव चाचा (डॉ.शिव शर्मा) के प्रमुख सहायक के रूप में और सम्मेलन में आये विशिष्ट लोगों पर हास्य-व्यंग्य प्रधान मुकदमे चलाते हुए देखा-सुना है। अब तो वे प्रसिद्ध व्यंग्यकार के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उनके बारे में समावर्तन के संपादक भाई सा.श्रीराम दवे ने विस्तार से कुछ इस तरह बता रहे हैं -

''इसी मार्च माह में अपने जीवन के साठ वर्ष पूर्ण कर अर्थात ''साठा सो पाठा'' होकर इकसठवें वर्ष में प्रवेश कर चुके डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा अपने दैनन्दिन कार्यों में जितने नियमित और संतुलित है उतने ही नियमित और मुखर वे अपने सृजन कर्म में भी हैं। ''लिफाफे का अर्थशास्त्र'', ''साहित्य के प्रिंस'', ''साहित्य का अब्दुल्ला'', ''पाठक देवो भव'' जैसी चर्चित व्यंग्य कृतियां उनकी सतत सृजनात्मकता का प्रमाण है। अपने चुटीले संवादों और हाजिर जवाबी के लिए प्रसिद्ध पिलकेन्द्र जी एक कुशल वक्ता और सूत्रधार के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। यह अलग बात है कि वे एक सहृदय और संतुष्ट व्यवसायी भी हैं।

पिछले दिनों प्रदेश के प्रमुख 21 व्यंग्यकारों की रचनाओं की नुमाइन्दगी करने वाले एक ''व्यंग्य संग्रह'' 'व्यंग्य प्रदेश का सम्पादन भी पिलकेन्द्र जी ने किया है जिसे भरपूर सराहना मिली है। सिख धर्म के दसवें गुरु गुरु गोविंदसिंह जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर भी उनकी एक कृति प्रकाशनाधीन है। इधर पुस्तक समीक्षक के रूप में भी उन्होंने अपनी सृजनात्मकता का नया द्वार खोला है।

पिछले दो-ढाई दशकों से प्रातः भ्रमण में नियमित रहकर वे न केवल अपने प्रातः भ्रमण के साथियों को प्रमुदित करते रहते हैं बल्कि अपने लिए सृजन की ऊर्जा भी ग्रहण करते हैं। समावर्तन के अभी तक के सभी आयोजनों में उपस्थित रहने वाले तथा सृजन सहयोग करने वाले डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा की सृजनशीलता को नमन तथा सदैव सृजनरतन रहने की मंगलकामाएँ।''

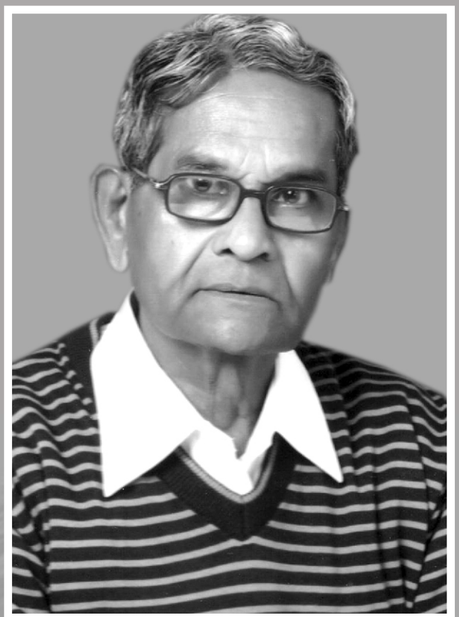

सुबोध कुमार श्रीवास्तव

जन्म 25 अक्टूबर 1943, दमोह (उ.प्र.), शिक्षा एम.ए. अर्थशास्त्र । साहित्यकार व व्यंग्यकार रूप की पहचान सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में उभरना शुरू हुई जब नई कहानियाँ, धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कल्पना, लहर व अन्य पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित हुईं।

धर्मयुग, सारिका, नई कहानियाँ, कादम्बिनी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कल्पना, लहर, अणिमा, नीहारिका, गंगा, मनोरमा, साक्षात्कार, वर्तमान साहित्य, कहानीकार, वागर्थ, पहल, हंस, वसुधा, परिकथा, बहुवचन, रचनाक्रम, अक्षरपर्व, मुक्तांचल, समय के साखी, समावर्तन, दुनिया इन दिनों, गगनांचल, व्यंग्य यात्रा, जनसत्ता आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लेखक की रचनाएँ पाठकों तक पहुँचती रहीं।

कहानी संग्रह 'हर दिन अकाल' पर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी पुरस्कार', समग्र लेखन पर प्रथम 'राधिका नायक स्मृति पुरस्कार', 'परसाई स्मृति सम्मान 2010' एवं मध्यप्रदेश हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का 'भवभूति अलंकरण 2016' प्राप्त।

गुजराती, मराठी, मलयालम, पंजाबी, उर्दू व नेपाली भाषा में कुछ रचनाएँ अनूदित। तीन आंचलिक समाचार-पत्रों में व्यंग्य स्तमी लेखनी। प्रगतिशील लेखक संघ, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन व पहल संगोष्ठियों में सक्रिय भागीदारी।

प्रकाशित कृतियाँ : उपन्यास - राजधानी में आठ दिन, हीरा परा बाजार में, लघु उपन्यास -रात और मौत के आगे-आगे, चिरैया गाँव की चिड़िया, कहानी संग्रह - रक्तदान, लकीर, हर दिन अकाल, कुछ-कुछ अपना, व्यंग्य संग्रह - शहर बंद क्यों है?, बचिए ! भभूत गिर रही है, गति-अवरोध।

स्थायी पता - अशोक कॉलोनी, कटनी (म.प्र.)

सम्पर्क -जी-1/102, प्रथम तल, गुलमोहर कॉलोनी (ई-8) पंजाब नेशनल बैंक के पास, भोपाल (म.प्र.) 462039 मोबा. 09907564010

....और आज भी लिख रहा हूँ

सुबोध कुमार श्रीवास्तव

आचार्य रजनीश ने मुझे तीन वर्ष तक दर्शनशास्त्र पढ़ाया है। तब वे 'ओशो' और 'भगवान' नहीं हुए थे। मुझ पर तथा सहपाठी रमेश और कुलदीप पर उनका जबरदस्त प्रभाव था। उनकी वाणी में जादू था, आँखों में शायद सम्मोहन शक्ति। हम तीनों रोज शाम को उनके नेपियर टाउन स्थित घर पहुँच जाते और घंटों बैठे रहते। उनकी कुछ बातें समझ में आतीं, कुछ अबूझ होतीं, लेकिन उन्हें सुनने और सुनते रहने की इच्छा मरती नहीं थी। यदि मैं हरिशंकर परसाई के सम्पर्कमें न आता तो सम्भव है आज मैं 'रजनीश साहित्य' बेचरहा होता। परसाई की व्यंग्य रचना 'टार्च बेचने वाले' पढ़ने के बाद तो रजनीश जी से पूरी तरह मोहभंग हो गया। अपने गुरु रजनीश जी से की एक बात मैं हमेशा याद रखता हूँ कि 'सुख और खुशियाँ हमारे चारों ओर बिखरी हुई हैं सिर्फ उन्हें खोजने की जरूरत है।' 'इस तरह चहकती है मिनी' (अक्षरपर्व) कहानी में यह प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ. डी.एस. नाग ने एम.ए. अर्थशास्त्र की कुछ कक्षाएँ लीं। हम छात्र उनसे बहुत डरते थे। पढ़ने में औसत दर्जे का विद्यार्थी रहा। 1963 में विश्वविद्यालयीन रेडियो रूपक प्रतियोगिता के लिए जबलपुर विश्वविद्यालय जो नाटक भोपाल लेकर आया था, वह जयशंकर प्रसाद की एक कहानी का नाट्य रूपांतरण था (दर्द और दुलार) जिसका निर्देशक मैं था और प्रतियोगिता में प्रथम घोषित किया गया था। इस रेडियो रूपक के लिए सुबह के दृश्य के लिए चिड़ियों के चहकने की आवाज टेप करनी थी और प्रभारी अध्यापक डॉ. एन.डी. साहू, कलाकार मनोहर महाजन व मदन बावरिया, नाट्य रूपान्तरणकर्ता रमेश मालवीय के साथ मैंने नेपियर टाउन स्थित किसी पार्क में (संभवत भंवरताल) आचार्य रजनीश के टेपरिकार्डर पर यह आवाज भरी थी। उन दिनों हमारे परिचितों में कम के ही पास यह सुविधा थी। 1963 में मैं पहली बार दो दिनों के लिए भोपाल आया था और केपिटल होटल में रूका था।

व्यौहारबाग में हम पाँच दोस्तों की मंडली थी और हम यारों के जीवन के अच्छे-बुरे मजे साथ लूटे। प्रद्युतरंजन देव (बच्चू) मध्यप्रदेश की फुटबाल टीम का धुंरधर खिलाड़ी, कवि भवानीप्रसाद तिवारी का भांजा मनोज चौबे, अरुण सुनील हाइड और प्रमोद मिश्रा (गुल्लू) मेरे मित्र थे जिनके साथ दस वर्षों तक मैंने अपने किशोर उम्र गुजारी - गिल्ली डंडा, गोली-कंचा, मार गेंद खेलते हुए और पतंग उड़ाते हुए काटी कटी पतंगों को लूटने का नशा आज भी नहीं उतरता। मनोज के घर किसी शादी समारोह में भवानीदा के मुँह से निकली 'जी हाँ हुजूर में गीत बेचता हूँ'....कविता की ध्वनि आज भी कानों में गूँजती है। इस कालजयी रचना का जन्म मनोज की माँ के विवाह के समय ही हुआ होगा। मनोज के एक चाचा रेवाशंकर चौबे खुद भी गीतकार थे। समय की लीला देखिए कि आज पैंतालीस वर्षों बाद मेरे पास अपने इन मित्रों की कोई जानकारी नहीं है, जिनकी नाकों से कभी मैं साँसें लिया करता था।

जुलाई 1962 में बी.ए. में पढ़ते हुए एक लड़की से मित्रता हुई। उस पागल उम्र में मैंने कुछ रंगीन सपने भी देख डाले जो 'मुंगेरीलाल के हसीन सपने' साबित हुए। कटनी में प्राइवेट कॉलेज में व्याख्याता हो जाने के बाद मैंने उसके साथ, परिवार के लोगों से छुपके टॉकीज में 'दिल्लगी' फिल्म भी देखी। फिर सब कुछ टांय-टांय फिस्स हो गया। आज लगभग पाँच दशक बाद भी मैं उस लड़की को नहीं भूला, जबकि इन वर्षों में मुझे यह भी नहीं मालूम कि वह कहाँ है, कैसी है। स्त्री अपना पहला प्यार यदि कभी नहीं भूलती तो पुरुष भी कभी किसी महिला से हुई अपनी पहली दोस्ती (प्यार का नासमझी भरा बचपन) नहीं भूलता। उसकी इक्कीसवीं सालगिरह पर मैंने उसे 'देवदास', 'गुनाहों का देवता', और 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास उपहार स्वरूप दिये थे। अब सोचता हूँ कि मैंने मूर्खता और नादानी की हद पार कर ली थी। ससुरा ललित सुरजन आज भी इस प्रसंग को लेकर मुझे कोहनी मारता है।

जबलपुर के दस वर्षों में जीवन अभावों से भरा था, लेकिन गरीबी नहीं थी। घर से स्कूल फिर कॉलेज तक मैं पैदल ही आता-जाता रहा। पाँच-सात किलोमीटर की दूरी मुझे कभी नहीं खली। 1965 में अर्थशास्त्र में एम.ए. करने के बाद मैं छः माह बेरोजगार रहा, फिर कटनी के अशासकीय महाविद्यालय श्री तिलक राष्ट्रीय महाविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नियुक्ति मिल गई। 7 फरवरी 1971 को यह महाविद्यालय शासनाधीन हो गया और मैं शासकीय सेवक हो गया। अपनी लगभग चालीस वर्ष की नौकरी के दौरान मैं छत्तीस वर्ष तक कटनी में पदस्थ रहा और यहाँ से ही अक्टूबर 2005 में शासकीय सेवा से अवकाश प्राप्त किया। अगस्त 1978 से लेकर अगस्त 1982 तक बैतूल के शासकीय महाविद्यालय में पढ़ाता रहा। दरअसल, जनता पार्टी के एक धाकड़ विधायक, जो बाद में जनता दल के हो गए, की नाराजगी का फल तो मुझे भोगना ही था। लेकिन, बैतूल भी मुझे भा गया था। मेरी सोच है कि हर छोटे शहर में स्नेह और आत्मीयता का एक झरना बहता रहता है, जो मुझे बाँध लेता है। 1980 में मेरे अनुज सरीखे आत्मीय मित्र चन्द्रदर्शन गौड़ कटनी के विधायक हुए और मुझे वापस कटनी ले आए। बीच-बीच में तबादले होते रहे पर रुकते भी रहे। परसाईजी, बाबूजी (मायरामजी सुरजन) कटनी के ही विधायक ठाकुर लाखनसिंह सोलंकी, आनंद श्रीवास्तव के पत्र काम आ जाते थे। दो बार तो किसी नेता की जरूरत ही नहीं पड़ी। अधिकारियों ने काम कर दिया। यह लिखने-पढ़ने का इनाम था।

बचपन में दमोह में घर पर 'कल्याण' के अतिरिक्त मैंने कोई और पत्रिका नहीं देखी। अंग्रेजी और हिन्दी का एक-एक अखबार आता था। हम सभी बच्चों को सुबह नहाने के बाद पूजाघर में 'रामचरितमानस' का पाठ करना अनिवार्य था, कम से कम पन्द्रह मिनिट तभी खाना मिलता था। घर के सामने ही नगर पालिका का वाचनालय था, जहाँ 'चन्दामामा', 'बालसखा' जैसी पत्रिकाएँ पढ़ने को मिल जाती थीं। हमारे परिवार में कोई लेखक नहीं था। बहुत बाद में बड़े चचेरे भाई ललित श्रीवास्तव ने कविताएँ लिखीं और सातवें दशक के प्रारम्भ में जबलपुर से 'परिचय' बाद में 'कृति परिचय' पत्रिका निकाली और उसका सम्पादन भी किया। जबलपुर आ जाने के बाद ही मैंने पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों को पढ़ना शुरू किा। भैया पत्रकार थे तो घर पर कई अखबार आते थे। शुरूआत हरिशंकर परसाई से हुई। मेरी आँखें पचपन से ही

कमजोर थीं और साल भर में दो बार मुझे इलाज के लिए इन्दौर जाना पड़ता था। गर्मी और ठण्ड की छुट्टियाँ चंदा जिज्जी और जीजाजी डॉ. जी.सी. सिपाहा के यहाँ बीतती। उनकी समृद्ध लाइब्रेरी थी। बंगाली साहित्य का भंडार। हिन्दी की चर्चित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें। बंकिमचंद, टैगोर, शरतचंद, ताराशंकर बन्धोपाध्याय, वनफूल, विभूतिभूषण बन्धोपाध्याय, विमल मित्र, शंकर का साहित्य मैंने वहीं पढ़ा। किशोर और युवा उम्र में ही यदि कोई बंगाली साहित्य विशेषकर शरतचन्द्र को पढ़ लेता तो भावुकता से बच नहीं सकता। मेरी प्रारम्भिक कहानियों 'यादें', 'ठहरा हुआ निष्कर्ष' (धर्मयुग), प्रहार (सारिका), गीली आँखों का दर्द (कल्पना), शून्य चेहरे का भय (साप्ताहिक हिन्दुस्तान), समय (नई कहानियाँ), एक उदास दिन और छपी। इसी भावुकता ने मुझे कभी कहानीकार का दर्जा नहीं दिया। अन्चीन्हें पाठकों के पत्र पाकर मैं संतुष्ट रहा।

प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर आदि के उपन्यास पढ़ता तो चकित हो जाता। रेणु को बाद में पढ़ा। 'गोदान' तो कई-कई बार पढ़ा। दूसरा उपन्यास जो मैंने कई बार पढ़ा वह है 'राग दरबारी' और इसे मैं कभी भी पढ़सकता हूँ, हरिशंकर परसाई की रचनाओं की तरह ही। शेखर एक जीवनी और नदी के द्वीप मेरे हाथ में देखकर भैया ने कहा था कि अभी ये उपन्यास तुम्हारी समझ में नहीं आएँगे। मैं बी.ए. का छात्र था। निर्मल वर्मा की भाषा मुझे सम्मोहित करती थी। किताबें प्राप्त करने के लिए मैं पुस्तकालयों के चक्कर लगाता था। गुरंदी के कबाड़ी बाजार से ढूँढ़-ढूँढ़कर मैंने चार आने से लेकर पाँच रुपये तक मैं कई अच्छे उपन्यास और कहानी संग्रह खरीदे। मुझे आश्चर्य होता कि लोग कबाड़ियों को साहित्यिक कृतियाँ क्यों बेच देते हैं? नौकरी लग जाने के बाद ही किताबें खरीद कर पढ़ीं। कॉलेज की नौकरी का एक फायदा यह मिला कि लाइब्रेरी के लिए जब तब पुस्तकों की सूची थमा देता। हालाँकि मुझे कुछ प्राचार्यों की डाँट भी खानी पड़ी कि मैं अर्थशास्त्र की जगह हिन्दी-साहित्य की पुस्तकों में अधिक रुचि लेता हूँ। 'पहल' के सम्पादक ज्ञानरंजन व 'वसुधा' के सम्पादक डॉ. कमलाप्रसाद ने मुझे सैकड़ों पुस्तकें उपहार में दीं और कुछ मैं जबरन उनके यहाँ से उठा लाया अधिकारपूर्वक। इन दो के अतिरिक्त किसी और सम्पादक से परिचय और आत्मीयता रही भी नहीं। ललित (सुरजन) तो बालसखा हैं। मेरे लिए कटनी दुनिया का सर्वश्रेष्ठ शहर है। इस छोटे-से शहर ने मुझे इतना प्यार, अपनत्व और मान-सम्मान दिया कि इसके ऋण से कई जन्म लेने के बाद भी मैं उऋण नहीं हो सकता। इस शहर के बड़े-छोटे लोगों ने (हालाँकि छोटे लोग मेरे लिए हमेशा बड़े रहे), यहाँ के कस्बाई मिजाज ने, यहाँ की ठेठ बोली ने, देसी मुहावरों ने, राजनीतिज्ञों कोउनकी औकात दिखला देने के जनता के संकल्प ने (देश को पहला किन्नर महापौर देने का श्रेय कटनी को ही है), शहर पर आए किसी संकट के समय जनता की एकजुटता ने और दूसरों को अपना बना लेने की विलक्षण भावना ने मुझे इस शहर से बाँध दिया और मैं अपनी... अपनी अंतिम साँस तक बँध रहना चाहता हूँ। मेरा नब्बे प्रतिशत लेखन कटनी में हुआ। कटनी की जनता के सहयोग से ही मैं वहाँ 'स्वीकार ज्ञानरंजन', 'पहल संगोष्ठी' व 'परसाई का रचना संसार' (दो दिनी आयोजन) जैसे भव्य कार्यक्रम सम्पन्न करा सका। विवेचना, जबलपुर ने अपने अनेक नाटकों का मंचन कटनी में किया। 'वेटिंग फॉर गोदो' (निर्देशक अलखनंदन) और 'बकरी' (हिमांशु राय) की याद दर्शक आज भी करते हैं। नुक्कड़ नाटक तो इतने हुए कि अरुण पांडे को कटनी के दर्शक 'मातादीन' नाम से पुकारते थे। कवि सम्मेलनीय नगर में अद्भुत बदलाव दिखलाई देने लगा था। 'पहल' और 'वसुधा' के बीस-बीस ग्राहक कटनी में थे। लेकिन, राजनीति नाम की बीमारी ने हमारी टीम को बिखरा दिया। हमारे साथ जी-जान लगा देने वाले सदस्य अलग-अलग राजनैतिक नाम की गोद में जर बैठे। कुछेक तो भाजपा से भी जुड़ गए। गलती तो हमारी ही है कि हम उन्हें सही तरीके से शिक्षित नहीं कर पाए। मुझे इस बात का बेहद अफसोस है कि कटनी में जनचेतना का पहले जैसा ताप बरकरार नहीं रह सका।

1963 में मेरी पहली व्यंग्य रचना 'रंग' में रामावतार चेतन ने प्रकाशित की थी। जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'जबलपुर समाचार' में ललित सुरजन ने उन दिनों मेरी कहानियाँ छापीं। 1963 से लेकर 1966 तक मैंने उन पत्रिकाओं के लिए भी कहानियाँ लिखीं जिनका नाम लेना भी आज नहीं चाहता। प्रश्न पन्द्रह-बीस रुपये के पारिश्रमिक का था जो तब की मेरी जरूरत थी। आज वे कहानियाँ मेरे पास नहीं हैं। 1966 में भीष्म साहनी जी ने 'नई कहानियाँ' में 'एक उदास दिन' कहानी प्रकाशित की और फिर 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'सारिका', 'कादम्बिनी', 'नीहारिका', 'नई कहानियाँ', कल्पना, अणिमा आदि में अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 'धर्मयुग' के 'बैठेठाले' स्तम्भ में एक दर्जन व्यंग्य रचनाएँ छपीं लेकिन मैं न तो कहानीकार बन सका और न व्यंग्य लेखक। लेकिन, आज लिखता रहा और आज भी लिख रहा हूँ।

11 जून 1973 को कल्पना (बेबी) मेरी पत्नी बनी। माँ, भाई-भाभी व छोटी बहन ने मेरे लिए जो लड़की पसंद की उसे नापसंद करने का कोई प्रश्न भी नहीं था। मेरे ससुर आर.एस. श्रीवास्तव श्रम अधिकारी थे। बाद में सहायक श्रम आयुक्त हुए। वे एक ऐसे अधिकारी थे जिन्होंने अपनी लम्बी शासकीय नौकरी के बाद भी दो कमरे का मकान तक खड़ा नहीं किया। सास कौशल्या श्रीवास्तव मेरी तीसरी बड़ी बहन चंदा जिज्जी की सहपाठी और सहेली थीं। दो पूर्व परिचित परिवारों में नया रिश्ता स्थापित हुआ। मेरा चालीस वर्ष का दाम्पत्य जीवन सुखमय रहा। जब कभी तनातनी, छुटपुट अनबनों के बाद भी हम सम्मिलित ठहाके लगाने के मौके कभी नहीं चूके। हम दोनों का मूलमंत्र रहा- *''बहुत दिया देने वाले ने तुझको। आँचल में न समाए तो का कीजै। बीत गए जैसे ये दिन-रैना/आगे भी कट जाए दुआ कीजै।''* आकृति (रोली) और शुभागता (डोली) मेरी दो बेटियाँ हैं। रोली स्वयं का एन.जी.ओ. संचालित कर रही है। दामाद अवधेश चित्रकार हैं। डोली डिजाइनर हैं।दामाद उत्सव सिन्हा मीडिया प्रोफेशनल हैं। 2-3 दिसम्बर 1984 की रात मुझे कभी नहीं भूलती। एक मित्र की बारात में मैं भोपाल आया था और उस इलाके में फँस गया जो मिथाइल आइसो साइनेट गैस के रिसाव से सर्वाधिक प्रभावित था। अपने लघु उपन्यास 'रात और मौत के आगे-आगे' में मैंने भोपाल गैत्र त्रासदी की रात के अपने व मित्रों के अनुभव ही लिखे हैं।

अब भोपाल में ही रह रहा हूँ, लेकिन कटनी आना-जाना लगा ही रहता है- *'मेरा मन अनन्त कहाँ सुख पावे, जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पर आवे'* की तरह बार-बार वहाँ भागता हूँ। मेरी छोटी-सी दुनिया तो कटनी ही रही है जहाँ मेरे सैकड़ों मित्र हैं जो लेखक नहीं हैं, जिनकी पढ़ने-लिखने में कोई रुचि नहीं है, पर सब पट्ठे हैं जिंदादिल, बातूनी, नए-नए देशी मुहावरे गढ़ने वाले, अड्डेबाज, उन्मुक्त ठहाकों के शहंशाह और दुःख में आँसू पोंछने वाले रहमदिल। दो चार हों तो नाम लिखूँ, लेकिन सैकड़ों नाम तो यहाँ नहीं लिखे जा सकते। बस 'सारा जहाँ हमारा' की तर्ज पर इतना ही कह सकता हूँ कि 'सारा कटनी हमारा'

कहानी

बिन बाप के

सुबोध कुमार श्रीवास्तव

भुनसारे का उजियारा रात के अँधेरे को धता दिखलाते हुए धीरे-धीरे अपना साम्राज्य फैलाता जा रहा है। पर रेलवे पुलिस चौकी के, कहने भर के लिए, लॉक-अप में वह लड़का अपने ही अँधेरे से जूझ रहा है। रात भर नींद ने आँखों में डेरा नहीं डाला। कितना क्या कुछ नहीं घट गया, इन बारह-तेरह घंटों में ! तेरह-चौदह साल का लड़का सयाना हो गया। अपनी हालत पर नये सिरे से सोचने लायक हो गयी उसकी मासूम समझ। अपनी जगह पर वह कसमसाता रहा। खटमल खून चूसते रहे, मच्छर डंक मारते रहे, छिपकलियाँ निगले हुए कीड़ों का निचोड़ पीठ पर टपकाती रही और वह बदन खुजलाता रहा। औंधा पड़ा रहा। कितनी मार और मारेगी यह जिन्दगी ?

एक सिपाही ने पुट्ठे में बूट की ठोकर मरी तो वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। शरीर में रह-रहकर दर्द उठता रहा। यूँ वह पुलिस के डंडे खाने का अभ्यस्त है, पर कल रात जैसी धुनाई तो पहले कभी नहीं हुई। आँखें मूँद कर लेटा था तो कुछ चैन-सा था, पर मुस्टंडे ने यह तिनका भी छीन लिया।

''तेरे बाप का महल है जो अभी तक खुर्राटे भर रहा है। फूट यहाँ से। सुबह हो गयी। साहब आ जायेगा तो फिर जाँच-पड़ताल करने लगेगा। मैं दयालु आदमी हूँ सो तुझे छोड़ रहा हूँ। किये की सजा तो तुझे मिल ही चुकी है।'' सिपाही ने हाथ पकड़ कर लड़के को घसीटा और बाहर दालान तक ले आया।

कमर पर हाथ रखकर वह उठा और धीरे-धीरे चलते हुए चौकी से बाहर आ गया। मुड़कर 'जनसेवा-देशभक्ति' की इबारत को देखा और मुँह में भर आयी कड़वाहट को सड़क पर थूक दिया, ''साली यह पुलिस खुद चोरी करती-कराती है और हम गरीबों को बंद कर देती है।''

सामने ही स्टेशन है। वह टिकट खिड़कियों के बरामदे तक आ गया। हर खिड़की पर लंबी लाईन है। एक सिपाही डंडे से भीड़ को ठेलते हुए, व्यवस्था के नाम पर, अपनी धौंस जमा रहा है। महिलाएँ धड़ल्ले से खिड़की तक जाकर टिकट प्राप्त कर रही हैं और लाईन में पीछे की ओर लगे हुए पुरुष झल्ला रहे हैं।

इलाहाबाद की ओर जाने वाली पैसेंजर प्लेटफार्म नंबर दो पर खड़ी है। जबलपुर, बीना व बिलासपुर की ओर जाने वाली गाड़ियाँ अगले घंटे-दो घंटे में आने को हैं। शादियों की तारीखों की वजह से स्टेशन पर जबरदस्त भीड़ है। लड़का असमंजस में एक तरफ खड़ा है।

यहाँ-वहाँ देखने के बाद वह कुछ सोच में पड़ गया। पता नहीं पारो कहाँ होगी ? मुसाफिरखाने में तो उसे किसी ने सोने नहीं दिया होगा। हर जगह तो यात्री दरी-चादर बिछा कर पसरे हुए हैं। फिर पारो को तो पुलिस वालों का डर भी रहा होगा।बेचारी पाँच नंबर प्लेटफार्म के अंतिम छोर पर सीमेंट की टूटी बेंच के पीछे पड़ी होगी। रो रही होगी। पेशाबघर के पास उस जगह पर लोग कम ही पहुँचते हैं। बदबू हर किसी को बरदाश्त नहीं होती। रात को बेचारी ने कुछ खाया भी नहीं होगा। भूखी होगी। मूंगफली की चारो पुड़िया फेंक कर वह डिब्बे से छलाँग लगा कर भागी थी। पैसे भी उसके पास नहीं थे।

कल शाम को करीब चार बजे एक सिपाही उसे पकड़ कर पुलिस चौकी ले गया। रोज की तरह गले में टोकनी टाँग कर वह कुतुब एक्सप्रेस में मूंगफली बेच रहा था। पारो साथ में थी। हाथ में चार पुड़िया दबाये वह गाकर मूंगफली बेच रही थी, 'गरम-गरम मूंगफली/टाइमपास मूंगफली/काजू से भली/बिके गली गली/हमारी-तुम्हारी मूंगफली - पर कोई ग्राहक फँस नहीं रहा था।

लड़का पूरे डिब्बे में यहाँ-वहाँ होता रहा। यात्रियों को लाँघते हुए, धकियाते हुए जगह बना लेता। उनकी गालियाँ भी सुन लेता। दो-चार पुड़िया बेच भी डाली। तभी एक सिपाही ने उसे दबोच लिया। गाल पर थप्पड़ मारा और पूछा, 'क्यों बे नमकहराम, तैने रेलगाड़ी को क्या बोल बाजार समझ लिया है ? निकाल टिकट ?'

सिपाही के सामने दो पुड़िया बढ़ाते हुए उसने कहा 'मुंशी जी, हम तो रोज रेलगाड़ी में मूंगफली बेचते हैं। टी.सी.साहब कुछ नहीं कहते। हमसे मूंगफली लेकर खाते हैं। हम उनसे पैसे थोड़े ही माँगते हैं। आप भी मूंगफली खाइए।' लड़के का गाल झनझना रहा था, फिर भी वह चेहरे पर सायास मुस्कान ले आया। लेकिन सिपाही नहीं पसीजा। लड़के का हाथ मरोड़ते हुए गरजा, 'टिरेन में मूंगफली बेचने का लाइसेंस तैने बनवाया है? दिखा तो ? खाकी वर्दी अकड़ी हुई थी।

'लाइसेंस ! यह क्या होता है।' वह सिपाही का मुँह तकने लगा।

'तेरा हाड़.....अभी चौकी में बतलाता हूँ। बोल, कितने मुसाफिरों की जेबें काटी हैं तैने ? मूंगफली बेचना तो बहाना है। इस आड़ में तुम लोग जबरदस्ती करते हो, अटैचियाँ उड़ाते हो। आज छह यात्रियों की जेबें कट चुकी हैं, तीन अटैचियाँ गायब हुई हैं। सब तुम चोर-उचक्कों की करामात है और कौन है तेरे साथ ' डिब्बे में भीड़ ज्यादा थी तो सिपाही डंडा घुमा कर लड़के चूतड़ पर नहीं मार सका, लेकिन उसने लड़के के रूखे बड़े बाल पकड़ कर इस तरह झिंझोड़ा कि वह दर्द से कराह उठा।

सभी मुसाफिर नाटक का मजा लेते रहे और अपनी-अपनी जेबें टटोलने लगे, सामान देखने लगे कि सब सही-सलामत तो है। चोर -उचक्कों से कैसी सहानुभूति, इनका क्या भरोसा ? खाकी वर्दी का ढ़ंग उन्हें अच्छा लगा। और मारो साले को।

एक बार फिर कड़क कर पूछा उसने, 'सीधे से बतला दे लौंडे कि तेरे साथ और कौन है ? एक पर्स मारता है और दूसरा उसे लेकर फुर्र हो जाता है।'

इस तरह की स्थिति का आदी था लड़का। पारो की ओर देखा और वहीं से चिल्लाया, भाग पारो यह ठुल्ला छोड़ेगा नहीं। कसाई है, कसाई।'

और पारो ने हाथ की पुड़िया नीचे फेंक दी। झटपट दरवाजे से प्लेटफार्म के दूसरी ओर कूद गयी। वह रेल की पटरी के किनारे गिट्टियों पर गिरी और किसी हिरणी की तरह कूदती-फाँदती भाग गयी।

'लड़की को भगा दिया, सुअर की औलाद ! बच कर जायेगी कहाँ दारी। और माँ के पिस्सू, तैने मुझे ठुल्ला कहा। चौकी में खबर लेता हूँ तेरी। खाल उधेड़ डालूँगा। लड़की को ढूँढ़ के ससुरी के पास से पर्स बरामद न किये तो मेरा नाम मुलायम सिंह नहीं।' सिपाही ने अपनी मूँछ पर हाथ फेरा। लड़के का हाथ खींचकर उसे डिब्बे से बाहर निकाला और प्लेटफार्म पर उसकी पीठ पर दो-तीन डंडे बरसा कर अपनी भड़ास निकाली। अपनी सक्रियता का परिचय देना भी जरूरी था। वह भारतीय पुलिस का सच्चा सेवक था।

डंडे की मार जोरदार थी। लड़का तड़प कर वहीं बैठ गया।

'चल, उठकर खड़ा हो जा। चौकी में सही जगह पर डंडा घुसेड़ूँगा तो तू सब कुछ उगल देगा कि किस गुंडे की गैंग के लिए काम करता है और यह भी कि अपनी यार लड़की को कहाँ भगा दिया है।' सिपाही को 'ठुल्ला' शब्द चुभा था और वह लड़के को सबक सिखाना चाहता था।

'वह लड़की मेरी छोटी बहन है।' लड़के को सिपाही के मुँह से निकला 'यार' शब्द गंदा लगा।उसने घृणा से उसकी ओर देखा और नीचे थूक दिया।

'हरामी के पिल्ले, तैने अपने बाप का प्लेटफार्म समझ रखा है जो यहाँ आक-थू कर दिया। मैं लड़की को आज ही पकड़ लूँगा। होगी तेरी बहन, मेरी नहीं है। अपने आपको तीसमारखाँ समझ रहा है। तेरे जैसे दर्जनों इस टाँग के नीचे से निकाल दिये। सारी हेकड़ी चौकी में गद्दी के पेंदे में घुस जायेगी। साला, जेबकतरा कहीं का।' सिपाही का पारा चढ़ा रहा।

कोई नयी जगह नहीं थी पुलिस चौकी, लड़के लिए। तीन-चार बार पहले

भी पाला पड़ चुका था उसका इस जादूपुरी से। हर बार जेबकतरी और चोरी का इल्जाम। सिर्फ शक। लॉक-अप में मार पड़ी, शरीर के पिछले हिस्से पर डंडे बरसे, लातों-जूतों को झेला, सिपाहियों के गंदे-बदबूदार बूटों पर कपड़ा रगड़ा, मुर्गा बना, पर रात भर बंद होने की नौबत नहीं आयी।

इंस्पेक्टर अकड़ कर कुर्सी में धँसा था। भारत के महान् पुलिस विभाग के सारे तमगे उसके चेहरे पर चमक रहे थे। यदि वह खाकी वर्दी की जगह लुंगी-बनियान में होता तो कोई बच्चा भी उसे देखकर कह देता कि यह आदमी नहीं, पुलिस है। ऊँचा-पूरा, हट्टा-कट्टा। आगे की ओर भागता पेट। चेहरे पर मुँहासे के इतने छे कि देखते ही घिन लगने लगे। बड़ी-बड़ी मूँछे, दोनों छोर पर। ऊपर की ओर ऐंठी हुई। छोटे खड़े बाल। सफाचट कनपटी। करिया भुच्च रंग। शिकार को जिंदा लील जाने वाली डरावनी लाल-लाल आँखें। मुँह में पान। निगाह इतनी पैनी कि जिस पर टिका दे, उसे सुई-सी चुभे।

लड़के ने पहली बार इस साहब को देखा। तबादले पर नया-नया आया होगा।

सिपाही ने साहब को धमाकेदार सैल्यूट ठोकते हुए कहा, 'सर, यह लौंडा ट्रेन में मूंगफली बेच रहा था। मुझे तो लगता है कि साला पाकिटमार है और किसी गैंग के लिए काम करता है। इसके साथ एक लड़की भी थी। मैंने इसे पकड़ा तो हरामी ने चिल्ला कर उसे आगाह कर दिया। दारी ने पटरियों पर कूद कर दौड़ लगा दी। आज कई मुसाफिरों की जेबें कटी हैं। इस कमीने ने पर्स लड़की को ही दिये होगे। मुझे ठुल्ला कह रहा था।'

साहब सिपाही पर बमक पड़ा, 'ठुल्ला तो तू है ही। बेवकूफ लड़की को छोड़ दिया और डींगे हाँक रहा है। पीछा क्यों नहीं किया लड़की का ? सिपाही ने सफाई सी दी।

इंस्पेक्टर हो-हो कर हँसने लगा। उसका पेट ऊपर-नीचे होने लगा। जबड़ा सुअर की तरह खुल गया। हाथ से होंठों के किनारे तक बह आयी पान की पीक को पोंछते हुए बोला, 'अरे ठुल्ले, नौ-दस साल की औरत पर्स को छिपा कर रखेगी कहाँ 'सपाट जगह पर पर्स ठहरेगा कैसे ?' अपनी ही कही बात पर उसने ठहाका लगा दिया। सिपाहियों ने साथ दिया।

लड़के के मुँह पर साहब के थूक के छींटे पड़े तो उसने उसे वितृष्णा से देखा। इंस्पेक्टरी बोध ने लड़के की निगाह की नफरत को ताड़ लिया। वह बुरी तरह बौखलाया, 'क्यों बे हरामखोर, किस गिरोह के लिए जेबकतरी का धंधा करता है ? चना-मूंगफली बेचना तो सिर्फ दिखावा है। बाईस सालों से पुलिस की नौकरी में हूँ। भाड़ नहीं झोंक है मैंने। यहाँ आने के साथ ही सारी जानकारी इकट्ठी कर ली। पाकिटमारों के तीन गिरोह रेलों में सक्रिय हैं। बच्चों से अटैचियाँ उठवा कर गायब कर देते हैं गुंडे। पर्स मार कर तुम जैसे भोले-भाले चेहरे वाले लड़के-लड़कियों को थमा देते हैं और तू साला अपनी बहन का इस्तेमाल चोरी-चमारी के काम में करता है। छि-छि ! लानत है। सीधे से अपने गैंग के लीडर का नाम बतला दे। मुझे मालूम है कि तू तो केवल कठपुतली है। उसने लड़के को चीर-फाड़ देने वाली क्रूर दृष्टि से देखा।

सहमते हुए लड़के ने कहा, 'हम मूंगफली बेचते हैं। किसी गुंडे को नहीं जानते।'

'डरो नहीं। पुलिस गुंडों को तुम्हारा नाम नहीं बतलायेगी। वे तुम्हारा कुछ नहीं उखाड़ सकेंगे। हम तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारा गैंग लीडर रंभू पहलवान है या विल्सन या अब्दुल भाईजान ? किसी छोटी गैंग के लिए काम कर रहे हो तो उसके उस्ताद का नाम बदला दो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। भले घर के दिख रहे हो। बुरी संगत में पड़ गये होंगे। क्या नाम है तुम्हारा ? बाप का नाम क्या है ? कहाँ रहते हो ? बड़े गर्व के साथ इंस्पेक्टर ने वहाँ तैनात सिपाहियों की ओर देखा कि कुछ तो सीख लो कि कैसे जाँच-पड़ताल की जाती है। अपराधी को पुटिया कर किस तरह से पूछताछ की जाती है।

'हमारा कोई गैंग लीडर, कोई उस्ताद नहीं है। हम तो खुद मूंगफली बेचने में उस्ताद हैं। आठ बरस की उमर से मूंगफली बेचकर अपना पेट पाल रहे हैं। कभी भीख नहीं माँगी। एक पुड़िया पर चालीस-पचास पैसे बच जाते हैं। दिन भर में बीस-पच्चीस पुड़िया बिक जाती हैं तो भाई-बहन को दो टैम रूखा-सूखा खाना मिल जाता है। हम पाकिटमार नहीं हैं, चोर नहीं हैं। गरीब हैं। सब हमें मूंमफली वाला कहते हैं। अपना नाम तो हम भूल ही गये। अम्मा जिन्दा थी तो हमें लल्लू कह कर पुकारती थीं। छह-सात साल पहले वह मर गयी। रेलगाड़ी में मूंमफली बेचती थी। एक दिन चलती गाड़ी में एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में जा रही थी। बाहर ही बाहर। खिड़कियों की छड़े पकड़ते हुए। कोई नहीं जानता कि कैसे उसका पैर फिसला और कैसे वह नीचे टपक गयी ? रेल से कट कर वह टुकड़े-टुकड़े हो गयी। माँस के लोथड़ों का ढ़ेर। साहब, मैंने कभी अपने बाप को नहीं देखा और न ही कभी अम्मा ने बाप का नाम बतलाया। शायद अम्मा को भी मेरे बाप का नाम नहीं मालूम होगा। मेरा कोई बाप नहीं है। हमारा कोई घर, न तो पहले था और न आज है। प्लेटफार्म पर, स्टेशन के आस-पास सीढ़ियों के नीचे जहाँ कहीं भी ठिकाना मिल जाता है, हम वहीं रात बिता देते हैं, मार-पीट कर कोई भगा देता है तो दूसरी शांत जगह खोज लेते हैं और वहाँ पड़े रहते हैं। साहब, दुनिया बहुत बड़ी है। हम अपना पुश्तैनी धंधा करते हैं। रेल में मूंमफली बेचने का। आप मुझे छोड़ दीजिए।' लड़के ने अपनी राम कहानी सुना डाली।

इस तरह की मार्मिक बातों से पुलिस वालों का सम्बन्ध खाकी वर्दी पहनते ही टूट जाता है। लड़के ने काम की बात नहीं उगली तो इंस्पेक्टर का मूड़ उखड़ गया, 'अम्मां के पिस्सू, तेरे माँ-बाप की जन्मपत्री से मुझे क्या लेना-देना ! अपने गैंग लीडर का नाम बतला दो सीधे से। मुँह पर नाम नहीं लाओगे तो मैं तुम्हारे शरीर के सारे छेदों में भूसा भरवा दूँगा।' अपने आखिरी वाक्य पर वह खुद मुग्ध हो गया।

'साहब, आपको गैंग लीडरों के नाम तो मालूम हैं। उन्हें पकड़ लीजिए और मुझे छोड़ दीजिए। आपकी कसम मैं जेबें नहीं काटता।' लड़के ने विनती की। 'सटाक....' लड़के के मुँह पर एक करारा चाँटा मारा मुलायमसिंह सिपाही ने, 'हरामी, कमीने, सड़क के कुत्ते ! तेरी इतनी हिम्मत ! साहब से मुँह लड़ा रहा है। उनकी झूठी कसम खा रहा है। सर के सामने तो अच्छे-अच्छे जोद्धा भी मत मार देते हैं और यह बित्ते भर का लौंडा उन्हें सीख दे रहा है। इसकी तो....'

साहब ने सिपाही को चुप हो जाने का इशारा किया, 'बच्चा है अभी। जाने भी दो। धीरे-धीरे पुलिस के कायदे-कानून समझ जायेगा। ऐसे जिद्दी लड़कों को हवालात में ही अक्ल आती है। पेंड़ दो हरामखोर को रात भर के लिए लॉक-अप में। भूखा-प्यासा मरेगा तो अपनी औकात जान जायेगा। इसका तो बाप भी वही कहेगा, वही करेगा, जो मैं चाहूँगा। अब रात को इसके सिर पर सवार भूत को भगाऊँगा।' उसने उठ कर मूंगफली की टोकनी में लात मारी तो पुड़िया यहाँ-वहाँ बिखर गयीं। इस क्रिया से प्रेरणा ग्रहण कर एक सिपाही ने लड़के के पृष्ठ भाग पर दो-तीन डंडे जमा कर साहब के प्रति अपनी वफादारी का परिचय दे दिया। और इस तरह वह लॉक-अप में पहुँच गया। कोठरीनुमा उस कमरे में

शाम को भी अँधेरा-सा था। सीलन की बदबू थी। मच्छर थे। खटमल थे। घिनौनी छिपकलियाँ थीं। मकड़ी के जाले थे। गनीमत यही थी कि वहाँ पुलिस वाले नहीं थे। वहाँ एक कोने में लेट गया। और करता भी क्या ? लेटे-लेटे पारो के बारे में सोचने लगा। बेचारी पुलिस वालों के हाथों न पड़ जाए। उनका एक ही थप्पड़ बेचारी का कचूमर निकाल देगा और यदि ठुल्लों ने डंडे चला दिये तो वह मर ही जायेगी ।

रात नौ बजे तक किसी ने उसकी खबर नहीं ली। वह अपने आपसे लड़ता रहा। अपनी और पारो की जिन्दगी को लेकर उलझता रहा। एक सिपाही ने दरवाजा खोला तो वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

'हाँ, तो क्या नाम है तुम्हारे उस्ताद का ? कौन है तुम्हारा गैंग लीडर ?'

'मेरी बहन का नाम पारो है। उसे भूख लगी होगी। हमें छोड़ दीजिए, हवलदार जी। मैं आपके पैर पड़ता हूँ।' लड़के ने अपना सिर सिपाही के जूते पर रख दिया।

'तो अब आये तुम कुछ रास्ते पर। ठुल्ले के जूते पर माथा तो रगड़ने ही लगे। अब अपने गिरोह के सरदार का नाम भी बतला दो ?'

'पारो नाम है मेरी बहन का। बहुत छोटी है। भूखी होगी। हमें छोड़ दो।'

'हरामखोर, रस्सी जल गयी पर ऐंठन नहीं गयी। तू जिस डिब्बे में मूंगफली बेच रहा था, उसमें दो लोगों की जेबें कटी हैं। बतला दे कि तेरी बहन ने पर्स कहाँ छिपाये हैं?'

'यह सरासर झूठ है। हम जेबकतरे नहीं हैं।' लड़का रोने लगा।

'तो ठीक है। भुगतो तुम। साहब आ रहा है। उस निठुर पर तुम्हारे इन मोटे-मोटे टेसुओं का कोई असर पड़ने वाला नहीं है। तुम उससे ही मानोगे।' सिपाही चला गया। दरवजा बंद हो गया।

कुछ देर बाद सिपाही मुलायम सिंह आया। उसके हाथ में दो दोने थे। एक में पूड़ी-सब्जी और दूसरे में इमरती। लड़के का सिर सहलाते हुए बोला, 'मेरा नाम है मुलायम सिंह। बहुत नरम दिल का आदमी हूँ। अब हमें साहब की बात तो माननी ही पड़ती है। हमसे कहा कि फल्ली बेचने वाले लड़कों को पकड़ो तो तुम्हें पकड़ कर यहाँ ले आया। मुझसे तुम्हारी भूख नहीं देखी जाती। तुम कुछ खा लो। साहब अच्छे आदमी हैं। तुम्हें छोड़ देंगे। उनकी बात मान लेना।'

लड़के को भूख तो लगी ही थी। सुबह-सुबह चाय के साथ एक-एक पावरोटी खायी थी दोनों भाई-बहन ने। मूंगफली बिकती तो दाल-रोटी खाते। पर मुलायम दिल के ठुल्ले ने इस काल-कोठरी में पेंड़ दिया। पूड़ी और इमरती देख कर उसकी जीभ लपलपाने लगी। वह पारो की भूख को भूल गया और दोने पर टूट पड़ा। पूड़ी और इमरती खा चुकने के बाद उसने सिपाही की ओर देखा। इस बार वह उसे नरम दिल का इंसान ही लगा। उसे तृप्त देख कर सिपाही खुश हुआ और एक प्लास्टिक के पुराने जग में पानी ले आया। लड़के को याद आया कि उसने पिछले छह-सात घंटे से पानी भी नहीं पीया।

तभी इंस्पेक्टर कमरे में घुसा और सिपाही बाहर निकल गया। उसने बाहर से दरवाजा भी बंद कर दिया। साहब को देखते ही लड़का डर गया। उसने सुन रखा था कि चौकी में पुलिस कंबल ओढ़ाकर डंडे से पिटाई करती है। संभावित मार से बचने के लिए वह गैंग लीडर का नाम पूछे जाने पर, किसी का भी नाम ले देगा, लड़के ने यह तय कर लिया। पर किसका नाम लेगा ? किसी बड़े आदमी का नाम लेने पर शायद इंस्पेक्टर छोड़ दे! वह बड़े आदमियों के नाम सोचने लगा - महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, इंदिरा गाँधी और उसे किसी और बड़े नेता का नाम याद नहीं आया। वह सोचने लगा कि रेल के डिब्बे और स्टेशन का मामला है तो वह रेलमंत्री का नाम ले देगा। पर दिमाग पर बहुत जोर डालने पर भी उसे रेलमंत्री का नाम याद नहीं आया।

इंस्पेक्टर उसकी ओर बढ़ा तो उसने धीरे से कहा, 'मेरा गैंग लीडर अमिताभ बच्चन है।' लड़के को लगा कि अभी अमिताभ यहाँ आयेगा और ढिशुम-ढिशुम कर साहब की तोंद पिचका देगा। उसे पिटने से बचा लेगा।

साहब को कुछ भी सुनायी नहीं पड़ा। आगे बढ़कर उसने लड़के के कंधे पर हौले से हाथ रखा और बड़े प्यार से कहा, 'तुम अच्छे लड़के हो।'

'मैं अपनी मरी अम्मां की कसम खाता हूँ, पारो की कसम खाता हूँ, मूंमफली की पुड़ियों की कसम खाता हूँ, मैं जेबकतरा नहीं हूँ। मुझे छोड़ दीजिए हुजूर।' लड़के के पैर काँपने लगे।

इंस्पेक्टर लड़के के और करीब आ गया। उसकी ठुड्डी ऊपर उठाते हुए बोला, 'चोरी-चमारी छोड़ दो। बुरा काम नहीं करना चाहिए।'

'मैं मूंमफली बेचता हूँ। यह बुरा काम नहीं है।'

साहब ने उसके गालों पर हाथ फेरा, उसे अपने शरीर से सटा लिया और फुसफुसाते हुए बोला, 'सिपाहियों ने तुम्हारे चूतड़ पर जोर-जोर से डंडे मारे

होंगे। बड़े दुष्ट हैं। जरा भी दया नहीं है उनमें। पीछे सूजन आ गयी होगी। देखूँ जरा ?' उसका हाथ लड़के की कमर तक पहुँच गया।

लड़का सकपका गया। इतना छोटा भी नहीं था कि इंस्पेक्टर के इरादे को न भाँप सके। जिन जगहों में उसे रात बितानी पड़ती है,वहाँ कई बार उसने, एकांत और अँधेरे का फायदा उठा कर, लोगों को छोटे-छोटे लड़कों के साथ बेहूदे खेल खेलते हुए देखा है। इस तरह की हरकतें देखते-देखते वह किशोर उम्र के करीब पहुँच गया। बहुत कुछ सीख लिया था, बहुत कुछ समझ लिया था उसने अपनी छोटी-सी जिन्दगी में ही।

इंस्पेक्टर के हाथों की हरकतें कुछ आगे बढ़ीं तो लड़के ने गुस्से से कहा, 'आप यह क्या कर रहे हैं ? आपको शर्म नहीं आती। मुझे छोड़ दीजिए, नहीं तो मैं चिल्लाऊँगा।' उसने दोनों हाथ कमर पर कस कर रख लिये।

साहब की आँखें जलने लगीं। साँस जोर-जोर से धधकने लगी। लड़के के गाल पर चिकोटी काटते हुए बोला, -चिल्लाओ, तुम खूब चिल्लाओ। कल तेरी बहन को भी बंद कर दूँगा। उसके पास से चोरी के पर्स भी बरामद कर लूँगा।' उसने जेब से दो-तीन पर्स निकाल कर दिखलाये लड़के को और कहा, 'चुपचाप मेरी बात मान जाओ। नखरे नहीं दिखलाओ।' फिर वह लड़के को फुसलाने लगा, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। सिपाही तुम्हें परेशान नहीं करेंगे। जिस गाड़ी में मर्जी हो चढ़जाना और मूंगफली बेचना। जब कभी पाँच-दस रुपये की जरूरत पड़े, चौकी आक मुझसे ले जाना।' इंस्पेक्टर ने इतनी जोर से भींचा लड़के को कि वह कसमसा कर रहा गया। गालों को चूमा तो दारू की तीखी गंध नथुनों में भर गयी। उबकाई-सी आने लगी। पहली बार लड़के ने महसूस किया कि कोई आदमी कुकुर भी हो सकता है।

इंस्पेक्टर कमरे से बाहर निकला तो संतुष्ट था। विजयी योद्धा की-सी मुस्कान थी उसके चेहरे पर। सिपाही से बोला, 'मजा आ गया आज। इस तरह

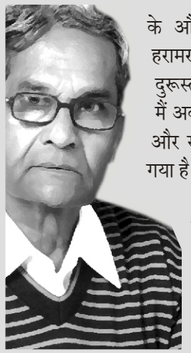

के और भी लड़के हों तो उन्हें भी पकड़ते रहना। हरामखोरों ने स्टेशन का माहौल गंदा कर रखा है। सबको दुरूस्त करना पड़ेगा। मेरा सजा देने का यही तरीका है। मैं अब जा रहा हूँ। इस लड़के को रात भर तुम संभालना और सुबह पौ फटते ही छोड़ देना। वैसे लाइन पर आ गया है साला।'

लड़का प्लेटफार्म नंबर पाँच की ओर बढ़ रहा है- धीरे-धीरे, भारी कदमों से। सीढ़ी चढ़ने-उतरने की झंझट मोल नहीं लेता। दो नंबर पर खड़ी पैसेंजर के एक डिब्बे में घुसता है और दरवाजे से दूसरी ओर उतर जाता है। तीन नंबर पर पहुँच कर दूर-दूर तक नजर दौड़ाता है, पर पारो कहीं दिखलायी नहीं देती। चार नंबर पर एक एक्सप्रेस खड़ी है- हफ्ते में दो दिन चलने वाली। वहाँ भी पारो नहीं दिखती तो वह डिब्बे में घुस कर दूसरी और कूद जाता है और पाँच नंबर प्लेटफार्मपर चढ़जाता है। रात को प्रायः ही दोनों भाई-बहन का बसेरा यहीं रहता है। अंतिम छोर पर स्थित पेशाबघर के पास पड़ी एक टूटी सीमेंट की बेंच को दोनों अपना घर समझते हैं। यहीं परिवार का तीसरी सदस्य चंपी कुतिया भी रहती है। पारो के अतिरिक्त उसे यदि इस भरी-पूरी दुनिया में कोई प्यार करता है तो वह चंपी ही है। पारो के साथ चंपी तो होगी ही, यह सोच कर वह राहत महसूस करता है।

प्लेटफार्म पर लगभग सूनापन पसरा हुआ है। उसकी ही तरह के कुछ लोग यहाँ-वहाँ बिखरे-बिखरे पड़े हैं और दिन-जहान से बेखबर होकर सो रहे हैं। इक्के-दुक्के आदमी दातौन चबाते हुए चहलकदमी कर रहे हैं। वह अपने घर की ओर बढ़ रहा है।

कुछ आगे बढ़ने पर देखता है कि पारो बेंच के नीचे सो रही है। उसके गालों पर सूख चुके आँसुओं की धार ठहरी हुई है। चेहरे पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। पास में ही चंपी लेटी है। पारो का एक हाथ चंपी के पेट पर है, जैसे वह उसकी माँ हो।

लड़के को आता हुआ देख कर चंपी उठी और भौंकती हुई उसके पास पहुँच गयी। आगे के दोनों पैर उसके पेट पर टिका कर, उसका मुँह तकने लगी। लड़के ने उसे पुचकारा, माथा सहलाया, गले में गुदगुदाया तो भौंकना बंद कर दिया। उसके पैरों में लोट गयी।

इंजन की दहाड़ से भी पारो की नींद नहीं खुलती, पर यदि चंपी भौंकती है तो वह एकदम जाग जाती है। आँखें मलते हुए वह उठी और लड़के को देखते ही उसकी ओर दौड़ पड़ी। चंपी को परे करते हुए वह उससे लिपट गयी, ''भैया, तुम आ गये। मैं तो डर रही थी कि कहीं मुस्टंडे मुझे भी पकड़ कर चौकी न ले जायें। इसीलिए चंपी को साथ लेकर गुंडाघाट भाग गयी। शंकर जी के मंदिर के पीछे झाड़ियों में लुकी रही। डिब्बे से कूदी थी, तो पाँव में काँच चुभ गया। खूब खून बहा। देखो.....'' उसने पैर ऊपर उठा कर अपना घाव दिखलाया। सूख चुके आँसू फिर बहने लगे।

लड़के ने अपनी ऊँगली से उसके आँसू पोंछते हुए कहा, ''मत रो, पारो। तुम्हें सरकारी अस्पताल ले चलेंगे और पट्टी करा देंगे ।'' वह सोचने लगा कि अपनी चोट, अपने घाव किसे दिखलाये ? कौन मलहम-पट्टी करेगा ?

''भैया, आधी रात के बाद मैं यहाँ आ गयी थी कि तुम्हें ठुल्लों ने छोड़ दिया होगा और तुम मुझे ढूँढ़ रहे होंगे। तुम नहीं ओय तो मैं खूब रोयी ।'' वह फिर सिसकने लगी।

''अब तुम चुप हो जाओ। मैं आ गया हूँ।'' वे दोनों अपनी बेंच की ओर बढ़ने लगे।''भैया, तुम लंगड़ा कर चल रहे हो। ठुल्लों ने पैरों में डंडे ही डंडे मारे होंगे। चौकी में खूब पिटाई करते हैं, पुलिसवाले। हम जेबकतरे नहीं हैं, चोर नहीं हैं, फिर क्यों पकड़ कर ले जाते हैं वे हमें ? क्यों पीटते हैं ?'' पारो की आँखें, भैया को लंगड़ाते हुए देख कर, भर आयीं।

''क्योंकि हम गरीब हैं। हमारे ऊपर ही वे अपनी धौंस जमा सकते हैं। हमारे साथ वे कुछ भी कर सकते हैं। उनके लिए हम खेल-तमाशा हैं। जब इच्छा हुई, हमें पकड़ लिया, मारा-पीटा, हमसे खेल लिया और डरा-धमका कर धक्के मार कर बाहर निकाल दिया।'' लड़का टूटी बेंच पर बैङ्क गया। दर्द असहनीय है जो उसके चेहरे पर पढ़ा जा सकता है।

'' मैं तुम्हारे पैर में और पीङ्क में गरम कपड़े से सिंकाई कर दूँगी। तुम भी अस्पताल में अपनी चोट दिखला देना। खूब सूजन होगी, '' पारो ने हौले से लड़के की पीङ्क पर हाथ फेरा और कहा, ''भैया जम के भूख लगी है। कल सुबह तुम्हारे साथ पावरोटी खायी थी। उसके बाद से मुँह में अन्न का दाना भी नहीं गया। तुम्हारे पास पैसे हों तो ठेले तक चलो न। एक-एक पावरोटी खा लेंगे चाय के साथ। चाय पीने से तुम्हें भी आराम मिलेगा। तुम्हें भी तो भूख लगी होगी ?'' पारो की आँखों में भूख तैरने लगी।

अपनी नन्हीं-सी बहन के प्रति इतनी दया उमड़ी लड़के के मन में कि उसका अंतर चीत्कार कर उठा। जेब से दो रुपये निकाल कर उसके हाथ में पकड़ाते हुए कहा, ''तुम जाकर चाय पी लो और पावरोटी खा लो। मुझे भूख नहीं है। नींद आ रही है। थोड़ी देर सोऊँगा।''

''भूख कैसे नहीं है तुम्हें ? तुमने भी तो रात भर कुछ नहीं खाया होगा? चौकी में पुलिस वाले सिर्फ लात-जूते और डंडे खिलाते हैं। दईमारे, खुद भूखमरे होते हैं। अपनी मूंमफली भी खा गये और टुकनियाँ भी रख ली। तुम झूठ बोल रहे हो कि भूख नहीं है। और पैसा नहीं है तो अपन पावरोटी खा लेंगे, चाय नहीं पीयें। उठो न भैया।'' पारो ने भैया की चिरौरी की।

''नहीं, पगली। मुझे सच्ची भूख नहीं लगी। रात को एक सिपाही को मेरे ऊपर दया आ गयी तो उसने डंडे के साथ-साथ पूड़ी-सब्जी और इमरती भी खिलायी। मैंने भरपेट खाया था। तभी तो आँखें झपक रही हैं'', लड़के ने बतलाया। विस्मय से फैल गयी पारो की आँखें, ''तुमने पूड़ी-सब्जी और इमरती खायी ! भैया, तुम बहुत खराब हो। मुझे डिब्बे से क्यों भगा दिया था ? ठुल्ला मुझे भी पकड़ कर चौकी ले जाता तो अच्छा रहता। भले ही वहाँ मार पड़ती, एकाध डंडा पड़ता,रात भर बंद रहना पड़ता पर खाने के लिए पूरी-सब्जी और इमरती तो मिलती। कितना मजा आता। भैया, तुमने कितनी इमरती खायी थीं ?''

'चटाक.....' एक जोरदार आवाज हुई। लड़के ने एक भरपूर तमाचा पारो के गाल पर मारा और किसी पके पत्ते की तरह काँपने लगा।

पारो हतप्रभ । रो भी नहीं सकी। गाल सहलाते हुए पूछा उसने, ''भैया, तुमने मुझे क्यों मारा ? मेरी गलती क्या है?''

लड़के ने पारो को अपने सीने में छिपा लिया और रोते हुए बोला, ''अब कभी इस तरह की बात मुँह से न निकालना। भूल कर भी पुलिस चौकी की ओर मत जाना। बहुत कड़ी सजा देते हैं पुलिस वाले हम बेगुनाहों को।'' एक हीरात में लड़के को यह समझ मिल गयी कि अम्मां ने उसके बाप का नाम क्यों नहीं बतलाया था ?

दिन का सुनहरा प्रकाश पूरी तरह पसर चुका है। भाई-बहन दोनों सहमे हुए हैं और सुबक रहे हैं। आजादी की स्वर्ण जयंती का यशगान करते वाले पोस्टर स्टेशन पर यहाँ-वहाँ झूल रहे हैं।

प्लेटफार्म पर एक सिपाही दिखलायी देता है तो चंपी उसकी ओर दौड़ लगा देती है। उसके ऊपर झपट पड़ती है। वह खाकी वर्दी को नोच-खसोट रही है। लोग दूर खड़े-खड़े यह तमाशा देख रहे हैं और मुग्ध हो रहे हैं।

तो क्या इस देश में इंकलाब कुत्ते लायेंगे ?

सुबोध की सहज, सरल सुबोध कहानियाँ

धनंजय वर्मा

नयी कहानी की केन्द्रीय पत्रिका 'नई कहानियाँ' का इलाहाबाद में पुनरागमन हो चुका था। उसके संपादक भीष्म साहनी की जगह अमृत राय हो गए थे। इस बदलाव पर कमलेश्वर ने अपनी सिफाती अन्दाज में फिकरा चस्पा किया था : 'अभी तक हम लोग भीष्म की अमृतवाणी सुन रहे थे। अब अमृत की भीष्म प्रतिज्ञाएँ सुनेंगे।' भैरवप्रसाद गुप्त के सम्पादन में प्रकाशित 'नई कहानियाँ' में मेरा लेखन 1962 से ही शुरू हो चुका था और कमलेश्वर के सम्पादन में भी मैंने उसमें लिखा था। अमृतराय से अपने परिचय की वजह से 'नई कहानियाँ' में मेरा लेखन अब लगभग नियमित हो गया। उसमें एक स्तम्भ 'कथा चक्र' शुरू किया गया। इसमें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित माह भर की कहानियों और कहानी चर्चा का जायजा लिया जाता था। इसे लिखने का जिम्मा मुझे सौंपा गया। मैंने चक्रवर्ती नाम से इसे खासे लम्बे वक्फे तक लिखा। उसी दौरान सुबोध कुमार श्रीवास्तव की कहानियाँ पढ़ने का अवसर मिला था। मुझे याद है कि उनकी एक कहानी 'कुम्हड़े की सब्जी' का जिक्र मैंने अप्रैल 1968 के अंक में किया था। अमृतराय ने अपने सम्पादकीय लेखों में 'सहज कहानी' का विचार प्रस्तुत किया था। यह विचार जाहिर है, 'नयी कहानी' की तर्ज पर था और 'अकहानी' तथा 'समांतर कहानी' की तरह प्रस्तावित था। अमृतराय ने अपने 'हंस' प्रकाशन से 'सहज कहानी' का एक संकलन भी सम्पादित प्रकाशित करने की योजना भी बनाई थी। उसमें भी सुबोध की एक कहानी सम्मिलित की गई थी। वह संकलन फिर प्रकाशित नहीं हो पाया। 'सहज कहानी' भी 'अकहानी' और 'समांतर कहानी' की तरह मृत जात (स्टिल बॉर्न) साबित हुई। सुबोध ने उन दिनों बतकही के अपने दिलचस्प अंदाज में सहज, सरल और सुबोध कहानियाँ लिखकर लोगों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींचा था। मैं उन दिनों नरसिंहपुर में था इसलिए कटनी निवासी सुबोध की कहानियों की 'कस्बाई लुनाई' और 'आंचलिक भोलेपन' ने मुझे भी आकर्षित किया था। आधुनिक भावबोध के आयातित मुहावरों में उच्च तथा मध्यवर्गीय शहरी कथानकों और पात्रों की कहानियों के समानान्तर कस्बों और गाँवों की ठेठ देसी कहानियों का भी एक बड़ा पाठक वर्ग था। उसमें सुबोध एक लोकप्रिय नाम था। आज भी है।... एक लम्बे अन्तराल - लगभग चालीस बरस - के बाद सुबोध की दस कहानियों (कुछ कुछ अपना) और उनका लघु उपन्यास (रात और मौत के आगे आगे) पढ़ते हुए गुजरा हुआ वक्त याद आ गया।

सुबोध हैं भी तो गुजरे हुए वक्त की यादों को जीने और उसे ही फिर-फिर कर लिखने वाले कथाकार। यादों में कूच गर्दी के दौरान शकील का यह शेर बेसाख्ता कौंधता है - *'हयात एक मुस्तकिल गम के सिवा कुछ भी नहीं शायद, खुशी भी याद आती है, तो आँसू बनकर आती है।'* सुबोध की कहानियों में भी गम की यही कैफियत पिन्हाँ है। गौर करें तो बीते हुए को फिर-फिर कर जीने में ही कहानी का आदिम कथारस अन्तर्निहित है। सुबोध की कहानियों में किस्सा-गोई का यही कथारस है। 'एक था राजा' सरीखी अभिव्यक्तियों से ही तो कहानी की शुरूआत होती रही है और 'जैसे उनके दिन फिरे' से उसका समापन। ... सुबोध की कहानियाँ भी अधिकांशतः अतीतलक्षी हैं। उनमें वर्तमान भी व्यतीत होता हुआ पहले से विद्यमान हो जाता है। सुबोध के पात्र भी अक्सर अपने पुराने कस्बे और अतीत के खण्डहरों या व्यतीत पर खड़ी नई इमारतों में लौटते हैं और बीते हुए दिनों के अपने खो गए साथियों और आत्मीय सम्बन्धों को फिर-फिर कर जीते हैं। इन साथियों के चेहरों और सम्बन्धों पर वक्त की दुर्निवार मार के नुकूश होते हैं और उनकी साँसों में अतीत की घनीभूत पीड़ा समायी होती है। सुबोध की कहानियों का संसार निम्न मध्यवर्गीय और गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों का संसार है। इसी संग्रह की चार कहानियाँ निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों पर केन्द्रित हैं और चार,गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाली महरी और कुम्हारिन, खान मजदूरों के बच्चों और ट्रेन में मूँगफली बेचकर किसी तरह जीने वाले बच्चों पर। शेष दो में से एक की मर्मान्तक तकलीफ इस सवाल से नुमायाँ होती है- 'हम पुरुष किसी लड़की को रंडी क्यों बना देते हैं' - तो दूसरी 'आज मुझे कह लेने दो' उस पुलिस की टीस को जुबाँ देती है जिसे आमतौर पर अत्याचारी और नकारात्मक रंगों में पेश किया जाता है। यहाँ एक ओर हैं- नानी और झगड़ू, कल्लू और शिब्बू, नन्दू और पुट्टन-छुट्टन तो दूसरी ओर हैं-कक्काजी और मुरलीबाबा, डॉक्टर चच्चा और चौदहा जी के सात कानीबऊ जैसे कस्बाई चरित्र। चन्दू और शांति, जिज्जी और गिन्नी की आत्मीयता के साथ हैं बच्चू और गुल्लू गुड्डू और मंजू, काजल और मेवा भैया की पारिवारिकता। फिर यहाँ उभरती है- राशन की दुकान में मिट्टी तेल के लिए जद्दोजहद में अपने बच्चे तक का ख्याल न रख पाने की मजबूरी ढोती मेहरी, खान मजदूरों के छोटे मासूम बच्चों - पप्पू, गुड़िया की भूख, मूँगफली बेचने वाले लड़के, लड़कियों की बेचारगी और उन पर होते अत्याचार और उनका यौन शोषण करती पुलिस...। कुल मिलाकर यह दुनिया खासी बेचैन और उदास कर देने वाली है। ...भयावह आर्थिक विपन्नता झेलते आम आदमी की वास्तविक तकलीफों और समकालीन जीवन में तेजी से हो रहे अमानवीयकरण से रूबरू, कराने वाली इन कहानियों में यथार्थ का 'आँखों का देखा हाल' ही नहीं, संवेदना से आगे बढ़कर, अनुभव के धरातल पर भोगे हुए यथार्थ का सीधा-सहज बयान भी है। कस्बे का शहर में होता रूपान्तरण और नतीजतन टूटते हुए घर और मानवीय सम्बन्धों की व्यथा-कथा कहती इन कहानियों में, लेकिन, सुबोध का दृष्टिकोण नकारात्मक या निराशावादी नहीं है। आवर्त दशमलव के बाद के अंकों की तरह हाशिये पर जीते, अस्तित्वहीन लोगों में भी जीवन-आस्था और मानवीय सामर्थ्य में विश्वास है। मस्जिद ढहा दिए जाने की बरसी (छह दिसम्बर) पर अपने पुराने साथी नदीम के घर लौटता हुआ मैं, एक-दूसरे को कटुआ और काफिर कहने वाले लोगों के बीच भी ईद मिलाप पर भरत-मिलाप का अभिप्राय अध्यारोपित करता हुआ अपनी धर्मनिपरेक्ष सकारात्मक सोच को रेखांकित करता है। इन कहानियों में विषण्णयथार्थ के बावजूद सुबोध की प्रगतिशील चेतना और दृष्टि सहज ही देखी जा सकती है।

'सड़क देश की अर्थव्यवस्था की तरह डाँवाडोल थी' या ''कामचलाऊ प्रधानमंत्री को भी अपने पद से चिपके रहने पर भी उतनी खुशी नहीं हुई होगी, जितनी मुझे बचपन में दूध की गुइयाँ बनने पर होती थीं'' सरीखी अभिव्यक्तियों के माध्यम से आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था पर व्यंग्य की चोट करने वाले सुबोध की भाषा में भी एक ताजगी और टटकापन मिलता है। दिन के इन चार बयानों पर गौर कीजिए : *(1) रेत से बीने चमकीले पत्थरों से अनमोल दिन (2) चमचमाते दिन, (3)चकमक पत्थर जैसे जादू भरे दिन (4) तितलियों की तरह यहाँ-वहाँ मँडराते बेफिक्र दिन और आँखों में रंगीन मछली की तरह उछलता बचपन....*

'रात और मौत के आगे-आगे सुबोध का लघु उपन्यास है जिसे लम्बी कहानी कहना ज्यादा मुनासिब है। उपन्यास या कहानी से अधिक यह एक रिपोर्ताज है - दो-तीन दिसम्बर 1984 की उस भयावह रात का जिसमें यूनियन कार्बाइड के कारखाने से रिसी गैस से भोपाल में मौत का कहर बरपा हुआ था। सुबोध अपने मित्र की बारात में भोपाल आए थे और ऐन उस इलाके में रुके थे, जहाँ गैस का असर सबसे ज्यादा था। अपने और अपने मित्रों के साथ बीती रात की उस त्रासद दुर्घटना का तवील ब्यौरों के साथ इतना तात्कालिक विवरण सुबोध ने दिया है कि पढ़ने के दौरान वह काली भयावह रात आसमान में फिर उतरती महसूस होती है और एक हैबतनाक कैफियत न केवल तारी हो जाती है, बल्कि हमारा पीछा करती हुई हमारे भीतर उतर जाती है। यह ''आँखों देखे हालात'' के बयान से आगे बढ़कर एक भुक्तभोगी की आपबीती भी है। इसीलिए इतनी प्रामाणिक है। यहाँ भी सुबोध ने घटना का विन्यास इस तरह रचा है कि एक भयानक त्रासदी के विवरण का समापन नयी जीवन यात्रा के मुहूर्त में होता है। यह सुबोध की सकारात्मक और आशावादी दृष्टि का प्रमाण है।

मो.94250-19863

सुधिजनों की दृष्टि में सुबोध कुमार श्रीवास्तव का कृतित्व

राजधानी में आठ दिन सुबोध कुमार श्रीवास्तव का पहला उपन्यास है। इस उपन्यास के पीछे आत्मविश्वास से भरा एक सधे हुए उपन्यासकार का व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है। 'राजधानी में आठ दिन' मौजूदा राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में फैली पतनशीलता को नंगा करने वाला उपन्यास है।

- अखिलेश

हिन्दी कहानी-लेखकों की सूची में निरन्तर नये नाम जुड़ते चले जा रहे हैं और उनकी रचना दृष्टि अवश्य ही इस बात का आश्वासन देती है कि वे अपने समय के यथार्थ को शिद्दत के साथ व्यक्त कर रहे हैं। उनकी शैली में व्यंग्य कापुट चाहे वह धीमा या प्रखर हो अथवा अन्तर्निहित-पाठक की चेतना पर दस्तक देने में सफल है और इससे उसे अपने माहौल का सही स्वरूप जानने में मदद मिलती है। सुबोध कुमार श्रीवास्तव के 'रक्तदान' को भी इसी आलोक में देखा जा सकता है।

- देवेश ठाकुर

सुबोध कुमार श्रीवास्तव का उपन्यास 'हीरा परा बाजार में'है। पूरे उपन्यास में सर्वहारा के प्रति एक सचित्र आग्रह उपन्यासकार कर रहा है। कहीं लाग-लपेट या कृत्रिम आडम्बर में वह नहीं पड़ा है। समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारी क्या है, इसे वह बखूबी समझता है। उपन्यास में एक ऐसा समाज हमारे सामने आता है जो है तो हमारा, पर हम उसे स्वीकार नहीं कर पाते। यहाँ पर प्रश्न उठ सकता है कि ऐसा क्यों है ? सीधा और छोटा उत्तर है- दृष्टि का अन्तर। लेखक ने एक जिम्मेदारी ली है और उसे पूरा करने की कोशिश में वह अन्त तक लगा रहा है।

- शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी

आज के दौर में जबकि ज्यादातर चीजें अपाठ्य होती जा रही हैं, पाठकों को बाँधकर पढ़ने पर बाध्य कर देने की सामर्थ्य रखने वाली सुबोध श्रीवास्तव के कहानी संग्रह की ये कहानियाँ एक सुखद अनुभूति प्रदान करती है। अपने समय की कठिनाइयों एवं जटिलताओं को ये जहाँ चित्रित करती हैं वहीं उनसे बिना असहज हुए जूझने एवं निबटने की कला भी सिखलाती है। प्रस्तुत कहानी संग्रह तथाकथित आधुनिक हिन्दी कहानियों की ऊब और जड़ता से अलग पाठक को ताजगी व ऊर्जा प्रदान करेगा और अपने व अपने सामाजिक जीवन को देखने-भोगने की एक नयी दृष्टि प्रदान कर सकेगा।

- अशोक श्रीवास्तव

सुबोध छोटे उपन्यासों की रचना करते हैं। उनकी रचना यात्रा में लंबी कहानियाँ तो हैं, लेकिन उपन्यासों के कलेवर छोटे हैं। उनकी रचनात्मकता का एक पहलू यह भी है कि वे अमिधा के लेखक हैं। सीधी-सरल भाषा में चीजों को उनके मूल रूप में वैसा ही प्रस्तुत करना उनकी खासियत है। यह नहीं कि विषय-वस्तु की गहराई में वे नहीं उतरते, किन्तु भाषा अलंकरण उनका स्वभाव नहीं है। वे अपनी सादगी में ही ग्राह्य और पठनीय हैं। ये विशेषताएँ कभी-कभी उनकी सीमा भी बन जाती है जिसका अतिक्रमण वे नहीं कर पाते। उन्हें पढ़कर यह भी लगता है कि अपने जाने-पहचाने जीवननानुभवों को ही वे अपनी रचना के केन्द्र में रखते हैं। उसके बाहर आने के उत्सुक वे नहीं दिखलाई देते।

- रमाकांत श्रीवास्तव

कहूँ कि सुबोध का नाम ही उनका सर्वश्रेष्ठ रचनात्मक परिचय भी है तो यह कतई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनकी कहन तिर्यक अलौकिकताओं के संधान की जगह सहज अभिव्यक्ति की पक्षधर है। यह सहजता ही उन्हें सबसे अलग और अपरिहार्य बनाती है। इसीलिए 1970 के समय लिखी गई उनकी कहानियाँ आज भविष्य कथन की तरह लगती हैं और चार दशकों में फैले विस्तृत रचनात्मक संसार में सुसम्बद्ध जीवनदृष्टि की परिपक्वता का परिचय देती है। उनका निहायत बेफिक्र और फक्कड़ अंजदाज जिन्दगी की गहन विषमताओं का सीवन उधेड़ देता है। अपने पात्रों के साथ उनकी संलग्नता जीवन को कुरूप बनाने वाली बदकारियों को इस तरह मुँह चिढ़ाती है कि लेखक और उसके पास एकरूप होकर पाठक के अंतरंग में उतरते हैं। एक सामान्य-सी घटना, एक निरीह-सा पात्र, एक छोटी-सी विसंगति जीवन के वृहत्तर आयामों के अनुसंधानों का कारण बन जाती है। इसीलिए महानता की चौचक उलटबाँसियों के आवर्त तक यहाँ एकरेखीय सरलता में उद्घाटित ही नहीं होते अपनी गुरुता से उस दुर्निवार पीड़ा से निष्कृति के आलोक की पहचान कर सकने का हौसला भी देते हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक और इक्कीसवीं सदी के बिल्कुल शुरूआती दौर में लिखी गई सुबोध कुमार श्रीवास्तव की दस कहानियों का नवीनतम संग्रह 'कुछ-कुछ अपना' विलक्षणताओं के इस दौर में एक आत्मीय चुनौती की तरह है जिसे पढ़ते हुए हमारे भीतर गालिब गुनगुना जाते हैं- 'कतरे में दजला दिखाई ने दे और जुज्ब में कुल, खेल लड़कों का हुआ दीदा-ए-बीना न हुआ।'

- प्रहलाद अग्रवाल

समकालीन कहानी के प्रतिमानों की परवाह किये बगैर, वे अपने प्रतिमान और मुहावरे स्वयं रचते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों, लोक जीवन के मुहावरों से प्रचलित भाषा में कब कहानी बन जाती है पता ही नहीं चलता। सच तो यह है कि वहाँ ऐसा कोई प्रयास भी नहीं है, अपितु चरित्र और घटनाओं के प्रवाह में यह आप ही साकार हो उठता है। इसलिए संयुक्त और संश्लिष्ट वाक्यों की दीर्घ रचना, गुंफित विचारों का घटाटोप, गतिशील यथार्थ की भीषणता यहाँ सिरे से नदारद है।

- हनुमंत किशोर

सुबोध श्रीवास्तव के पास अभिव्यक्ति के लिए अपनी एक भाषा है और उसका मुहवरा भी जो प्रयोजन मूलक भी है संवादात्मक भी। पुस्तक की संरचना, इसकी भाषा, शिल्प, शैली, मूल कथानक से इकसार हैं। अकृत्रिम भाषा बोधगम्य, हृदयस्पर्शी तथा पाठकों को संवेदित करने में सक्षम है।

- शिवकुमार अर्चन

साक्षात्कार

आज भी हमारे देश के गाँवों की दशा प्रेमचन्द के युग से बेहतर नहीं है...

प्रख्यात कथाकार श्री सुबोध श्रीवास्तव से डॉ.भूपेन्द्र हरदेनिया की बातचीत

आपने कहानी लिखना कब से शुरू की? यदि स्मरण हो तो यह भी बताइए कि, पहली कहानी का विषय क्या था? साथ ही यह भी बताइए कि आपकी पहली कहानी किस पत्रिका में और कब छपी थी?

सम्भवतः उन्नीस सौ बासठ-तिरेसठ में मैंने कुछ कहानियाँ लिखी थीं जो जबलपुर के स्थानीय समाचार पत्रों व कुछ अन्चीन्ही सी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। अब मेरे पास ये कहानियाँ नहीं हैं। 1966 के 'नई कहानियाँ' के ग्रीष्म विशेषांक में भीष्म साहनी जी ने मेरी कहानी 'एक उदास दिन' प्रकाशित की। यह एक भावुक सी पारिवारिक कहानी है।

आप अपने बाल्यकाल के अनुभवों के बारे में, अपने कहानीकार के मन पर पड़े शुरूआती प्रभावों और निर्णायक प्रसंगों के बारे में कुछ बताएँ?

जब मेरी उम्र छः वर्ष की थी, मेरे पिता का निधन हो गया। नौ भाई-बहनों में मेरा नम्बर आठवां था। तीन बहनों की शादी पिताजी के रहते हो चुकी थी। बड़े भैया बी.ए. द्वितीय वर्ष के छात्र थे। दिन पहाड़ से भारी होचुके थे, लेकिन हमारे तीन ताऊओं और तीन बहनों ने हमें सहाँरा दिया। बचपन में मैंने अभाव तो देखे लेकिन गरीबी नहीं। बारह वर्ष की उम्र तक मैं दमोह में रहा फिर बड़े भैया परिवार को जबलपुर ले गए। वे एक प्रांतीय अखबार के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे थे। पूरे दस वर्ष तक मैं जबलपुर रहा। हाँलाँकि अभाव यहाँ भी पीछे पड़े रहे लेकिन मैंने अपना बचपन मस्तीभरी फक्कड़ता के साथ ही बिताया। न सही क्रिकेट, गिल्ली-डंडा तो था ही। बचपन मुझे आज भी अपनी ओर खींचता है। मेरी नई कहानियों में अनायास ही मेरा बचपन उतर आता है। यदि मेरा लड़कपन अभावों से भरा न होता तो शायद मैं कहानियाँ न लिख पाता। बाल्यकाल के खट्टे मीठे अनुभव तो ताउम्र व्यक्ति के साथ जुड़े रहते हैं। कहानीकार भी इनसे बच नहीं सकता। चाहे-अनचाहे बचपन के प्रसंग कहानी में आ ही जाते हैं।

समकालीन कहानी, अकहानी, समानांतर कहानियों में क्या अंतर है।

अकहानी समानांतर कहानी आंदोलन एक विशेष दौर में चर्चित रहे। मूलतः ये व्यक्ति केन्द्रित आंदोलन थे और अपने प्रभामंडल को विस्तार देना चाहते थे। कुछ कथाकार इनसे जुड़े भी। आपने सचेतन कहानी का उल्लेख नहीं किया। इसकी भी धूम रही। अब इन आंदोलनों का मात्र ऐतिहासिक महत्त्व है। कहानी अपने समय से मुठभेड़ करती है और समकालीन रहती है। कहानी के आगे आप कितने भी विशेषण लगा दें, कहानी तो कहानी ही रहेगी।

आप अपनी कहानी को किस श्रेणी में रखते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर पाठक देंगे। मैं अपनी कहानियों को कहानी की श्रेणी में रखता हूँ। निम्न और निम्न मध्यवर्ग के पात्रों का जीवन संघर्ष ही मेरी अधिकतर कहानियों का विषय रहा है। उच्च मध्यवर्ग और उच्चवर्ग तक मेरी पहुँच कभी रही ही नहीं। आज भी नहीं है।

आपकी कहानी की रचना-प्रक्रिया क्या है, तथा आप उसे कितने स्तरों में बाँटते हैं।

मेरा उत्तर सुनकर आप हँसेंगे कि मेरी कहानी की कोई रचना-प्रक्रिया नहीं है। जब इच्छा होती है, लिखने बैठ जाता हूँ। कुछ कहानियाँ तो एक ही बैठक में पूरी हो जाती हैं, लेकिन ऐसी भी रचनाएँ हैं जो तीन-चार माह ले लेती हैं। हाँ, पहले संक्षिप्त में कच्चा माल तैयार करता हूँ फिर उसे विस्तार देता हूँ। हाथ से ही लिखता हूँ, जो भी पेन हाथ आ जाए उसी से। मैंने कहानी को कई स्तरों में बांटने की कोशिश सायास कभी नहीं की। यूँ भी मेरी कहानियों का कथ्य उलझा हुआ नहीं होता।

क्या कहानी लिखते समय आप समाधिस्थ होते हैं। या यूँ ही चलते फिरते कहानियाँ गढ़लिया करते हैं?

मैं योगी नहीं हूँ। कभी भी समाधिस्थ नहीं होता। कहानी लिखते समय भी। चलते-फिरते, घूमते-घामते सड़कों पर, पान के ठेलों पर, चाय की गुमठियों में मुझे मेरी कहानी के लिए पात्र मिल जाते हैं। शोर-शराबे के बीच भी मैं लिख लेता हूँ। अभी टी.वी. पर मेरी पत्नी कोई सीरियल देख रही है और उसी कमरे में बैठकर मैं आपके प्रश्नों के उत्तर लिख रहा हूँ। बैठक में बैठकर कहानी लिखी जा सकती है, लेकिन कथ्य की खोज के लिए घर से बाहर निकलना पड़ता है।

आपकी कहानियों को पढ़ते हुए सुखद आश्चर्य होता कि आप बड़ी ही रचनात्मक भाषा का इस्तेमाल कर लेते हैं। कहानी लिखते समय क्या आपकी भाषा किसी प्रकार के रचनात्मक तनाव से गुजरती हैं। कहानी की भाषा के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? कहानियों की भाषा किस प्रकार की होनी चाहिए?

आपकी इस बात से मैं सहमत नहीं हूँ कि मैं बड़ी ही रचनात्मक भाषा का इस्तेमाल कर लेता हूँ। मैं बेहद सरल, सीधी, सपाट भाषा का प्रयोग करता हूँ। जैसा तू बोलता है, वैसा तू लिख -में मेरा भरोसा है । मैं यह भी जानता हूँ कि मेरी सरल भाषा को मेरी कमजोरी माना जाता है लेकिन मैं भाषा के साथ कुश्ती लड़ने की कला नहीं जानता। मैंने भाषा के साथ खिलवाड़ करने के गुर नहीं सीखे। कहानी की भाषा ऐसी तो होनी ही चाहिए कि जिसके लिए वह लिखी जा रही है, उस पाठकवर्ग को उसे समझने में मगजमारी न करनी पड़े।

प्रेमचन्द युगीन कहानियों और आज की कहानियों में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से क्या अंतर है, क्या आज की कहानी भी प्रेमचन्दी मनोभूमि को ग्रहण कर पायी है। आप की कहानी इसके कितने करीब है।

सम्भवतः 'कफन' कहानी प्रेमचन्द ने 1936 में लिखी थी। 'गोदान' भी 1936

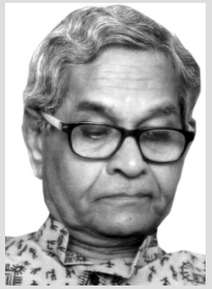

में आया। आज अस्सी वर्ष बाद दुनिया बहुत बदल चुकी है। प्रेमचन्द युगीन कहानियों के शिल्प में और इधर लिखी जा रही कहानियों के शिल्प में अंतर तो आया ही है। पहले कथ्य प्रधान कहानियों को सराहा जाता था, आज शिल्प प्रधान लेकिन कथ्यहीन कहानियाँ प्रशंसित होरही हैं। लेकिन यदि कहानी में शिल्प चमत्कारी है और कथ्य के नाम पर लफ्फाजी अधिक है तो कथाकार सालजीवी भले ही होजाए, कालजीवी होने से तो रहा । पर प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले लेखक ही बड़े लेखक हुए। भारतीय ग्रामीण समाज की आत्मा को गांधी के बाद यदि किसी ने पहचाना था तो वे प्रेमचन्द थे। आज भी हमारे देश के गांवों की दशा प्रेमचन्द के युग से बेहतर नहीं है। तीन लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। यह सुखद है कि हमारे कुछ प्रतिभाशाली युवा कथाकारों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने अपनी कहानियों में जोरदार तरीके से इस विषय को उठाया। प्रेमचन्द को पढ़े बिना कोई लेखक बन नहीं सकता।

कहानियों में कथ्य और कलात्मक संतुलन की कोई सीमा तय होना चाहिए या कहानी कथ्य प्रधान होना चाहिए?

कहानी कथ्य प्रधान होना चाहिए। कलात्मक संतुलन भी आवश्यक है लेकिन शिल्प इतना पेचीदा भी न हो कि कथ्य के तार बार-बार टूटें और पाठक आधी-अधूरी कहानी पढ़कर उसे बीच में ही छोड़ दे। कथ्य और शिल्प के कलात्मक संतुलन की बेजोड़ कालजयी कहानी है गुलेरी जी की 'उसने कहाँ था'। 'कफन' भी इसी श्रेणी की कहानी है।

यह सवाल बार-बार उठाया जाता है कि कहानी में आलोचना का विकास नहीं हो पाया। यद्यपि कोई सुगबुगाहट देखने को नहीं मिलती। एकाध आलोचक को छोड़ दें तो शेष जितने भी कहानी के आलोचक हैं, वे कहानीकार ही हैं?

आपका यह कहना कि कहानी में आलोचना का विकास नहीं हुआ शत-प्रतिशत सही है। इस दृष्टि से कविता की स्थिति बहुत अच्छी रही। समीक्षकों ने कवियों को इतना महिमामंडित किया कि अधिकांश साहित्य अकादमी पुरस्कार कवियों को मिले। उंगलियों पर गिनने लायक कहानीकार पुरस्कृत हुए। नामवर जी, धनंजय वर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी, सुरेन्द्र चौधरी और राजेन्द्र यादव के नाम याद आ रहे हैं, जिन्होंने कथा-आलोचना पर कुछ कलम चलाई। अपनी उपेक्षा देखकर कहानीकारों ने यह दायित्व अपने ऊपर ले लिया। तुम हमारी प्रशंसा करो, हम तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। कुछ पत्रिकाओं के सम्पादकों ने, युवा लेखकों को अपने खेमे में खींचने के लिए, पत्रिकाओं के कथा विशेषांक निकाले और इस तरह कुछ कहानीकार भी आलोचना के अखाड़े में कूद पड़े।

आजकल सौंदर्यशास्त्र परिचर्चा में है, क्या कहानी का भी कोई सौंदर्यशास्त्र होता है। अगर हाँ तो कहानी और सौंदर्यशास्त्र का आपस में क्या मेल है?

कहानी का सौंदर्यशास्त्र किस्सागोई में है। यदि कहानी पढ़ते समय कहानी सुनने जैसा आनंद मिले तो कहानी का लेखन सार्थक होजाता है। कहानी सम्प्रेषणीय हों, जिनके लिए लिखी गई है, वे उसका मर्म समझें और कहानी में डूब जाएँ-यही कहानी का सौंदर्यशास्त्र है।

आज के टेक्नोलाजी के युग में शहरीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद के नये रूप उभर कर आये हैं और एक सर्वव्यापी मूल्यहीनता ज्यादा विकराल हुई है-इन दबावों ने आज लिखी जा रही हिंदी कहानी को किस रूप में प्रभावित किया है?

टेक्नोलाजी के युग में उभरे शहरीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद के खतरों को कहानीकार समझ रहे हैं और आपके शब्दों में 'सर्वव्यापी मूल्यहीनता' के इस दौर में भी गलत को गलत कहने में नहीं हिचकिचा रहे हैं। यह साहस सिर्फ उन लेखकों में है जिन्होंने वर्तमान सत्ता द्वारा दिए गए प्रलोभनों के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया है। सत्ता के सींग कुछ ढुलमुल लेखकों को डरा सकते हैं, सत्ता के हरे पत्ते कुछेक को बहला-फुसला सकते हैं लेकिन जो प्रगतिशील-जनवादी हैं, अपनी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं, वे अपने लेखन में हाथी की चाल चल रहे हैं। शहरीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद पूँजीवाद की देन है और देश के कुछ 'अ' श्रेणी के पूँजीपतियों ने वर्तमान सत्ता को अपनी रखैल बना रखा है। इस मूल्यहीनता ने हिन्दी कहानी को ऊर्जा प्रदान की है।

हिन्दी कहानी की वर्तमान स्थिति पर आपकी क्या राय है?

हिन्दी कहानी की वर्तमान स्थिति संतोष जनक है। भरमार कहानियों के बीच कुछ युवा लेखक न केवल नई जमीन तोड़ रहे हैं वरन् अद्भुत कहानियाँ रच रहे हैं। चिंता की बात यह है कि यदि किसी लेखक या लेखिका की दो-तीन कहानियाँ चर्चित होजाती हैं तो सम्पादक उसकी बेहद कमजोर कहानियों को भी विशेष प्रशंसनीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित करते हैं। यह कारनामा वे सम्पादक भी करने लगे हैं जिन्हें हम अपना आदर्श मानते हैं। कुछ युवा लेखक-लेखिका अपनी एक ही कहानी को दो-तीन पत्रिकाओं में छपा लेते हैं। पूछने पर तर्क देते हैं कि उनकी कहानियों की माँग बहुत अधिक है। यह अच्छी प्रवृत्ति नहीं है। इस तरह की आत्ममुग्धता लेखक का हित लम्बे समय तक नहीं कर सकेगी।

क्या आप यह पाते हैं कि वर्तमान में लिखी जा रही हिंदी कहानी अपने सौंदर्य-बोध, अपनी भाषिक संरचना और अपने अभिव्यक्ति पैटर्न में अधिक विविध और सम्पन्न हुई है या इसमें एकरसता आयी है?

वर्तमान कहानी के पूरे परिदृश्य पर नजर डालें तो आज की कहानी कुछ, हद तक, अपने सौन्दर्य-बोध, अपनी भाषिक संरचना और अपने अभिव्यक्ति पैटर्न में अधिक विविध और सम्पन्न हुई है। कई कहानीकारों ने नए-नए प्रयोग किए । दो-एक ही सफल हुए। एक-दो कहानियों के बाद औंधे मुँह गिरने वालों की संख्या अधिक है। एक बात ध्यान में रखनी होगी कि आज तीन पीढ़ियों के लेखक एक साथ लिख रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के लेखकों से आप यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वे अभिव्यक्ति के नए पैटर्न को अपना लें। वे अपने सुनहरे काल में जीवित रहना चाहेंगे।

इन दिनों आप क्या लिख-पढ़रहे हैं?

रिटायर्ड प्राध्यापक हूँ। उम्र की लगभग, आखिरी ढलान है। पढ़ना-लिखना ही ठौर है। पढ़ना अधिक पर लिखना कम हो रहा है। वर्षों पहले पढे उपन्यास फिर पढ़रहा हूँ। रात को सोने से पहले अपने प्रिय कवियों की कविताएँ पढ़ता हूँ। पत्रिकाएँ तो पढ़ता ही हूँ।

चरोरे पाड़ा, बड़ा बाजार तहसील रोड, सबलगढ़
जिला मुरैना म.प्र. 476229
मो.नं.098935-23538

सोनी पाण्डेय की कविताएँ

"स्त्री विमर्श को लेकर कवियों में दो तरह के पक्ष हैं-विशेषकर युवा कवयित्रियों में। एक पक्ष थोड़ा तल्ख है जो 'बोल्ड' किस्म का है और जिसमें कवि स्त्री की पराधीनता और पितृसत्तात्मक परिवेश पर खुल कर प्रहार करते हैं तथा किसी भी कीमत पर इनसे मुक्ति चाहते हैं। दूसरा पक्ष वह है जो भारतीय स्त्री की परम्परा, विवशता, बेचैनी और उदासी को उजागर करता है। मुक्ति की आकांक्षा यहाँ पर भी लेकिन इसका स्वर मंद है (हालांकि इससे उसका महत्व कम नहीं होता)। युवा कवयित्री सोनी पाण्डेय इसी दूसरे पक्ष की कवयित्री हैं। वे भारतीय समाज, उसमें स्त्री की वास्तविक स्थिति और मुक्ति की आकांक्षा के साथ व्यावहारिक अनुभव को नजरअंदाज नहीं कर पातीं। इसीलिए वे किसी भी अतिरेक के पक्ष में न होकर एक एक स्वाभाविक बदलाव की पक्षधर हैं। स्त्री-विमर्श के इन दोनों पक्षों की तुलना करना और उनमें से किसी एक को श्रेष्ठतर कहना व्यर्थ है क्योंकि ये एक ही गंतव्य के दो भिन्न मार्ग हैं। 'तीसरी बेटी का हलफनामा' जैसी कविता में हालांकि उनका स्वर अन्य कविताओं की अपेक्षा तल्ख है। यहाँ परिवार की एक उपेक्षित बेटी जिसे लगभग अमावस मान लिया गया है, अपने पिता से तीखे और ज्वलंत सवाल करती है। कविता में उसके आत्मविश्वास का उजास परंपरागत अँधेरे को चीरकर अपने लिए एक स्पेस की मांग करता है-'सुनिये बाबूजी!/ मेरे अंदर जो दहकता हुआ बहता है/ गर्म लावा/ वो मेरी उपेक्षा का दंश/ और बेटियों की प्रतिभा का/ दमघोंटू सन्नाटा है/ जहाँ जलता है भभककर/ सभ्यता का उत्कर्ष'। सोनी पाण्डेय को अपनी परंपरा की सुध है लेकिन एक तार्किक और प्रश्नाकुल मन बार-बार यह सवाल करता है कि इनके जरिये हो रहे विस्थापन का दर्द औरत को ही क्यों झेलना पड़ता है। जाहिर है कि अपनी जड़ों को एक नई मिट्टी में स्थापित करने पर पौधा कुछ समय के लिए कुम्हला जाता है। यदि इस नए पर्यावरण में इन जड़ों को समुचित खाद-पानी न मिले तो यह क्लांति स्थायी हो जाती है। वह विस्थापन की इस अनवरत प्रक्रिया से इस कदर भयभीत और निराश है कि 'विस्थापित औरतें' कविता में वह अंततः एक गमले में तब्दील हो जाना चाहती है ताकि अपनी जड़ों समेत स्थानांतरित हो सके। अपनी एक दूसरी कविता में वे गमले के पौधे की सीमाओं को भी रेखांकित करती हैं। औरतों की गमले में सजे बोन्साई से तुलना कर वे स्त्री के प्राकृतिक और स्वाभाविक स्वातंत्र्य एवं विकास की मांग करती हैं। 'नींद और अखबार' कविता का तेवर कुछ भिन्न है। यहाँ आपको समसामयिकता के साथ कवयित्री की राजनीतिक चेतना के भी दर्शन होते हैं। हालांकि यहाँ भी स्त्रियों के साथ होने वाली दुर्घटनाएँ ही केंद्र में हैं जिसे वे अखबार की स्याही से भी स्याह मानती हैं। एक ऐसे डरावने अँधेरे में जकड़ा मन जो सुबह के अखबार उठाने मात्र से ही भयभीत है। 'ताला' एक और महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें भारतीय परिवार में लिंगभेद की विसंगति का गहन प्रेक्षण है। लड़की को लेकर परिवार में प्रचलित धारणाएँ, उनके कथित चाल-चलन के पैरामीटर्स को लेकर कवयित्री व्यथित है। यहाँ यह रेखांकित करने योग्य है कि इन बाह्य प्रेक्षणों के बावजूद उनका सर्वाधिक जोर लड़की के स्वप्नों पर है। याने वे इस तरह स्त्री मुक्ति के मर्म तक पहुँचती हैं-'सबसे बड़ा पहरा/ हमारे सपनों पर है/ और मेरे प्रिय कवि पाश कहते हैं/ सबसे बुरा है/ हमारे सपनों का मर जाना...।' 'शोक गीत' एक मार्मिक कविता है जिसमें स्त्री के अपने बचपन और उसके परिवेश के प्रति रागात्मकता को चित्रित किया गया है। कविता भले ही अपनी प्रकृति में अतिनॉस्टेल्जिक लगती हो लेकिन यह इस यंत्रचलित आधुनिक युग का सिसकता सच भी है। गनीमत है कि यह सच अभी बचा हुआ है और अभी भी स्त्रियाँ 'नइहर गंगा छूटत नाहीं...' की तर्ज पर आँखें भिगोती हैं। 'एक खत तुम्हारे नाम का' एक ब्याहता पुत्री के अपनी माँ को लिखे अपूर्ण पत्र की मार्मिक कविता है। हमारे परिवार में माँ, बेटी, बहन इत्यादि मानो स्त्री-पीड़ा की विभिन्न धाराएँ हैं। इनमें यदि कोई एक चीज साझा है तो वह है उनके दुःख। सोनी ने माँ-बेटी के इस दुःख को अपनी कविता में पूरी संवेदना से जीवंत किया है-'एक दिन तुम्हारी ही तरह बैठ कर चौखट पर/ समझाती मिलूँगी/ कि बेटियाँ माँ का मान और अभिमान है/ इसलिए उतना ही लिखें खत में/ जितना पढ़सकें माँ...'। 'दर्द' कविता भी परिवार में रोजमर्रा की स्त्री-उपेक्षा को बयां करती है लेकिन इसमें एक कटाक्ष भी है। यह कविता स्त्री-विमर्श के उस दूसरे पक्ष की सीमा भी है जिसका जिक्र पहले किया। 'प्रेम ' कविता में कवयित्री ने आत्मिक और कायिक प्रेम के दर्शन को मिथकीय रंग देने का प्रयास किया है। सोनी पाण्डेय एक ऐसी युवा कवयित्री हैं जो बचपन से माँ के मुख से-'जाहिं यर कन्या कुमारी नींद कैसे आवीं' गीत सुनते बड़ी हुई हैं। भिन्सारे गाए उन गीतों के मर्म को सोनी ने अपनी कविता की ताकत बनाया है। परम्परा के सत्त्व को लेकर परम्परा से विद्रोह उनकी मूल प्रतिज्ञा है जिसका निर्वहन वे बखूबी करती हैं।"

निरंजन श्रोत्रिय

तीसरी बेटी का हलफनामा

सुनिये बाबूजी!
मैं धरती-आकाश, अन्न-जल,
अग्नि-हवा को
हाजिर-नाजिर मानकर
यह स्वीकारती हूँ कि
मैं हमेशा आपके लिए
अछूत अनगढ़पहेली ही रही
मैं लड़ती रही हूँ आज तक खुद से
यह बताने के लिए कि
मैं भी आपकी बेटी हूँ

सुनिये बाबूजी!
मैं हर बार आपकी चुनौतियाँ
स्वीकारती रही
और करती रही अथक श्रम
आपने सीमेंट-बालू रख लिया
अपनी अन्य संतानों के लिए
मैंने ईंट-गारे से ही बना डाली सीढ़ी
और पायदान दर पायदान चढ़ती रही
आप व्यंग्य से मुस्कराकर निकलते रहे
आपने बनाया था औरों के लिए महल
और छोड़ दिया मेरे लिए
बूढ़े बरगद का कोटर
मैंने वहीं उगाया रजनीगंधा
जिसकी महक आज भी घुली है
आपके महल की आत्मा में

मैं गढ़ती रही
राजा के लोहार के बेटे की तरह
धारदार तलवारें
और आप व्यंग्य से मुस्कराकर निकलते रहे
फिर भी लोहार पुत्र की तरह
मैंने कभी सोचा नहीं कि
उतार लूँ आपकी गरदन
अपनी तेज धारदार तलवार से
काश! आप उन्हें देख पाते
जो अपनी भोथरी छुरी से
काटते रहे आपकी नाक
आप लाते रहे सबके लिए
ढेर सारे खिलौने
दिखाते रहे दिवास्वप्न
कि उनका भाग्य आपकी मुट्ठी में है
और मैं माँ की पुरानी साड़ियों को
पहन दो टूक कहती रही
मेरा भाग्य मेरे कर्म में है
काश! आप देख पाते मेरे होने का अर्थ
और सुन पाते तीसरी बेटी का दर्द।
मैं जानती हूँ
वो रात अमावस थी अम्माँ के लिए
आपके लिए प्रलय की थी
जब मैं आषाढ़में श्याम रंग में रंगी

बादलों की ओट से गिरी आपके आँगन में।
माँ धँसी थीं दस हाथ नीचे धरती में
बेटी को जन कर
बरसे थे धार धार उमड़ घुमड़ आषाढ़में
मेघ अम्माँ की आँखों से
कहा था सबने एक तो तीसरी बेटी
वो भी अंधकार-सी
और मान लिया आपने उस दिन से ही
मुझे घर का अँधियारा
मनाते रहे रात-दिन तीसरी बेटी का शोक।
देखा है मैंने आपको उगते हुए पूरब से
फैलते हुए आकाश तक
अपराजेय योद्धा की तरह
विजयी सर्वत्र किन्तु
यह भी कटु सत्य है
सूरज के अँधेरे में भी होता है
दक्खिन का कोना
जहाँ नहीं पहुँचती सभ्यता की रोशनी
विकास का भोर होता है
केवल दरवाजे पर
सदर फाटक पर बैठता है
आज भी पुरूष का अहं
और दक्खिन के कोन में बनाई जाती है
छोटी-सी खिरकी
यहीं से निकलती है सभ्यता के चौपाल पर
सूरज की बेटी।
यहाँ पाप है बेटी का बिहान
यहाँ महापाप है बेटी का प्रेम
यहाँ क्षय है संस्कृति का बेटी का होना
इसलिए आज भी मिलता है
दक्खिन का कोना
सुनिये बाबूजी!
मेरे अंदर जो दहकता हुआ बहता है
गर्म लावा
वो मेरी उपेक्षा का दंश
और बेटियों की प्रतिभा का
दमघोंटू सन्नाटा है
जहाँ जलता है भभककर
सभ्यता का उत्कर्ष।

माँ कहती थी बेटियाँ गंगा की बाढ़ हैं
समय रहते ही बाँध दो ब्याह के बंधन में
मैं सोचती रहीं
क्या यही है जीवन औरत का
खो जाना नून,तेल,
नाते,परते का गुणा-गणित
खूंटा गाय का जिससे बंधकर सहना है
एक अनचाहे-बेमेल ब्याह का अकथ दर्द
फिर भी माँ गाती थी
भिनसारे आँगन बुहारते हुए
'जाहिं घर कन्या कुमारी नींद कैसे आई'।

मेरे पास नहीं थे रास्ते
थे तो परम्परा के पहरे चौखट के बाहर
बेटे लिए सदर फाटक और
बेटी के लिए दक्खिन का कोना,
दहेज का रोना था।

क्यों बाबूजी!
क्या मैं नहीं बन सकती थी डॉक्टर
या प्रशासनिक अधिकारी ?
वहाँ जहाँ तीसरी बेटी करती है
रात-दिन अकथ श्रम
भरती है जतन से आपके 'मैं' की तिजोरी

बाबूजी!
आप मानेंगे एक दिन
ये तीसरी बेटी ही होगी
वो लायक संतान
जो पकड़े रही नींव को
गाँठे रही आँचल के कोर में
आपके मर्यादाओं की गठरी.....।

विस्थापित औरतें

पिता ने तलाश ली है
नई उर्वरा जमीन
खूब विस्तार है
पास ही नदी बहती है
दरवाजे पर राजा की सवारी है
परजा है पंसारी हैं
दूर तक फैला है ठाट
पिता की इकलौती संतान सन्नों
खोदी जा रही है जड़ों समेत
धूम-धड़ाके, गाजे-बाजे
शहनाईयों की धुन पर
चल रहा है कुदाल
हल्दी, मटमंगरा, बारात, द्वारपूजा
और अंततः सिन्दूरदान
उखड़ गई सन्नों
कराहते, रोते, चीत्कारते
पहुँची नई जमीन में
गाड़ी जा रही है सन्नों
भर रहे हैं घाव
निकल रही हैं शाखाएँ
मगर जानती है सन्नों
उखाड़ी जा सकती है
वह एक बार फिर
बेटों के हाथों
बीच से काटकर बांटी भी जा सकती है
इसलिए अपनी जड़ों की तलाश में
गड़ना चाहती है बेटी के लिए
एक ऐसा गमला जिसे आसानी से
जड़ समेत आयात-निर्यात किया जा सके
बिना उखाड़े।

पूरब में सूर्य

अलस्सुबह
पूरब में उगते सूर्य को निहारना
वस्तुतः एक ऐसी क्रिया है
जो जोड़ती है हमें जड़ों से
हम औरतें
सभ्यता के गमले में
उगा हुआ बोन्जाई हैं
जिसे आसानी से
हस्तांतरित किया जा सकता है
संवेदना की जमीन से उखाड़ कर
पैदा होते ही रोप दिया जाता है
आँगन में एक किनारे गमले में
खाद-पानी देकर
तैयार किया जाता है इस तरह कि
एक तय सीमा में
दान किया जा सके दूसरे के आँगन में
वहाँ किनारे से हटा कर आँगन के मध्य
तुलसी की तरह सजा दिया जाता है
खाद-पानी समय पर
सम्मान थोड़ा बढ़ाकर
हम औरतें जड़ों की तलाश में
पूजती हैं तुलसी
भोरे निहार आती हैं सूरज
कि उनकी जड़ों से
इनका उतना ही गहरा नाता है
जितना शिशु का गर्भनाल से और
मन ही मन कर लेती हैं संतोष कि
सूरज आज भी माँ के गर्भनाल से जुड़ा
जोड़ता है उन्हें जड़ों से।

नींद और अखबार

इन दिनों रात भर नींद नहीं आती
जैसे पी लिया हो
सारी दुनिया का गम आँखों ने
मोटी हो चुकी पलकें करती हैं सुबह चुगली
पूछा जाता है--
'सोई क्यों नहीं रात भर?'
'रोई थी क्या?'

अलस्सुबह खोलते दरवाजा
उठाते हुए अखबार
काँपते हैं हाथ
हर पन्ना स्याह धब्बों से भरा
चीत्कारती औरतों की तसवीरें
लहूलुहान लाशें
एक स्याह दुनिया का अन्तर्द्वन्द्व समेटे
अखबार खोलती हूँ.....

पहले पन्ने पर बड़ी-सी फोटो
विकास और साथ के दावे

गली का उदास आखिरी इंसान
कुत्ते से कह रहा है
'तुम चुप रहो मैं भौंकता हूँ
कि कल ही लुटी है मेरी आबरू
चलती कार में.....'

मैं डरने लगी हूँ अखबार से
जबकि सबसे अधिक भाता था
इतवारी अखबार
किस्से, कहानियों और कविताओं से भरा

जब आँखों में समाने नाचने लगी थीं
कुछ स्याह औरतें
कुलबुलाती औरतों के
किस्से सुनाते माँ से
जब हँसती थी लड़की
माँ झट काले कपड़े में
लोहबान और लौंग बाँध बाँह में कस कर
कि स्याह पहलू था उनके इतिहास का
कोई डायन...कुलडहनी...पूतखौकी
अभागी थी और छपती थीं
मोटे काले अक्षरों में
अखबार में
सख्त मनाही थी पढ़ने की
इतवारी अखबार का विशेष पन्ना
जबकि मैं दीवानी थी उसकी

एक कविता जन्मती थी पढ़कर
उतवारी पन्ना विशेष
और आज पके घाव-सा टपकता इतवार
देता है सूचना
चार औरतों संग किया दुष्कर्म
हाईवे पर...बस में...ट्रेन में
असुरक्षित सब स्कूल.. ऑफिस..घर भी!

खाती हूँ भय अगली सुबह के अखबार से
सो नहीं पाती रात भर।

ताला

उनके पास लड़कों के लिए
आज भी पूरी कायनात है
पर लड़कियों के लिए केवल
ताले...

एक ताला जबान पर लगा कर
कहा...
हँसना पर दाँत न दिखे...

एक ताला हाथ में लगाते हुए कहा
लिखना पर दर्द न दिखे...

एक ताला पैरों में लगाते हुए कहा
चलना पर चाल बेढंगी न हो...

एक ताला दिमाग पर जड़ते हुए कहा
सोचना पर सोच हमारी हो...

एक ताला मन पर मारते हुए
सख्त चेतावनी दी
कभी मनमानी मत करना...

सबसे विशाल ताला लगाया सपनों पर
फेंक दी चाभी सभ्यता के समुद्र में
वह जानते हैं सपने उफनते हैं
बदकते और पकते हैं
इसलिए उनकी दुनिया में
सबसे बड़ा पहरा
हमारे सपनों पर है
और मेरे प्रिय कवि पाश कहते हैं
सबसे बुरा है
हमारे सपनों का मर जाना...।

इलाज

वह आज भी महसूसती है
कुछ बजबजाता, लिसलिसा...
बदबूदार-सा बहता
जांघों के बीच
और इतना रगड़ती झावें से पैर
कि उभरने लगते रक्तिम निशान
दर्द की उभरती अनुभूति में
मन भर गिराती सिर से पाँव तक पानी
जब तक हाथ फटने नहीं लगते
धैर्य टूटने तक
नहाने का उपक्रम करते हुए
स्याह धब्बों का इतिहास कुरेदते
भूगोल की सारी आकृतियाँ
झांवें से रगड़-रगड़
लाल करती
भरपूर कोशिश कि
बाहर निकलते स्नानघर से
लोग केवल और केवल
चोट के निशान गिने तन के
मन के स्याह धब्बे दबे रहें वैसे ही
जैसे दबा दिये गए थे
सत्रहवें साल में....

वह डरती है अंधेरे से
रात से...आदमी की जात से
उनसे भी जो मौन रहे
उनसे भी जो चीखते रहे
उनसे भी जो गले लग जी भर रोए
डरती है रास्ते में साथ चलते उस मर्द से
जो बगल में बैठा बस में
बार-बार जबरन छुलाता है हाथ
उस मर्द के मुँह पर थूकते हुए
डर जाती है माँ से
माँ की राख हो चुकी काया
एकदम से जी उठती है इस खौफ में कि
वह खोल देगी बरसों पुराना राज
जिसे घर के निचले तहखाने में
छिपा मरी थी चैन से

लाइलाज कैंसर का अंतिम चरण ज्यों दहकता
वह दहकती उस सबसे सुखद क्षणों में
जिसके लिए आदमी
उतर आता है हैवानियत तक
जिसके लिए ऋषियों ने छोड़ दिया
ईश्वरत्व का मोह
जिसके आकर्षण में बंधा आदमी
चाट लेता औरत के तलवे
जिसकी अनुभूति में उतरते कहता
यही स्वर्ग है।

वह तो बस देह भर जीती है
देह उस मर्द की जागीर
जो सोया है अभी संतुष्ट हो
उलाहना देते हुए-'यू आर फ्रीज्ड'
वह दहकते हुए आवेश को समेटे
टटोलती है स्याह धब्बे
दर्द टभकने लगता है
आँखों में उतर आता है स्याह जहर
वह पी कर हलाहल मूँद लेती है आँखें
नींद उतरने लगती है जिस्म में
दर्द की चुभन ही बस इलाज है
स्याह धब्बों की चुभन से.....।

शोक गीत

तुम्हें छोड़कर जब भी लौटती हूँ
दो उदास आँखों की नमी
चली आती साथ-साथ
फाटक के खंभे पर सिर टिकाए खड़ी
जहाँ छोड़कर आती हूँ
वहीं मिलती हो हर बार
जैसे ठहरी हो वहीं
जहाँ से बिछड़े थे हम
विदा होते और करते....
उस चौराहे पर देख आती हो रास्ता
जिधर से आती है बस मेरे शहर की
एक दीपक जलाने के बहाने
चौराहे की देवी को ...
अब समझती हूँ
कि हम औरतें चौराहे
नीम के चबूतरे

क्यों पूजती हैं
मिल लेते हैं इसी बहाने
कुछ पहचाने चेहरों से
जो मिलते हैं मुझसे और तुमसे....

मैं उदासियों के शहर में
जब भी रोती हूँ
एक बुलबुल पुचकार जाती है
खिड़की से
तुम्हारे चावलों का कर्ज चुकाते
वह मुस्कुराती है
और मैं डूब जाती हूँ
तुम्हारे शोकाकुल संसार में
कि अम्माँ!
छोड़ते घर की देहरी
गली...सड़कों
हवा और पानी में सिहरती हूँ
बैठे-बैठे बस में बुदबुदा कर दम भर रो लेती हूँ
कि नइहर गंगा छूटत नाहीं....

जानती हूँ यह तुम्हारा ही नहीं
हम पूरी औरतों की कौम का
सबसे करूण शोक गीत है।

एक खत तुम्हारे नाम का

जब पहली बार आई थी
ब्याह कर ससुराल
सब कुछ उलट-पलट था
न लोग मन के थे न चीजें
और एक दिन दोपहर में
चुपके से बैठी
एक खत लिखा
लिखा कि कैसे रह लेती हैं लड़कियाँ
एक अजनबी दुनिया में
कैसे सह लेती हैं ताने माँ-बाप के नाम के
जब कि सब के सब
आईं किसी न किसी देस से उखड़
कि वे भी गुजरी होंगी ऐसे ही दौर से...

बनाते हुए पहली रसोई
काँपते हुए हाथों से
बार-बार याद करती तुम्हें
जानती थी
ये मेरी नहीं तुम्हारी परीक्षा है

सिलते हुए सास का पहला पेटीकोट
डरी थी इतना
कि जितना डरती थी नीम की भूतनी से
महीनों देती रही अनगिन परीक्षा
और करती रही सैकड़ों जतन
तुम्हें पास करने का

इन तमाम परीक्षाओं से जितना डरी
उतना नहीं डरी बोर्ड की परीक्षाओं से
लिखना चाहती थी वे यातनाएँ
लिखती रही, फाड़ती रही
वह पहला खत आज भी अपूर्ण है
जिसे परीक्षाओं के बढ़ते क्रम में
बार-बार लिखती और फाड़ती रही

एक दिन तुम्हारी ही तरह
बैठकर चौखट पर
समझाती मिलूँगी
कि बेटियाँ माँ का मान और अभिमान है
इसलिए उतना ही लिखें खत में
जितना पढ़सके माँ...।

दर्द

आजकल रहता है दर्द पैरों में
कमर और एड़ी में
मीठा दर्द दिन भर बना रहता है
इस दर्द को जितना जीती हूँ
दर्द की मिठास बढ़ती जाती है
सोचती हूँ जरूरी है एक ब्रेक
कह दूँ सबसे
मिलती हूँ ब्रेक के बाद
ब्रेक पर जाती उद्घोषिका की जैसे करते हो
प्रतीक्षा बेचैनी से
क्या करोगे मेरी भी'
नहीं.....

जानती हूँ तुम्हारा जवाब
मूव लगा लो
एक पेनकिलर देता हूँ
कुछ भी बना लो
पहले बता देती कि नहीं बनाना था खाना
कुछ आ गया होता बाजार से
ये तमाशा अच्छा नहीं...
इसलिए दर्द से दोस्ती है मेरी
अब दर्द की डोर थामे
घूम आती हूँ दर्द के हिमालय तक
मेरी एड़ी से घुटने तक
पैरों और कमर के टभकते दर्द का
बेरहम इलाज
मेरा मौन है।

प्रेम

ये जानते हुए कि
तुम्हारा प्रेम आज आत्मिक है
कल रंगेंगा थोड़ा गाढ़ा
और गाढ़ा
इस तरह रंगते हुए
बढ़ते हुए आत्मा की सीढ़ियाँ
एक दिन हो जाएगा इतना गाढ़ा
कि आत्मिक प्रेम कैसे बदला कायिक में

सुनों!
प्रेम की पराकाष्ठा ले जाती है
उस अनंत नाद-सौन्दर्य तक
जहाँ आत्मा के प्रवेश द्वार को लांघते हुए
तुम पहुँचते हो नतमस्तक
रेंगते हुए काया में
बदल जाते हो सुकोमल
नवीन काया में
तुम्हारे झुकते ही चूम लेती है श्रद्धा
तुम्हारा ललाट
क्या तुम जानते हो मनु
प्रेम की इस भाषा को...?

नाम : सोनी पाण्डेय
जन्म : 12 जुलाई 1975 को मऊनाथ भंजन जिले (उ.प्र.) में
शिक्षा : हिन्दी में एम.ए., पी-एच.डी.
सृजन : हिन्दी की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं, ब्लॉग्स में कविताएँ, कहानी, आलेख,रेखाचित्र
प्रकाशित, एक कविता-संग्रह 'मन की खुलती गिरहें'। पत्रिका 'गाथांतर' का संपादन।
सम्मान : कविता-संग्रह पर शीला सिद्धांतकर सम्मान, सेतु कविता सम्मान, धनपती देवी कथा सम्मान।
सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन
सम्पर्क : कृष्णा नगर, मऊ रोड, सिधारी, आजमगढ़- 276 001 (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : 09415907958
ई-मेल : pandeysoni.azh@gmail.com

नोट की चोट

मूल लेखक : अनीता सक्सेना
चयन : मुकेश वर्मा

अभी सब लोग नोट बंदी के सदमे से उबर भी न पाए थे कि यह काण्ड हो गया था ! सुबह-सुबह बड़े भैया ड्यूटी चले गए, भाभी ने वाशिंग मशीन में कपड़े धुलने के लिए डाले और घर के काम में जुट गईं, छुटकी ने धुले कपडे निकाले और सूखने डाल दिए , यहाँ तक तो सब ठीक-ठाक था हंगामा तब खड़ा हुआ जब अम्मा ने कपड़ों की घड़ी करना शुरू की ! अम्मा कपड़ों के तहाने को घड़ी करना ही कहती थीं ! उन्होंने मुश्किल से चार कपडे भी नहीं उठाये होंगे कि जैसे ही भैया का पेंट झटका उसमें से कुछ गिरा और पलक झपकते अम्मा पेंट कंधे पर टाँगे, हाथ की मुट्ठी बंद किये दहाड़े मारतीं नीचे उतर आईं ! भाभी किचन से निकल रही थीं, वही उनका पहला निशाना बनीं ! कपड़े भी तो उन्होंने ही धुलने डाले थे !

''काहे बहू,कित्ती हड़बड़ी रहती है तुम्हें ? कित्ता काम करो हो तुम जो तुम्हें इत्ती फुर्सत नाही मिली कि कपडा धोने डालने के पहले उन्हें झटकार तो लें, उन की जेब तो देख लें !'' अम्मा जब गुस्से में होती थीं तो उनकी आवाज के साथ उनकी भाषा ही बदल जाती थी ! भाभी भचिक्की सी उनको देख रही थीं , कुछ समझ नहीं आ रहा था उनको ! अम्मा की मुट्ठी में कुछ दबा हुआ था क्या था वह यह पता नहीं कर पाई, सिर्फ छुटकी की तरफ असहाय दृष्टि से देखने लगीं , छुटकी कुछ बोले इसके पहले अम्मा ने बंद मुट्ठी को सबके सामने खोल दिया सबकी आँखें फटी रह गई, सबके मुँह से एक चीख सी निकल गई ! अम्मा के हाथमें मुसा-तुसा लुगदी सा बना दो हजार का गुलाबी नोट था !

सबसे पहले छोटे भैया लपके उन्होंने बड़ी एहतियात से अम्मा के हाथ से नोट लिया और सुबह के अखबार पेपर पर लिटा दिया उसे ! जैसे किसी दुर्घटना के बाद पेशेंट को स्ट्रेचर पर लिटाया जाता है फिर पंखा चालू किया जिससे वह सूख जाए !

''कपडे सूखे हुए हैं लल्ला !'' अम्मा रूआँसी सी बोलीं !

छोटे भैया ने उसकी तह खोलनी चाही तो एक टुकड़ा टूट कर हाथ में आ गया !

''अम्मा ये नोट इनकी जेब में कैसे रह गया ? मुझे नहीं मालूम , ये तो पैसे पर्स में रखते हैं !'' भाभी रूक-रूक कर आँसुओं को पीती हुई बोलीं ! अम्मा ने उन्हें घूर कर देखा , छुटकी बोली ''अम्मा, क्या पता ये बीस का नोट हो ? रंग तो एक जैसा ही है दोनों का कुछ-कुछ ''अम्मा का गुस्सा उस पर फूट पड़ा ! ''सारी बुद्धि कपड़ा सुखाते समय कहाँ चली गई थी ? उस ही समय देख लेती होती तो बेचारा कुछ तो बच जाता , देखो तो कैसा चकना चूर हो गया है ?'' नोट की तरफ डबडबाई आँखों से देख कर बोलीं , उनका बस चलता तो उसे गोदी में उठा कर सीने से लगा लेतीं !

भैया ने बुद्धिमानी दिखाई और मोबाइल से उसके कई एंगल से फोटो खींच कर उन्हें बड़ा करके देखा फिर घोषणा की ''सौ प्रतिशत दो हजार का नोट है, ये देखो उन्होंने फोटो दिखाते हुए कहा ये दो दिख रहा है और ये देखो, इस चित्र में तीन जीरो दिख रहे हैं ,रंग भी वही है, हंड्रेड परसेंट दो हजार का चूना लग गया है !'' सबके चेहरों पर मातम छा गया ! एक हजार का होता तब भी बात थी सीधे-सीधे दो हजार की चपत लग गई ! अम्मा तो रो भी पड़ीं , ''हजार का नोट बंद करके सरकार ने भला नहीं किया, पांच सौ दृहजार का नुक्सान मानस सहन भी कर सकता है ये दो हजार का !'' कह कर वह रो दीं, छुटकी उन्हें संभालने दौड़ी तो गुस्से से उसे झटक दिया ! भाभी की भी काटो तो खून नहीं वाली हालत थी, उनके मुँह से आवाज ही नहीं निकल रही थी ! कितनी जरूरतें पूरी हो सकती थीं इन दो हजार से घर की, अब सारी बातें उन्हें रह-रह कर याद आ रही थीं ! शायद मन ही मन भैया पर गुस्सा भी आ रहा होगा कि कितने लापरवाह हैं जो जेब में रूपये छोड़ दिए और थोड़े-मोड़े नहीं पूरे दो हजार ! खुद पर भी गुस्सा रहा था कि धोने डालने के पहले जेबें देखी क्यूँ नहीं उन्होंने ? मन ही मन भगवन से प्रार्थना भी जरूर कर रही होगीं कि भगवान् इस बार गलती माफ कर दो न प्लीज ! अगली बार ध्यान रखूँगी किसी तरह इस नोट को जिन्दा कर दो न !

उनके हाथ लगातार मसलने के तरीके से मुझे सब समझ में आ रहा था बोल कुछ नहीं पा रहा था और बोलूं भी तो क्या ? घर का सबसे छोटा बेटा हूँ, अठारह साल का होने को आ गया पर अभी भी बच्चा ही माना जाता है मुझे ! मैनें धीरे से जा कर अम्मा के कंधे पर हाथ रख दिया, अम्मा बिना पीछे देखे मेरे स्पर्श को पहचान गईं, हाथ नहीं हटाया मेरा सिर्फ अपना हाथ मेरे हाथ पर रख दिया ! आज बाबूजी नहीं हैं हमारे साथ सिर्फ अम्मा ही हैं जिन्होंने हमें थाम रखा है, सारा घर उनकी शक्ति पर टिका है हम लोग कितने आहत हैं शायद यह एहसास उन्हें मेरा हाथ पकड़ कर हो गया, थोड़ी फीकी हँसी हँस कर बोलीं ?चलो छोड़ो, जो होना था हो गया, अब उसे कोई ठीक नहीं कर सकता ''बच्चों का दर्द वह कैसे देख सकती थीं, भाभी की तरफ दया भरी नजर डाल उनको सांत्वना सी दी उन्होंने, आज की तारीख में भाभी ही पूरे घर को संभाली हुई थीं, माँ की तकलीफ भी वह समझती थीं, उनकी बढती उम्र और घटते स्वास्थ्य का ध्यान भी था उन्हें, अभी भी रोज रात को सोने जाने के पहले वह माँ के घुटनों में तेल लगाना नहीं भूलती थीं ! अम्मा ने उनके सर पर हाथ फेरा तो वह फफक उठीं और अम्मा के कंधे से टिक गईं और तभी भैया का घर में प्रवेश हुआ !

भाभी को रोता देख वह अचंभित हो गए, किसी अनचाही दुर्घटना की आशंका उनके मन में कधि गई सभी के चेहरे पढ़ने की असफल कोशिश की उन्होंने चारों तरफ नजर दौड़ाई तो गुल्लू दृ छोटू नहीं दिखे जबकि वे पड़ोस में खेलने गए हुए थे ! भैया के हाथ से ब्रीफकेस छूट गया वह पलंग पर धम से बैठ गए ! भाभी ने खुद को संभाला और अंदर चलीं गई ! अम्मा ने भैया को संभाला और बोलीं ''कुछ नहीं हुआ है रे, फालतू चिंता न कर ''

भैया ने जब प्रश्नात्मक नजरों से उन्हें देखा तो उन्होंने अपनी नजरें टेबल पर रखे अखबार पर विराजे लुगदी बने नोट की तरफ घुमा दीं ! भैया उठ कर गए लुगदी को उल्टा-पुलटा और बोले ''दो हजार का नोट ? ऐसा कैसे हो गया ? ''झटका उन्हें भी तगड़ा लगा !

''आपकी पेंट की जेब में था, मैंने बिना देखे धुलने में डाल दिया, गलती मेरी है ''भाभी, टेबल पर पानी का गिलास रखती हुई बोलीं जो वह भैया के लिए ले कर आई थीं ! ''मेरी जेब में ?'' भैया चकरा गए, मेरी जेब में दो हजार का नोट ? ऐसा हो ही नहीं सकता ! मेरे पास कहाँ है दो हजार का नोट ? ''वह आश्चर्यचकित थे, सभी लोगों के चेहरे खिल उठे !

''लेकिन आपकी जेब से ही निकला है यह नोट , है भी पक्का दो हजार का ही ! ''छोटे भैया अपना मोबाइल खोल कर भैया को फोटो दिखाने लगे ! यह तो एक पहेली सी बनती नजर आ रही थी ! सच बात है भैया के पास इतने पैसे रहते ही कहाँ थे, सबका ख्याल रखने के चक्कर में पैसे तो पानी के माफिक उड़ते थे फिर ये नोट ? भैया सर खुजा रहे थे , अब उन्होंने बारीकी से नोट को देखना शुरू किया और तभी गुल्लू-छोटू ने घर में प्रवेश किया ! दोनों जुड़वाँ बच्चे थे, दोनों चिल्लाते हुए भैयाके कंधों पर चढ़गए, ''पापा ! पापा ! वो चिंटू हमारी बात मान ही नहीं रहा है, बोल रहा है की हमारे पास है ही नहीं दो हजार का नोट ! दीजिये न हमारा नोट, हम अभी उसे दिखा कर आते हैं ''कहानी का क्लाइमेक्स उन्हीं के द्वारा संपन्न होने वाला था !

एकाएक भैया जोर-जोर से हंसने लगे ! सब लोग उनका चेहरा देख रहे थे ! गुल्लू-छोटू पापा का चेहरा देख रहे थे और भैया थे कि पेट पकड़ कर हँस रहे थे,

अम्मा ने उन्हें रोका ''अरे, बता तो सही, क्यूँ हँस रहा है ? क्या हुआ है ? ये दो हजार का नोट क्यूँ मांग रहे हैं बच्चे ?''

भैया बोले ? बताता हूँ , अरे कल म इन दोनों को लेकर मंदिर गया था न ! मैनें घर पर आ कर आपको बताया भी था कि वहां पर एक बारात भगवान जी के दर्शन को आई हुई थी, दूल्हा घोड़ी पर था उसके गले में नोटों की माला थी !'' ''हाँ !हाँ ! तूने बताया था यह भी कहा था कि लोग दूल्हे के ऊपर नोटों को न्योछावर कर रहे थे, कहीं तू वही नोट तो नहीं उठा लाया ?'' अम्मा गुस्से से बोलीं !

नहीं अम्मा ! दरअसल पूजा करके जब दूल्हा और बारात आगे बढ़ी तो कुछ लोग दूल्हे के आगे नाचने लगे उनको नाचते देख कुछ लोग नोट लुटाने लगे ! बडि बाजे वालों को मजा आ रहा था उनके साथ-साथ बहुत से लोग थे जो नोट लूट भी रहे थे ! लूटने में नोट फट भी रहे थे कुछ नोट पैरों के नीचे भी आ रहे थे ! यह सब देख कर कुछ लोग थू-थू भी कर रहे थे कि लक्ष्मी की ऐसी बर्बादी नहीं करनी चाहिए उसे पैरों के नीचे नहीं आने देना चाहिए, पुलिस को खबर कर देनी चाहिए, सब जेल में सड़ेंगे आदि आदि ! म वहीं किनारे पर इन दोनों के साथ रूका हुआ था ! जब बारात चली गई तो फटे नोट और लोगों के साथ मनै भी उठा कर देखे , दरअसल वे सब चूरन वाले नकली नोट थे ! अब इन सबमें इन दोनों को बड़ा मजा आ गया ये दोनों भी दो-चार फटे नोट उठा लिए और मेरे जेब में रख दिए, मुझे तो कुछ याद ही नहीं रहा सुबह उठ कर पेंट धुलने में डाल कर चला गया ! आप लोग इतने चक्कर में पड़ जाओगे ये सोचा ही नहीं ! माफी चाहता हूँ सबसे ''भैया ने सच में हाथ जोड़ दिए ! सब लोग अपनी-अपनी सफाई में कुछ दकुछ बोलने लगे, सब लोग एक-दूसरे को तसल्ली दे रहे थे ! एकाएक गुल्लू-छोटू जोर से बोले ''वो सब तो ठीक है पापा, हमारे दो हजार के नोट तो दो''! भैया बोले ''हाँ मेरे बच्चों, चलो हम लोग बाजार चलेंगें और नोट लेकर आयेगें '' कहकर उन्होंने उनको सीने से लगा लिया, अम्मा भी उनके पीछे आ कर खड़ी हो गई और उनके सिर पर स्नेह से हाथ फेरने लगीं ! भाभी मुस्कुरा रही थीं, हम लोग कभी उनको और कभी टेबल पर पड़ी लुगदी को देख रहे थे !

बी 143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल-23 मोबाइल : 942440245

सतीश राठी

साईकिल

''सर। मेरा सायकल का लोन आज स्वीकृत हो जाता तो मेहरबानी हो जाती। ''कमर से पूरा झुककर और वाणी में सारी विनम्रता समेटकर रघु चपरासी ने सक्सेना साहब से कहा। ''अरे तेरी सायकल से पहले तो मेरी सायकल का ऋण स्वीकृत करवाना है। 'मसखरी के स्वर में सक्सेना ने कहा। ''साहब! आप तो कार से आते जाते हैं। आपको सायकल की क्या जरूरत? सायकल तो हम जैसे गरीबों के लिए हैं।'' रोज पाँच किलोमीटर पैदल चलकर आने का दर्द रघु के बोलने के पीछे दबा हुआ था। ''अरे। तेरी जैसी सायकल नहीं पागल। मुझे तो व्यायाम वाली सायकल खरीदना है। देखता नहीं यह...।'' अपनी बढ़ती हुई तोंद की ओर उन्होंने ईशारा किया। ''हमारा पेट तो परिवार का पेट पालने की चिन्ता में ही अन्दर हो जाता है साब। ''मुँहलगे रघु का चिन्ता भरा स्वर सुनकर सक्सेना जी खिसियाहट से भर गये।

आर-451, महालक्ष्मी नगर, इन्दौर-452010 (म.प्र.)

लता अग्रवाल

मैं ही कृष्ण हूँ

''शी....!!! जानेमन! अकेले-अकेले कहाँ चल दीं...हमसे कहा होता...संग चल देते।'' कराटे क्लास से घर जा रही प्रतिभा को सुनसान रास्ते में कुछ मनचलों ने रोक लिया। सीटी बजाते हुए वे प्रतिभा पर कमेंट्स करने लगे। प्रतिभा ने अपने कदम तेज कर लिए। तभी दो मनचलों ने उसे आगे से घेरते हुए उसका दुपट्टा खींच लिया।

''रुको तो...कहाँ चल दी द्रोपदी।'' फिल्मी अंदाज में कहते हुए उसने प्रतिभा के दुपट्टे को अपनी कलाई पर लपेट लिया। ''वाह भई! कलयुग में द्रोपदी का चीर हरण।'' दूसरा अश्लील नजरों से प्रतिभा को घूरता हुआ बोला। ''हा! हा! हा!'' सभी कुटिलता से अट्टाहस करने लगे। प्रतिभा ने झपटकर अपना दुपट्टा छीनने का प्रयास किया। ''दुपट्टा चाहिए...हुन्नं...ऐसे नहीं मिलेगा...हमारी बात माननी पड़ेगी...द्रोपदी...हम दुःशासन, दुर्योधन नहीं जो तुम्हें अपनी जंघा पर बैठाएंगे... बस एक-एक किस हमें दे दो चले जायेंगे।'' इठलाते हुए तीसरा मनचला बोला। ''तुम भूल गये शायद द्रोपदी का आंचल दुःशासन के हाथ आया तो कैसा महाभारत मचा था, और दुर्योधन को अपनी उस नापाक हरकत के लिए क्या दंड मिला था।'' ''अच्छा! तो आप महाभारत मचाना भी जानती हैं पांचाली!''

''अरे! नहीं ये नहीं इनके सखा कृष्ण मचाएंगे महाभारत।'' दूसरा मनचला बोला।

''ओहो! कहाँ हैं सखा कृष्ण, बुलाओ भाई हम भी देखें।'' कहते हुए वे प्रतिभा के और नजदीक आने लगे। अगले ही पल प्रतिभा के हाथ अपने कराटे की मुद्रा में आ गये एक-एक कर सारे मनचले धराशाही पड़े थे। हाथ झाड़ते हुए प्रतिभा बोली, ''मुझे कृष्ण को बुलाने की जरूरत नहीं दुःशासनों, मैं अगर सृष्टि की जन्मदात्री हूँ तो तुम जैसे पापियों के लिए मैं ही चंडी भी हूँ और कृष्ण भी मैं ही हूँ।''

एकलव्य नहीं हूँ मैं

''सर! मैंने बैतूल के आदिवासी क्षेत्रों में जाकर उन महिलाओं का डाटा कलेक्शन पूरा कर लिया है।''

''व्हेरी गुड।''

''सभी वुमन्स के इंटरव्यू लेकर उस पर अपनी टीप भी तैयार कर ली है।

''नाइस।''

''सर! मेरी पी.एच.डी.समय से एवार्ड तो हो जायेगी न?''

''कुछ कह नहीं सकता।''

''क्यों सर?...कोई कमी रह गई क्या मेरे प्रयास में...? सर! मेरे माता-पिता ने बहुत मुश्किल से मेरे पी-एच.डी.हेतु राशि जुटाई है, उनका सपना है मैं पढ़लिखकर अपने पैरों पर खड़ी रहूँ।... प्लीज़ सर।''

''यह तो तुम्हारे ऊपर है, जितनी जल्दी गुरु दक्षिणा दोगी उतनी जल्दी काम होगा।''

''गुरुदक्षिणा...?''

''क्या देना होगा सर गुरु दक्षिणा में...?''

''एकलव्य को सुनी हो न!''

''सुनी हूँ सर।''

''च्च...! तुम समझी नहीं पगली!'' कहते हुए प्रो.लाल अपनी कुर्सी से उठे और दबे कदमों से चलते हुए नमिता के पीछे आ खड़े हुए... फिर धीरे से उसके कंधे को दबाते हुए बोले,

''बात को समझा करो नमिता...ये काम इतनी आसानी से नहीं होते।''

''समझ तो आप नहीं रहे सर।'' नमिता ने खड़े होते हुए कहा।

''क्या?'' अचानक हमले से प्रो.लाल हड़बड़ा गये।

''यही कि मैं वो एकलव्य नहीं जो आपको दूसरा द्रोणाचार्य बनाकर पुनः इतिहास कलंकित करने का अवसर दूँ।''

73 यश बिला भवानी धाम फेस-1 नरेला शन्करी, भोपाल-462041

तरसेम गुजराल

संपर्क :- पता : 444 ए, राजा गार्डन,
पो.आ. बस्ती बावा खेल, जालंधर 144021
मो. : 09463632855

जन्म : 1950, माता - श्रीमती राजरानी गुजराल, पिता - श्री सिरी राम गुजराल, **शिक्षाः** एम.ए. (हिन्दी) गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, पीएच.डी. - 'विविध कथा आन्दोलनों के सन्दर्भ में प्रेमचदोत्तर कहानी का वस्तुपरक मूल्यांकन' पर मेरठ विश्वविद्यालय से, कृतियाँ। (1) जलता हुआ गुलाब (उपन्यास), (2) कोई एक दिन (कहानी संग्रह), (3) राख और चीलें (कविता संग्रह), (4) फूल खिलने की आवाज नहीं होती (कविता संग्रह), (5) सुबह के साथ (कहानी संग्रह), (6) इतना सब होने के बावजूद, (7) सीढ़ियाँ और शिखर (कहानी संग्रह), (8) मटमैला आकाश (उपन्यास), (9) घोड़े की नाल (कहानी संग्रह) (10) डंके की चोट पर शराफत (व्यंग्य), (11) दूसरा पक्ष और अन्य कहानियाँ, (12) उलटे आखर (उपन्यास), (13) सुनना ही होगा तुम्हें (कहानी संग्रह), (14) फिर भी आस (कहानी संग्रह), (15) चुनी हुई कहानियाँ (कहानी संग्रह), (16) प्रतिनिधि इक्कीस कहानियाँ (कहानी संग्रह), (17) पुराना आदमी (कहानी संग्रह)।

आलोचना : (1) हिन्दी उपन्यास जमीन की तलाश (2) मोहन सपरा का काव्यपथ (3) रचना-रचनाशीलता और सभ्यताविमर्श, साक्षात्कार - (1) संवादनहीनता के खिलाफ, (2) समय, संवाद और स्त्री प्रश्न, संपादित पुस्तकें - (1) खुला आकाश (कहानी संग्रह) (2) आजाद गुलाम (कहानी संग्रह) (3) पंजाबी कहानी रचना और परिवेश (अनुवाद तथा संपादन) (4) काल को चुनौती देती कविताएँ (कविता संग्रह), (5) ठहरो जरा (कहानी संग्रह), (6) इस तलाश में (कहानी संग्रह), (7) समय और सांस्कृतिक रूपांतरण (निबंध), (8) यथार्थ की पकड़ (निबंध), (9) पंजाब की हिन्दी कहानी, (10) सुर्खियों में है कोई बात (मोहन सपरा की कविताएँ), (11) राजी सेठ की जीवन केन्द्रित कहानियाँ (कहानी संग्रह), (12) सूर्यबाला साक्षात्कार के आईने में।

सम्पादित पत्रिकाएँ : फिर, निर्झर (हिन्दी) नतीजा (पंजाबी) आजकल 'वक्त बदलेगा' का सम्पादन संचालन।,

सम्मान : पीएच.डी. मिलने पर 1987 में नवरंग से, निबंध लिखने पर 1989 में भाषा विभाग पंजाब से सम्मानित, 'जलता हुआ गुलाब' उपन्यास पर 1989 में प्रेमचन्द्र महेश सम्मान, इसी उपन्यास के लिए 1990 में पंजाब साहित्य अकादमी से सम्मानित, 'कोई एक दिन' पर 1991 में भाषा विभाग पंजाब का सुदर्शन सम्मान, 'फूल खिलने की आवाज नहीं होती', काव्य संग्रह पर भाषा विभाग पंजाब का ज्ञानी संत सिंह पुरस्कार, 1994 में, 'राख और चालें' काव्य संग्रह पर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का वर्ष 1993-94 का पुरस्कार, महामहिम राष्ट्रपति द्वारा 1995 में सम्मानित, गुरुनानक विश्वविद्यालय से 1995 में सम्मानित किया। कथा लेखन के लिए 2002 में पंजाब कला साहित्य अकादमी से सम्मानित, कहानी लेखन के लिए विभिन्न संस्थाओं ने कई बार सम्मानित, शांतिदेवी स्मृति कथा सम्मान, दिशा साहित्य मंच 2005 लोक साहित मंच, लुधियाना से 2011 में सम्मानित। उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ के सौहार्द सम्मान से वर्ष (2014) सितम्बर 2015 में सम्मानित। व्यंग्य यात्रा सम्मान सितम्बर 2015 में मिला। भाषा विभाग पंजाब का शिरोमणि सम्मान (2013) 2015 में प्राप्त।

संकलित : बीस पुस्तकों में रचनायें संकलित। **शीघ्र प्रकाश्य -** बिजली के खंभे पर चिड़िया (कविता संग्रह), पुराना आदमी (कहानी संग्रह), राजा की छतरी (उपन्यास), विश्व कहानियाँ (कहानी संग्रह)। स्तम्भ **लेखन-**अजीत समाचार/अमर उजाला, भास्कर, दैनिक ट्रिब्यून। **आयोजन-**पिछले तीस वर्षों से विचारधारा मंच द्वारा साहित्यिक, सांस्कृतिक मुद्दों पर महत्त्वपूर्ण गोष्ठियाँ। **प्रसारण-**तीस वर्षों से आकाशवाणी और फिर दूरदर्शन से विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक विषयों पर सजग भागीदारी।

आत्मवंचन नहीं आत्मकथन

तरसेम गुजराल

मैं जीवन से अपने रक्त की एक-एक बूँद की हद तक प्यार करता हूँ इसलिए मनुष्य का सत्कार, प्रेम मेरा धर्म है, पहली कविता पहली कहानी से अब तक जो कुछ भी लिखा मनुष्यता के हक में लिखा, संवेदना जगाये रखने के लिये लिखा, अन्याय, दमन, भेदभाव, गरीबी, जलालत, गुलामी के विरोध में लिखा, व्यर्थता, नींद, नशे से एक-एक पल बचाकर सार्थकता, जागरण, चेतना में हर पल गुजारने की सदा कोशिश की। अपने समय को समझने की कोशिश की, बदलते हुए समय में बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों को अलग-अलग कोण से परखने की कोशिश की और रचनाओं को विषय बनाया।

1990 के आस-पास से जो हालात बदले हैं भूमंडलीकरण उदारतावाद ने जो हालात पैदा किये हैं वे दूसरी गुलामी के हालात हैं। आर्थिक साम्राज्यवाद के सामने आँखें बँद किये रखना, अंधत्व से कम नहीं, साहित्य और कला को राजनीति निरपेक्ष मानना कबूतर की तरह आँखें मूँदने जैसा है। अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करते मनुष्य की पुकार या विजय यात्रा को अंकित करना साहित्य का दायित्व है। इसी संघर्ष में हमारा छोटा-बड़ा हिस्सा, समवेत प्रयास से पाना-खोजना साहित्य-संस्कृति का अंग है। गोया हम इस तरह के अमानवीकरण को जान-समझ तो गए हैं, परन्तु साहित्य के लोकतंत्र में दमनकारी चीजों से हट कर लिखते जाना प्राणविहीन रचना जैसा है। इसके चलते मनुष्यता मानवीय सम्बन्धों का निरन्तर ह्रास हुआ है। गरीब, कमजोर, सताये हुए लोगों को उनके भाग्य पर छोड़कर अलग कोने में चले जाना कभी भी प्राथमिक कार्य नहीं हो सकता। जीवन की मामूली दिखने वाली चीजें बड़े व्यवहार से जुड़ी रहती हैं। यदि मुझे घर में, घर के बाहर गंदगी नजर नहीं आती और मन परेशान नहीं होता तो मुझे भीतर की गंदगी भी परेशान नहीं करेगी। धीरे-धीरे गंदगी और फिर दरिरंगी को बर्दाश्त करते रहना आ जाएगा। पतनोन्मुख हालात पतनोन्मुख नहीं लगते तब बहुत कुछ पथराने लगता है।

मॉर्क्स या गाँधी हमें लाठी लेकर हाँकते नहीं, हमारी आँखें खोलने में मदद भर करते हैं। हम चाहें तो दृष्टि पा सकते हैं। न चाहें तो वे हमारे सपने में आकर झकझोर नहीं देंगे। किताबों में, किस्सों में बंद ही रहेंगे। दोनों से दूर रहना चाहे तो रह सकते हैं। वे ब्लडप्रेशर की दवा नहीं है। मानवीय विवेक बचा हो तो वही तुला सारा सच झूठ तोल देगी। पाखण्ड अलग कर देगी। रामायण, महाभारत ही बहुत है, परन्तु उनके लिए वृद्धाश्रम खोल दिए गए है।। पतन आकाश से बिजली की तरह नहीं गिरता, न काले बादलों में चमकता है। पीढ़ियां समाज के प्रति आस-पास के वातावरण के प्रति/परम्परा ज्ञान के प्रति उदासीन होने लगती है। हम अपनी हजारों साल की साधनाओं, ज्ञान, परम्पराओं को पोंगापंथी मान कर सिरे से दूर कर दें। पश्चिम की थोपी धारणाओं को बदल लें। वह भी बिना सोचे, बिना समझे नव-निर्माण करें नहीं तो आधार कहाँ से पायेंगे। टिकने की जगह तक नहीं होगी। जैनेन्द्र के त्यागपत्र की मृणाल समाज नहीं तोड़ना चाहती। कहती है कि फिर हम रहेंगे किसके भीतर ? आज फेसबुक पर पाँच-पाँच हजार मित्र होते हुए मन की बात, भीतर की गाँठ खोलने को एक भी मित्र नहीं।

1990 का आस-पास, सोवियत संघ टूट कर बिखर गया, साथ ही बिखर गये लाखों भारतीयों के सपने जिनको लगने लगा था कि आमूलचूल परिवर्तन होगा और इसके साथ ही एक नये आदमी का जन्म होगा जो गैरबराबरी खत्म कर देश के आदमी को सिर उठाकर जीने का मौका देगा। इस असफलता में अनेक आगे बढ़गये युवक नशे की गिरफ्त में चले गये। कितना बड़ा छल वे कर रहे थे जो सोवियत यात्रा करके आते और बताते कि तीर्थ करके आए हैं, सारे पाप धुल गये। फिर आवाज उठने लगीं कि इतिहास का अंत हो गया है। अब कहीं कोई क्रांति नहीं होगी। कोई बड़ा परिवर्तन नहीं होगा, साथ ही अनेक अंत घोषित हुए। कविता का अंत, साहित्य का अंत, भाई जब साहित्य का अंत ही हो गया तो मेरे साथ आगे आई पीढ़ी जिसने लगभग पिछले चालीस साल अपने परिवार को कम, साहित्य को ज्यादा दिया। क्या इतना भी नहीं सोच पाए कि वे क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं ? बाजारवाद का इतना शोर इतना बवंडर उठते हुए हमें अपनी पचास किताबों के पचास रुपये भी सूँघने को नहीं मिलते।

इतिहास के अंत की घोषणा इसलिए हुई कि हम हमारी पीढ़ी, आने वाली पीढ़ियाँ इतिहासविहीन हो जाएँ। हम अपनी संघर्ष गाथा को पत्थर बाँधकर कुँए में फेंक दें। इतिहास महिमामंडित हो सकता है, इतिहास की हत्या हो सकती है, इतिहास का अंत नहीं हो सकता। रचना अपने मूल रूप में प्रतिरोध का स्वर है, चाहे वह जल्दी सुना जाये या देर से, उसका स्वर क्षीण हो या घोषित वह संकीर्णता, रूढ़ियों, गलत परम्परा, जलालत, अन्याय, भेदभाव, मजहबी जुनून का कभी समर्थक नहीं हो सकता जो यह करता है या करेगा साहित्य और कला के मर्म से निष्कासित होगा। लेखक को 'विश्व का प्रथम नागरिक' कहे जाने के मायने क्या हैं ? क्योंकि उसकी जगह प्रतिपक्ष की जगह है। वर्तमान में जिन्दा रहकर अतीत को खंगालते वह भविष्य की तरफ जो देख रहा होता है। समाज में सामान्य रह कर सामान्य जीवन जीते हुए वह उन्नति करते हुए असामान्य कार्य कर रहा होता है। जिसकी फौरी पहचान या चर्चा नहीं हो तब भी उसका काम समय की खाद-पानी पाकर महक लुटाता रहता है।

हम अपनी जीवन स्थितियों का निर्माण कर नहीं सकते, वे तयशुदा होती हैं। हमें उन जीवन स्थितियों में रहते हुए आत्ममंथन करते हुए अपने विवेक के साथ अवसर मिलते ही छेद करना होता है। इसमें एक दिन, एक साल, यहाँ तक कि जिन्दगी भी कम और छोटी पड़ जाये, परन्तु यह रास्ता कभी गलत, अशुद्ध या अपवित्र नहीं होता। वर्तमान यथार्थ हो सकता है, मलिन नहीं हो सकता, परन्तु भविष्य काल्पनिक होकर भी मलिन नहीं हो सकता। लेखक अपने वर्तमान में उसका नक्शा नहीं भी तैयार कर पाये, रेखाएँ वही तय करता है चाहे वर्तमान को अस्वीकार करके रद्द करके करे। रोमन साम्राज्य की कुछ इतिहासकार बेशक जी भरकर प्रशंसा करें, परन्तु उस काल के गुलामों की निर्माण क्षमता दक्षता लेखक द्वारा ही उजागर होगी जो अपने खून से सींचते रहे तभी कहा गया कि रोम का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ। साहित्य में आप अपने सच की तलाश इस तरह भी करते हो, कर सकते हो। इसी वटवृक्ष के नीचे एक खुली जगह है जहाँ संवाद भी अगर संभव न रहे तो आत्मसंवाद की जगह तो कहीं गयी नहीं।

भारतीय वाम चिंतकों ने वामपंथ का जितना नुकसान किया, इतना वामपंथ विरोधियों ने भी नहीं किया। उन्होंने मार्क्सवाद को धर्म और मार्क्स की मूर्ति स्थापित करने में कोई कमी नहीं आने दी। आज यदि वामपंथ के प्रति रुझान कम हुआ है तो इसकी जिम्मेदारी उन्हीं दिग्गजों पर है, जिन्होंने इसको यांत्रिक बनाया। अंतर्विरोधों का सामंजस्य संस्कृति के भीतर असमंजस नहीं है। संस्कृति में मानवता को जकड़बंदी से मुक्ति का रास्ता मिलता है, परन्तु उनका अपनी तरह का धुंआधार साहित्य का समाजशास्त्र तैयार करने में ज्यादा मदद नहीं कर पाया। जबर्दस्त 'पिक एंड यूज' ने काफी नुकसान किया। साहित्य चौखटें तोड़ता है, बनाता नहीं। मूल स्वर सदा ज्यादती का विरोध रहा है, रहेगा। हिन्दी का प्रगतिवादी आन्दोलन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इससे जनापेक्षायें पूरी हुई हैं। इस पर एक किताब 'हिन्दी की प्रगतिशील रचनाधर्मिता' इतिहास और विडंबना' का सम्पादन कर रहा हूँ।

देश का विभाजन सदा मुझे अभूतपूर्व दुर्घटना लगा है। मेरी पीढ़ी तक इस जहर को पचाया नहीं जा सका। जिन्ना, लार्ड माउंटबेटन, रेडलिफ, नेहरू, पटेल सहित तमाम साम्प्रदायिक शक्तियों को जिम्मेदार कारकों की इतनी बड़ी उथल-पुथल, मान-मर्दन, हिंसा, लूटपाट, ज्यादती, आगजनी, हत्याओं के अपराध से मेरी पीढ़ी बरी नहीं कर सकती। मेरा रचना, सम्पादन, आलोचना का कुछ काम सामने आया है, कुछ आएगा जो हमारे जख्मों, दर्द का साक्षी बनेगा। मेरे जीवन में दो-तीन बार कुछ ऐसा घटा जिसने मुझे बुरी तरह हिला दिया। लगा कि मेरी जमीन ही मुझसे छिन गयी। 1982 में भापा जी (पिता) का देहांत, 1992में अनिरुद्ध (इकलौता पुत्र) का देहांत मुझे बोलती और खामोश चीखों के बीच छोड़ गया। इतने बड़े झटके के बाद दुबारा खुद को पाना कभी भी आसान नहीं होता, न ही मेरे लिए था। साहित्य ने तब मेरा साथ नहीं छोड़ा, मुझ गिरते, भटकते को थाम लिया, अनेक ऐसे लोगों के बीच ले गया जिन्होंने अपने आँसू पीकर कर्मभूमि पर पुनः मजबूती से कदम रखे। कुछ सँभलने को हुआ कि ससुराल से पिटकर बेटी तीन कपड़ों में नँगे पाँव जान बचाकर लौट आयी। साढ़े छ साल तक कोर्ट में उसके अधिकार के लिए उनके साथ लड़ा। फिर साहित्य ने ही मेरे कँधे पर हाथ रखा और मुझे आत्मिक शक्ति और संतुलन दिया। चलने के लिए रास्ता कोई भी आसान नहीं होता। मैंने आसान समझ कर चुना भी नहीं। चुनने के वक्त शायद रास्ते ने खुद मुझे चुना और असमाप्त काम थमा दिया। जिसका मील पत्थर भी कहीं नहीं, रोज नयी चुनौतियाँ हैं। जब अनिरुद्ध का देहांत हुआ, उसके कुछ दिनों बाद ही मेरी पत्नी कविता ने मुझसे कहा 'हमें तरस का पात्र बनकर नहीं जीना'। उसकी बेनींद रातों का मैं और मेरी बेनींद रातों की वही साक्षी थी। मैं जिस भी हाल में रहा, न तो जीवन स्थितियों से पलायन किया, न कर्मभूमि में पीठ दिखाई। जब बातें करने वालों ने मुझ पर छींटें गिराए, विषवमन किया, मैंने हरसंभव कोशिश की कि इस पर विचलित न रहूँ, प्रतिबद्धता की वजह नहीं खोजनी पड़ती वह भीतर इरादों की तरह सख्त होती जाती है। तीसरी दुनिया की साहित्यिक प्रतिबद्धता सृजनात्मक संघर्ष से परिपक्व होती है। यह सामाजिक न्याय की माँग के साथ मानवीय गरिमा के लिए जद्दोजहद है। लुभावनी दुनिया से यह प्यास कुछ अलग और विशिष्ट चेतना की है। रोज अखबार में लिपटी किसान की आत्महत्या, स्त्री अस्मिता के हनन का मामला मुझे झकझोर जाता है या फिर बॉर्डर पर शहीद होता नौजवान। युद्ध की आशंका ही कँपा देने वाली होती है। युद्ध की क्रूरता के इतिहास से हमने कुछ नहीं सीखा। साम्राज्य, पूँजीवाद की कभी न मिटने वाली भूख से यह जिन्न किसी भी बोतल से प्रगट हो सकता है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ समाजशास्त्री, अध्यापक संपादक की मेज पर गुलाब का एक फूल ही न हो, दो महायुद्धों की तबाही और मारे गये लोगों के आँकड़े जरूर होने चाहिए। मुझे प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी जितने पसंद हैं, उतने ही पी. साँईनाथ, गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक, वंदना शिवा, अनुपम मिश्र (पसंद की सूची लम्बी है,यहाँ उल्लेखनीय नहीं)

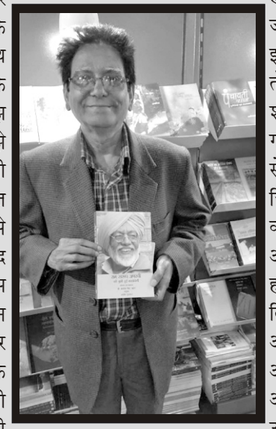

मैं कविता और कहानी ही लिख रहा था। लोग पसंद भी कर रहे थे। विधिवत् आलोचना का काम काफी देर बाद संभाला। छिटपुट समीक्षाएँ लिखता रहा। जब तक मेरी पैंतीस किताबें छप चुकी थीं। आलोचना की एक भी नहीं थी। हिन्दी साहित्य में अमूमन आलोचना की दशा यह थी कि जैसे वह साहित्य का एक अंग ही नहीं हो। बड़े आलोचक की अध्ययनशाला की दशा यह बन चुकी थी जहाँ नौकरी, तबादला, देश-विदेश यात्रायें, पुरस्कार तय हो रहे हों, रचनाकार को अपनी रचना उपेक्षित नजर आने लगी। कहानी, कविता में योगदान की सूची उन्हीं के संकेत से तय हो रही थी जो जी-जान से लिख रहे थे, हाशिये पर थे। इतनी मनमानी तो सरकारी व्यवहार तंत्र में भी नहीं थी।

मुनासिब तरीका यही लगा कि दिखने में किताब आपकी गोद में हो,परन्तु वस्तुतः आप किताब की गोद में चले जाएँ, जो फूल उससे गिरे उनकी रंगत, कोमलता और लोगों के लिए बँटती महक के बारे में बता दो, काँटा चुभे तो वह भी। मैं आलोचना में सर्वव्यापी नहीं हो सकता था, कहानी, व्यंग्य की कुछ समझ भी परन्तु मुख्य रूप से उपन्यास को चुना। वह जीवन का गद्य में महाकाव्य जो ठहरा आधुनिक युग का महाकाव्य। सभ्य मनुष्य उसके सांस्कृतिक विकास का हमकदम। उसे ऐसी वैचारिक कोशिश भी इसीलिए कहा गया कि कला एवं साहित्य के विकास को गहरे मानवीय सरोकार से अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं से मुठभेड़ करता है। एक उपन्यास आपको आपके जीवन का अन्तरंग परिचय तो अक्सर दे जाता है, परन्तु अन्य जिन्दगियों के होने, उनके जद्दोजहद, संकट और जिजीविषा का अनुभव भी देता है। मुझे ऐसे उपन्यास ज्यादा पसंद हैं, जिसमें जीवन का यथार्थ हो। जीवन के सामने उपस्थित संकट हों और संकट से जूझने का इरादा हो। यदि उपन्यासकार जीवन की शून्यता दिखा रहा है तो उसे उन व्यापक परिस्थितियों पर बात करनी होगी जो उस शून्यता, रिक्तता के कारण है। जीवन की प्रत्येक हरकत गतिविधि जीवन को आगे ले जाने और हालात को निर्भीकता से तोड़ने के लिए ही होती है। कथाकार को इस सम्भावना को चिह्नित करना ही होता है। जरूरी नहीं कि उसके पात्र क्रांति का झण्डा उठायें। वे सीमा तोड़ने की कोशिश जीवन का मर्म और सत्य का उद्घाटन तो कर ही सकते हैं। निरक्षर पात्र भी हालात का विरोध और आजादी का पक्ष ले सकते हैं, लेते दिखाए गये हैं। साहित्य की सभी विधाएँ समर्पण, प्रतिभा और न्याय की पक्षधरता माँगती है, परन्तु उपन्यास कुछ अधिक श्रम भी माँगता है और कुछ कठिन विधा भी है। औपन्यासिक सत्य को समझने, उपन्यास की विराटता में उसकी जमीन को अंकित करने की जी-जान से कोशिश रही है। हिन्दी उपन्यास 'जमीन की तलाश' पुस्तक आ चुकी है। हिन्दी के दस कालजयी उपन्यास तथा हिन्दी उपन्यास स्त्री की तरफ खुलती खिड़की प्रकाशकों के पास हैं। दो अन्य उपन्यास पर केन्द्रित पुस्तकें तैयारी में हैं। यह एक साधनापरक कार्य है।

हमें जहाँ तक संभव हो, समयगत बदलाव पर गहरी नजर रखनी होगी। दमनकारी, नवसाम्राज्यवादी, नवउपनिवेशवादी शक्तियों का चरित्र तभी समझा जा सकता है जिस तरफ पहले संकेत किया है। हमारे कुछ विद्वान् मित्र नोटिस लेने लगे हैं कि तकनीक की गति के सामने आदमी की चेतना लगातार तालमेल स्थापित नहीं कर पाती। तकनीकी वर्चस्व को इससे फैलने की जगह मिलती है और मनुष्य की चेतना भ्रमित होती रहती है। संचार माध्यम इस तरह हावी हो रहा है कि ज्ञान सूचना में बदल रहा है। आज का समाज निरन्तर उपभोक्तावादी हो रहा है और उपभोक्तावादी समाज नागरिक समाज की जगह बाजार राज्य का समाज होता है। मध्यम वर्ग पश्चिमी अय्याशी जीवन के प्रति आकृष्ट है। टी.वी. स्त्री स्वतंत्रता का घटिया चित्र प्रस्तुत करने में पूरी जान लगा रहा है। मैंने पिछले दो दशकों में अपनी कहानियों में इस सम्बन्ध/ सम्बन्धविहीनता को पकड़ने की कोशिश की है फिर भी आए कहानी संग्रह की कहानियों में पाठक इस बदलाव को देख सकते हैं। मैं अपनी सफलता/असफलता की बात नहीं करता, यह मेरे बस में नहीं। मुझे अपने कर्म, अपनी कर्मभूमि पर विश्वास है जो आपके सहयोग से सम्पन्न हुई या होगी। प्रत्येक व्यक्ति एक विश्व है और मैं उस विश्व के सामने नतमस्तक हूँ।

कहानी

लोग कहेंगे

तरसेम गुजराल

आज रात मैं ठीक से सो नहीं पाया। करवटें बदलने में रात निकल गई। दिन में हम जिन चीजों को छोटी मान कर स्थगित कर देते हैं रात को वे पिन की तरह चुभने लगती हैं। पहले कभी नींद नहीं आने पर मैं उठ जाता था और दूसरे कमरे में बत्ती जलाकर कोई किताब पढ़ने लगता था, लेकिन इस पर नीलिमा को काफी एतराज था।

- आप बत्ती जला लेते हो मेरी नींद उड़ जाती है।

मैं तो दूसरे कमरे की बत्ती जलाता हूँ।

- वहाँ से आरी की तरह रोशनी आती है और नींद के पंख काट देती है।

मुझे उसका 'नींद के पंख' काट देना कहना अच्छा लगा। सोचने पर लगा के अपनी नींद लाने के लिए दूसरे की नींद छीन लेना कहाँ का इंसाफ है? तभी भीतर से आवाज उठी इंसाफ है ही कहाँ ?

- आज ठीक से सोये नहीं आप ?

- हाँ, नींद नहीं आयी। किताबें भी मुझसे दूर हो गयी हैं।

- उन्हें करीब कर लो न....।

- लगता है सभी ठीक चीजें हमसे दूर और विपरीत हो रही हैं और हमें खारिज कर रही हैं।

- मैं चाय बनाती हूँ।

- सुनो तो, मन की देह के भीतर एक और घर होता है। यह उदासी-सी वहाँ जाकर बैठ गई है।

- आप इस तरह की बातें करते हैं तो मुझे डर लगने लगता है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में परछाई-सी उभर आयी। - कहीं पागल न हो जाऊँ।..... सच तो यह है कि हमने खोल चढ़ा लिए हैं कि अब कुछ नहीं होता। सभी कुछ बरदाश्त हो जाता है।

वह बिना कोई जवाब दिये चाय बनाने चली गई। मेरी नौकरी की शुरूआत ही थी जब कमल ने मुझे अपने समाज से खारिज कर दिया था। उसने पूछा था- क्या तुमने कभी सपने में नोटों की हरी गड्डियाँ देखी हैं ? मैंने कहा- नहीं।

उसने कहा- तब तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता।

मैंने किताबें छाँटी। महीनों से मैं लायब्रेरी नहीं गया था। लायब्रेरी की दोनों किताबें मुझ पर आँख मैली कर रही थीं। बदलते हुए वक्त में लायब्रेरी लोगों को गैर-जरूरी लगी। पहले यह शहर के बीच थी, परन्तु अब इसे शहर के एक सिरे पर उपेक्षित हलके में शिफ्ट कर दिया गया। वीरान नगर में रिक्षा से सिर्फ जाने के साठ-सत्तर रुपये लगते थे और लौटते हुए आध-पौन घण्टा रिक्षा की इंतजार में लगते थे। मुझे लायब्रेरी में पिछली बार दो बुद्धिजीवियों में हुआ वार्तालाप याद आया।

एक ने कहा- अच्छी-भली शहर में इमारत थी सरकार ने इतनी दूर लाकर फेंक दिया।

सरकार चाहती ही नहीं कि कोई इन किताबों को पढ़े और सच जाने।

दूसरा व्यक्ति - हुआ यह कि चन्दनसिंह, एल.एल.ए. की कुछ बसें पहले रात को लायब्रेरी हाल के बाहर की दीवार पर विश्राम करने लगीं फिर दिन में भी। सौ-डेढ़सौ मीटर दूर पेट्रोल पंप पहले ही उसका मौजूद था। धीरे-धीरे चन्दनसिंह की दो कारें दीवार के अन्दर ठहरने लगीं। वह पुराने जमाने के नहीं वो नये जमाने के राजा थे ही। जर-जोरू और जमीन के लिए खून बहाने के लिए तैयार। यहाँ तो सिर्फ होशियारी से काम लेना था।

पहला व्यक्ति - '' जिन लोगों का लायब्रेरी से सम्बन्ध था उन्होंने कुछ कहा नहीं ?''

दूसरा - शिक्षामंत्री को देखना चाहिये था, परन्तु चन्दनसिंह ने शिक्षामंत्री से ही बयान दिलवाया लायब्रेरी छोटी पड़ रही है, क्योंकि वह नाट्यशाला और पेंटिग्ज की प्रदर्शनी को लायब्रेरी के हिस्से के रूप में देखना चाहते हैं ताकि लोग कला के प्रति जागरूक हो सकें इसलिए जगह ज्यादा चाहिए। सरकार पहले ही कुछ भी बेचकर धन लाना चाहती थी। कहती थी करोड़ों रुपया नौकरियों की तनख्वाह में निकल जाता है इसीलिए घाटे का बजट लाना पड़ता है। विश्व बैंक की पब्लिक सेक्टर बेचने में दिलचस्पी थी।''

मुझे किताबें चुनते देख कर नीलिमा पास आ गई।

- चाय तैयार है। रूपे की दुकान से बिस्कुट पकड़ लो।

- ऐसे ही दे दो। बिस्कुट बाद में ले आऊँगा ओबराय बेकरी से।

- आज सौदे ला दो। रसोई के सारे डिब्बे खाली हैं।

- मुझे लायब्रेरी जाना था।

- ''दूसरे टाइम चले जाना। यह ध्यान रखें शाम को सब्जीमंडी जाना है।'' मैंने मन ही मन कार्यक्रम की रेखा खींची। पहले बाजार फिर लायब्रेरी और बाद में सब्जीमंडी। यही था उस पूरे दिन का विभाजन।

चाय देते हुए नीलिमा ने कहा - चीजें लाते हुए दुकानदार का तराजू देखते रहना। डंडी मारते हैं वे। पैसे देते हुए टोटल चैक करना। पिछली बार सौ रुपया ज्यादा दे आये थे।

- ले तो आया था।

- वह तो मैंने टोटल चेक कर लिया। थोड़ा इकानॉमिक्स पर भी ध्यान दें।

- इकानॉमिक्स की भली कही तुमने। सारा इकानॉमिक्स इस समय राज्य की खिदमत कर रहा है। एक मजेदार किस्सा सुनो - तुमने लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स का नाम तो सुना होगा।

- ऐसी अनपढ़भी नहीं हूँ मैं।

- हाँ, ठीक है, बी.ए. पास हो। बात सुनो।

लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स ने 2008 में मुआम्मर गद्दाफी के दूसरे बेटे सैफ उल इस्लाम को डॉक्टरेट की उपाधि दी। सैफ को डॉक्टरेट की उपाधि मिलने के बाद ब्रिटिश संस्थान को उसके पिता मुअम्मर गद्दाफी की तरफ से पन्द्रह लाख पाउण्ड का दान मिला। इसे आप ब्रिटिश संस्थान पर भ्रष्टाचार का आरोप नहीं लगा सकते।

लेकिन इकानॉमिक्स की बात कहाँ से आया?

वही बता रहा हूँ, सैफ ने अंग्रेजों के पन्द्रह लाख की जगह तीन लाख पाउण्ड ही दिये लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स में उसने कुछ तो सीखा।

नीलम की बड़ी-बड़ी आँखों में फिर परछाई-सी उभरी, परन्तु इस बार वह ज्यादा गहरी नहीं थी। नीलिमा मेरे पास ही बैठ कर मँगवाने वाली चीजों की लिस्ट बना रही थी। ऐसा करते हुए बोलते रहना उसकी आदत थी। मुझे लगता था कि अगर घर में कोई भी न हो और उसे लिस्ट बनानी हो तब भी वह ऐसी कमेंटरी करती रहती थी।

दालें पहले से बहुत महँगी हो गई हैं।

कहाँ जाकर रूकेगी महँगाई ? मैंने इसे रुटीन समझ कर किताब खोल ली तो उसने कहा'- ताया जी की बरसी आ रही है। आप कह रहे थे कि वह सीधे आदमी थे। साधारण जीवन, अच्छे विचार उनका जीवन रहा है तो कोई बड़ा आयोजन हम नहीं करेंगे। दिखावा उनको पसंद नहीं था, परन्तु अपने परिवारों के दस-पन्द्रह लोग तो रहेंगे। आरोग्य संस्थान के लोग भी रहेंगे जिनके लिए वह निःशुल्क सेवा करते थे। ग्यारह पण्डित भी रहें तो तीस-पैंतीस लोग का खाना बनेगा। ये चीजें आप

अलग बँधवा लेना। बाकी जो हलवाई कहेगा एक दिन पहले ले आना।

मैं तायाजी की कुछ यादें बटोर रहा था। वह तंदूर की रोटी ही खाते थे। ज्यादा नहीं खाते थे। एक वक्त में बस दो रोटियाँ, परन्तु नीलिमा बार-बार तंदूर न जलाना पड़े इसलिए चारों रोटियाँ एक साथ बना देती। किसी शादी-विवाह के आयोजन में या तो जाते नहीं थे या सिर्फ थोड़ा सलाद खाकर लौट आते। मैंने उन्हें बाजार की चीज खाते कभी नहीं देखा था। कपड़ों के बक्से में तीन कुर्ते-पायजामे, एक दुशाला और एक वास्कट। कपड़े धोने के लिए कभी नीलिमा को नहीं दिये। खुद ही धोते थे।

सुबह उनका एक-डेढ़घण्टा छत पर बीतता था। चिड़िया आती और वह चिड़ियों के साथ इस तरह घुले-मिले रहते जैसे वे भी उनके परिवार का हिस्सा हो। चिड़िया भी न जाने क्या-क्या उनसे चहचहाते हुए कहती थी। कभी-कभी तो उनके सिर पर कँधे पर बैठकर अपना हक जाहिर करतीं। अखबार में जब चंद बचे-खुचे पक्षी प्रेमियों पर एक लेख छपा था तब उन पर भी दो लाईनें खर्च की गई थी। आँगन में दस फुट बाई बारह फुट की जगह में उन्होंने छोटी-सी वाटिका बना रखी थी, क्योंकि कोई पेड़ लगाने के लिए घर के सभी लोगों ने मना कर रखा था। इस डर से कि उसकी जड़ें फैल कर घर के फर्श दीवारों का सत्यानाश कर सकती है, इसलिए उन्होंने गमलों की सहायता से उस जगह को हरा-भरा कर दिया था। गमले कुछ इस अंदाज में थे कि जैसे भारत का नक्शा हो। यह उनकी भारत को हरा-भरा देखने की कामना का परिणाम था।

रामविलास गुप्ता के बड़े घर की छत पर जब किसी टेलीफोन कम्पनी का टॉवर लग गया, चिड़ियों का आना बिल्कुल बंद हो गया। सदा स्वस्थ रहने वाले तायाजी बीमार रहने लगे, रोटी सिर्फ एक वक्त खाने लगे और अंतिम साँसे लेने में छह महीने भी नहीं लगे। मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपने सभी अंगदान कर देने की वसीयत लिखी, जिसे निभाया गया। बिरादरी के कुछ लोग ऐसी सूखी वसीयत जिसमें परिवार के किसी सदस्य को कुछ न मिले का मजाक उड़ाते रहे।

स्कूटर की चीजें लाद-लाद कर ठेला बनाते हुए भीड़-भाड़ भरे बाजार से निकलते हुए ट्रैफिक जाम में बेजवह समय और पेट्रोल दोनों को जलाते हुए मुझे समझ नहीं आ रही थी कि इतनी गाड़ियाँ सड़क पर कैसे आ गईं? एक-दूसरे को धकेल कर आगे बढ़ती भीड़ में कोई नम आँखों वाली नदी की कल्पना तो नहीं कर सकता। खैर, घर पहुँच कर नीलिमा के दिये पानी के गिलास से पहला घूँट भर कर लगा कि चीजें लाद कर घर सुरक्षित पहुँचा जाना भी किसी योद्धा से कम नहीं।

मुझे किताबें उठा कर लायब्रेरी जाने के लिए तैयार होते देख नीलिमा ने कहा ''समय पर लौट आना, सब्जीमंडी जायेंगे।''

मैं - ''ठीक है'' कह कर निकल आया।

लायब्रेरी की नई जगह की स्थापना को महीने निकल गये, परन्तु अभी तक किताबों के ढेर कई जगह थे और उनके रैक खाली पड़े रह कर किताबों को उदास भाव से निहार रहे थे। नाट्यशाला का सिर्फ नींव पत्थर रखा गया। पेंटिंग्ज हॉल की जगह ईंटों का ढेर और जंग खाया सरिया पड़ा था। दाखिल होते ही कोने की मेज पर गाँधी की नमक सत्याग्रह वाली तस्वीर पर धूल काफी जमा हो गई थी। एक बड़ी पेंटिंग मेज के पीछे फर्श पर पड़ी थी। इस पेंटिंग में दुर्गा भाभी भगतसिंह के साथ थी और साथ में था तीन साल का दुर्गा भाभी का बेटा शची। उन्हें कलकत्ता स्टेशन पर भगवतीचरण वोहरा दूध बेचने वाले के वेष में इनको मिलेगा। सुखदेव को दुर्गा भाभी ने पाँच सौ रुपये दिये थे टिकिट वगैरा के लिए और भगतसिंह की पत्नी के रूप में जाना स्वीकार कर लिया था।

मैंने एक कर्मचारी से पूछा किताबों को ठीक से लगाया क्यों नहीं जा रहा ?

जवाब मिला - हम तो 'रोज' वाले हैं। 'नियमित' वाले आयेंगे तो लगा देंगे।

- 'रोज' वाले भी इसीलिए नहीं रखे गये।

- रखे तो इसीलिए गये हैं, परन्तु सारा वक्त साहब के बैंक के काम, बच्चों को लाने-छोड़ने, सब्जी लाने जैसे कामों में ही निकल जाता है।

मुझे लगा कि वह उसी ढ़ाँचे का एक पुर्जा बन गया है जिसकी पहेली सुलझाना बड़े-बड़े के बस का नहीं रहा।

मैं आगे किताबों के बीच चला गया। पीले कागजों पर काले अक्षरों की महक ने मुझे मुग्ध कर लिया। थोड़ी देर के लिए मैं उस महक में डूबता चला गया। यह वही महक थी जो तायाजी को तब महसूस होती थी जब चिड़िया उनके कँधे पर बैठ कर अपनी नन्ही यात्रा के सम्बन्ध में कुछ कहती थीं। एक किताब ने दोस्त की तरह बगलगीर होकर बाँह से मेरी गर्दन को घेर लिया। जैसे पूछ रही हो - 'कहाँ-कहाँ-कहाँ धक्के खाते रहते हो जो हमारी याद नहीं आती, एक किताब सुनामी के बारे में थी। मनुष्य के निरंकुश व्यवहार पर तीरों की तरह सवाल छोड़ रही थी। ताया जी कहते थे कि यह विकास एक दिन भस्मासुर हो जायेगा।

अब मेरे सामने एक लेखक था। उसके पास बहुत पुराना कोट था। बाहों से घिसा हुआ और बदरंग। घर के लोग चाहते थे वह नया कोट पहने। वह रोज डाकखाने जाकर अपने मनीऑर्डर के बारे में पूछता है। मनीऑर्डर जो उसे रचनाओं के एवज में मिलने थे, लेकिन खाली लौट आता है। वह लेखन पर ही निर्भर है। वह टूट रहा है। वह टूट गया है। उसका दोस्त उससे पूछ रहा है कि अगर वह ऐसी जिन्दगी संभाल नहीं सकता तो उसने ऐसी जीने की राह चुनी क्यों इस देश में सच्चे लेखक को एक-एक इबारत अपने खून से लिखनी होती है।

एक किताब है जिसमें दधीचि की, राजा शिवि की, कर्ण की दान कथाएँ हैं। भूमिका लेखक जातीय स्मृति को फिर से सामने लाने की कोशिश कर रहा है।

एक और किताब है जिसके फ्लैप पर दर्ज है कि कोई भी समाज अपने सांस्कृतिक रिक्थ से जुड़कर ही सांस्कृतिक नवीनीकरण का उद्देश्य प्राप्त कर सकता है। मुझे अपने एक दोस्त की बात याद हो आई वह कहा करता है कि लायब्रेरी का दूर ले जाना और मार

देना लोगों को ज्ञान से दूर रखने की साजिश है।

मैंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राज्य की बढ़ती हुई भूख सम्बन्धी किताब निकलवा ली। किताब लेकर नीचे काउण्टर पर आया। वहाँ पुस्तक जारी करने वाला क्लर्क नहीं था।

पाँच-सात मिनट इंतजार करने के बाद बाहर देखने गया तो वह कोने में बीड़ी सुलगा रहा था।

- मेरे लिये यह किताब जारी कर दो।'' अपना कार्ड और किताब उसके हवाले करते हुए मैंने कहा।

- ''बड़ी देर लगा दी आपने।''

- मैंने घड़ी देख कर कहा - अभी तो लायब्रेरी बंद करने में बीस मिनट बाकी हैं।

- मुझे कहीं जरूरी जाना था। बीड़ी बीच में बुझाना उसे पसंद नहीं था।

- अच्छा, आपका बिजली दफ्तर में कोई वाकिफ है ?

- नहीं, क्यों क्या बात है ? उसने पूछा।

मेरा बिजली का मीटर टूटा है। मुझे नहीं पता वह कब टूट गया या फिर पहले से टूटा हुआ मिला था। वह कहते हैं चोरी का केस है। बड़े भाई ने कहा न दो-तीन सौ रुपये देकर रफा-दफा करो। तीन सौ को उसने हाथ भी नहीं लगाया। भाई ने कहा है पाँच सौ दे देने थे। यह कैसी सरकार है ? इनके अपने हजारों-करोड़ों डकार कर बैठे हुए हैं। बस, पूछताछ चलती रहती है। वे चोर नहीं हैं। हमने कोई चोरी नहीं की, फिर भी हम चोर हैं।''

वह इतना आवेश में था कि गुस्से में बोलते हुए उसकी थूक गिर रही थी। उसने खंभे पर बीड़ी रगड़ कर बुझा दी। मैंने देखा पहले भी वह बीड़ी को ब्रुश बनाकर खंभे पर काफी चित्रकारी कर चुका था।

घर लौटकर नीलिमा ने मुझे मठरी के साथ चाय दी।

मैंने कहा- लायब्रेरी शहर से काफी दूर चली गई।

उसने कहा - हाँ, कोई किताबें पढ़ता तो है नहीं।

- इसका मतलब यह कि जो पढ़ना चाहते हैं उनको भी रोक दिया जाये।

- चाय खत्मकरो। सब्जीमंडी हो आयें।

उसको लगा कि मैं किताब खोल कर बैठ गया तो सब्जीमंडी जाना खारिज हो जायेगा। वह लगभग हफ्ते भर की सब्जियाँ लाकर फ्रिज में ठूंस देती थी। तायाजी ठीक कहते थे - फ्रिज चीजों को पहले बासी करने और फिर खाने की मशीन है।

सब्जीमंडी जाने के लिए आठ बजे के बाद का समय नीलिमा को सही लगता था। पाँच-छह बजे सब्जी लाने पर वह कहती थी सब्जी महँगी मिलती है। पहले मैं बाहर खड़ा रहता था और नीलिमा अन्दर जाकर झोला भर लाती थी, परन्तु अब आठ-दस किलो सब्जियों का झोला उससे उठता नहीं था। बाँह में दर्द रहने लगा था, इसलिए मैं साथ जा रहा था।

भीड़-भाड़ के बावजूद मुझे कुदरत के रंगों की छटा नजर आयी। मूली को अपने हरे पत्तों के मुकुट पर गुमान था तो गाजर को अपनी गाजरी रंगत पर। पीले नींबू के साथ हरे मटर का ढेर देख कर थकान उतर गयी। मैंने नीलिमा से कहा- लड़कियों को अपने कपड़ों को रंग संयोजन यहीं से सीखना चाहिए, परन्तु उसका ध्यान सिर्फ बढ़ी हुई कीमतों पर था।

वहाँ भेदभाव नहीं था। बिहार से आया हुआ अहमद गोभी बेच रहा था तो पास ही उत्तरप्रदेश का रामजस मैथी, आलू। फिरोजपुर का लखनसिंह मटर बेच रहा था, साथ ही बांग्लादेश से आयी हुई बाजिदा अम्मा अदरक, लहसुन, पुदीना और मिर्च बेच रही थी। बोरी के नीचे पैसे रखती जा रही थी। पचास ग्राम के बट्टे की जगह उसने आलू रखा हुआ था। नीलिमा को प्याज की प्याजी रंगत की जगह उसकी कीमत परेशान कर रही थी। उसने पाव भर प्याज खरीदा और कहा- मैंने आज तक कभी दो किलो से कम प्याज खरीदा नहीं था। क्या वह वक्त आ गया है कि हम बोरी में भरकर पैसे ले जायें और लिफाफों में भर कर चीजें लायें।

भीड़-भाड़ और धक्कम पेल पर सब्जी बेचने वालों की खुसर-पुसर हावी थी। हमें ठीक से पता तब चला जब नीलिमा ने टोकरी में मटर चुन लिए थे और तौल कर देने के लिए इंतजार कर रही थी, परन्तु वह अपने साथी से बातें कर रहा था और उसके चेहरे पर डर-सा भरता जा रहा था। मैंने पूछ ही लिया- कोई खास मसला है भाई ?

- हाँ, बहुत खास। यह सब्जीमंडी की जगह बिक जायेगी। चंदनसिंह यहाँ शॉपिंग मॉल बना देगा तीन सौ करोड़ लगाकर।

मुझे याद आया लायब्रेरी की जगह भी उसने ही खरीदी थी।

- इसमें इतना डरने की क्या बात है ?

- उसके गुंडे सिर फोड़ने, बोतलें चलाने, लाठी चलाने में माहिर हैं। बाद में कह देते हैं कि इनकी आपसी लड़ाई थी।

मुझे तायाजी की बात याद आई कि उन्होंने कहा था। उन्नीसवीं सदी में उचक्के, भाड़े के काम करते थे अमीर वर्ग उन्हें प्रतिरोधी जमात को मारने के लिए इन्हें इस्तेमाल करते थे। एक-सौ पचास साल बाद लुम्पेन प्रालेतेरिय बदल चुका है और यह कि शैतान कभी वरदान नहीं देते।

- तुम लोग करोगे क्या ?

- करना क्या है एका हो जायेगा तो लड़ेंगे। नहीं होगा तो तू डाल-डाल मैं पात-पात।

दूसरे ने कहा- आप तो पढ़े-लिखे हो बाबू। आपने लायब्रेरी (लायब्रेरी) के टूटते समय क्या कर लिया।

अब मेरा चेहरा उतरने की बारी थी।

वह आदमी जिसका चेहरा ऐसा था, जैसे पाँच दिन से मुँह न धोया हो, सिर पर औघड़ ढ़ंग से साफा बाँधा हुआ था जिसने पाँचवीं जमात से आगे की क्लास में प्रवेश नहीं पाया होगा, मुझे धोबी पछाड़ दे गया।

मैं ठीक-ठाक घर लौटा रास्ते में किसी से टकराया नहीं, नीलिमा ने आलू-मटर की सब्जी बनायी। मैंने रोज की तरह दो चपातियाँ खाईं।

टी.वी. में खबरें देखते-देखते अपने को मूर्ख बनाने वाले फूहड़ विज्ञापन भी देखे। नीलिमा ने तायाजी की बरसी के लिए लायी सामग्री ऊपर रखने को कहा। मैंने रख दी। अपने आपको इस तरह सोने के पहले डिजाईन कर लिया कि लायब्रेरी बिके या सब्जीमंडी फिर भी चंदनसिंह जैसों की भूख भरे न भरे, मुझे क्या।

रात के स्वप्न में तायाजी आये उन्होंने सिर्फ लंगोटी पहनी हुई थी। हाथ में लाठी थी। लाठी की नोंक से उन्होंने मुझे उठाया। कहा- ''मैंने तुम्हें कब कहा कि मेरी मूर्ति बनवा दो।''

सुबह उठ कर मैंने नीलिमा से कहा- हम इस तरह ताया जी की बरसी नहीं मनायेंगे।''

- क्यों क्या हुआ?

- ताया जी ने जहाँ घर में फूलों के गमलों से भारत का नक्शा बनाया। वह जगह कहाँ है?

- क्या हो गया आपको ? दफ्तर से कर्ज उठाकर वहीं कमरा बना है किराये पर उठाने के लिए। - इसीलिए कह रहा हूँ जहाँ छत पर उनकी दोस्त चिड़िया नहीं आती, जहाँ उनकी छोटी-सी वाटिका संभाल नहीं पाये हम। उनकी इस परम्परावादी ढ़ंग की बरसी किसलिए ?

उसने कहा- लोग क्या कहेंगे ?

मैंने कहा - लोग अगर महँगाई पर कुछ नहीं कहते, चिड़ियों के मर जाने पर अफसोस नहीं करते, लायब्रेरी या सब्जीमंडी के बिकने पर कुछ नहीं कहते तो उन्हें तायाजी की बरसी पर भी कुछ कहने का हक नहीं।

उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में वही परछाई थी।

साक्षात्कार

अच्छे लोग आज भी हैं और बहुत हैं...

कवि, आलोचक राजेन्द्र टोकी द्वारा पूछे गये प्रश्नों के कवि कथाकार, आलोचक तरसेम गुजराल द्वारा दिये गये उत्तर

वे कौन-सी परिस्थितियाँ या दबाव रहे जिन्होंने आपको कलम उठाने के लिए बाध्य किया ?

किशोरावस्था में मेरे परिवार और आस-पास के लोगों में एक के बाद एक कई मौतों का सामना हुआ। ऐसी घटनाओं ने मुझे भीतर से अकेला और प्रश्नवाची बना दिया। माता-पिता विभाजन के फलस्वरूप इधर आये थे। वे पुनर्निमाण के लिए संघर्षरत थे। उनके पास भी मनुष्य जाति की गिरावट और तबाही की कहानियाँ थीं। इस अपनी तरह के कारावास से मुक्त होने के लिए एक रास्ता भापाजी (पिताजी) का था गीता का अध्ययन, जहाँ मौत और तबाही (संभावित) से भयभीत अर्जुन की काउंसलिंग थी। दूसरा रास्ता मुझे कुछ देर में समझ आया। तब तक मैं 'गोदान' (पहली बार) पढ़ चुका था। वह था कि शब्द से ही वह समय ठहर सकता है जो हमारे अंग-संग होता है हमसे बारूद के तार की तरह लिपटा होता है जिससे हम हर पल मुक्त होना चाहते हैं। इससे भीतर का जलवायु कुछ बदलता नजर आया। कलम तब उठी जरूर, परन्तु कोई स्वरूप नहीं बना सकी। यह एक गूँगे के गुड जैसी अवस्था थी। 1967-68 में कविता के माध्यम से कुछ ठौर मिली। 1975 तक रास्ता प्रशस्त हो चुका था, जो मुझे एक लेखक के रूप में पुकार रहा था। तब भीतर-बाहर हर तरफ बेचैनी थी।

आपने उपन्यास, कहानी, कविता आदि कई विधाओं में लिखा है। इसका मूल कारण क्या है और किस विधा में आपको सबसे अधिक संतोष मिलता है ?

मेरे लेखन का आरंभ कविता से ही हुआ। कहानियाँ लिखीं। समाचार पत्रों के साप्ताहिक अङ्कों में जगह पाने लगी। उपन्यास लेखन के आरम्भ से ही मेरा जंगल में गुम हो जाने सपने जैसा रहा। इस तड़प में 'जलता हुआ गुलाब' (1989) पंजाब समस्या पर, मटमैला आकाश (1996) दलित समस्या पर, उल्टे आखर (2008) छपे। 'बौना बरगद' प्रकाशाधीन है और 'पंथ निहारि' लिखा जा चुका है, परन्तु अभी अंतिम रूप देना बाकी है। अखबार में कहानी लिखने और छपवाने में सन्तोष न था। सो पंजाब के बाहर पत्र/पत्रिकाओं को खंगाला। मैं खुद को, अपने लेखन को सीमित नहीं करना चाहता था, न एक राज्य तक, न ही एक विधा में। अब आलोचना की बात। नई-नई किताबें पढ़ने की भूख मुझे पुस्तक समीक्षा तक ले गई, परन्तु मुझे यह आलोचना का वास्तविक काम कभी नहीं लगा, न ही यहाँ विचार के खुलने-खिलने की स्वतंत्रता थी। आलोचना में मैं काफी बाद में आया। जब मैंने देखा कि चर्चित कवि और 'बड़े कवि' में कोई अन्तर नहीं किया जा रहा है। मैं नागार्जुन के करीब गया (वह हमारे घर भी आकर रहे) मैंने उन्हें एक बड़ा जनकवि पाया। उनकी 'अकाल' कविता हिन्दी-साहित्य की धरोहर है। त्रिलोचन को समझाने की कोशिश की। पाया कि घोर अभाव भी उन्हें विचलित नहीं करते। रचना और रचना - न कोई गिला, न शिकवा, न शिकायत, न लालसा। कहानी उपन्यास की आलोचना भी मुँह देखी, मुखबाजी से आहत, कामचलाऊ वाग्विलासी नजर आयी। उठाने-गिराने का धन्धा शुरू हो गया था। तब तक मेरे अध्ययन को कुछ गहराई और व्यापकता भी मिल चुकी थी और चीजें साफ नजर आने लगी थी। मैंने कृति को उसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश में रखकर देखना आरम्भ, सोचना, समझना आरम्भ किया। राजू शर्मा के उपन्यास की कम चर्चा हुई, मैंने उस पर लिखा। जया जादवानी के उपन्यास 'मीठो पानी खारो पानी' पर तब लिखा जब उपन्यास पुरस्कार की घोषणा नहीं हुई थी। भारत में बसते यहूदियों की कहानी न गौरवपूर्ण है, न बहुत आशावादी, वह उदास करती है, सो मैंने शीला .....के उपन्यास पर लिखा। रमेश दवे किसी भी तरह नये या उतने उपेक्षित नहीं है। मैंने और उन्होंने बिना भेदभाव के सभी पर लिखा, परन्तु किसी ने न रमेश दवे को चुना, न मुझे। मैंने उनके उपन्यास 'खेल गुरु' पर लिखा। आज तक लगभग 70 हिन्दी उपन्यासों पर लेख लिख चुका हूँ। जो अलग-अलग खंडों में आयेंगे। जहाँ तक विधाओं का सवाल है अनेक लेखकों ने एकाधिक विधाओं पर काम किया है। अज्ञेय कविता, कहानी, उपन्यास, चिंतन, सम्पादन सभी में काम कर रहे थे। एड्रआर्दो गालेबानो कविता, कहानी, चिन्तन, इतिहास, संस्मरण, डायरी, रिपोर्ट न जाने कितनी विधाओं में रचनारत रहे। एकाधिक विधाओं में लिखना अपने आप को और तपाना, खपना ही है। यह दो सिरों से जलती मोमबत्ती जैसा है, परन्तु जब करना है तो करना ही है। न किसी पर एहसान, न किसी का अनुरोध। सन्तोष नहीं सन्तोष कहीं नहीं। एक काम पूरा होता है तो दूसरा प्रकार रहा होता है।

वो कौन-सी रचनायें हैं जिन्हें बार-बार पढ़ने का मन होता है ? आपके प्रिय रचनाकार कौन-कौन से हैं?

बहुत-सी हैं - उपन्यासों में गोदान (प्रेमचंद), भूले बिसरे चित्र (भगवतीचरण शर्मा), झूठा सच (यशपाल), शेखर एक जीवनी (अज्ञेय) मुर्दाघर (जगदम्बाप्रसाद दीक्षित), मय्यादास की माड़ी (भीष्म साहनी), गोरा (रवीन्द्रनाथ टैगोर), ओल्ड मैन एंड द सी (हैमिग्वे), धरती धन ने अपना (जगदीशचन्द्र), आलोचना अथवा निबंध में अर्न्सट फिरार की 'कला की जरूरत', मेरा दागिस्तान (रसूल हमजातोव), 'अन्धेरे समय में विचार', (विनय कुमार) 'अशोक के फूल' (आचार्य द्विवेदी), बुल्लेशाह (विनोद शाही)

रिल्के के पत्र (अनुवाद राजी सेठ)। चेखोब की कहानियाँ, मोहन राकेश की कहानियाँ, भीष्म साहनी की कहानियाँ, मंटों की कहानियाँ, उर्दू, पंजाबी की चुनी हुई कहानियाँ, योगेन्द्र आहूजा, रमेश चतर की कहानियाँ, इजराइल की कहानियाँ, पाव्लो नेरूदा, नाजिम हिकमत, नागार्जुन, त्रिलोचन की कवितायें, राजेश जोशी, केदारनाथ सिंह तथा पाश की कवितायें। व्यंग्य में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी,प्रेम जनमजेय की रचनायें। प्रिय रचनाकार हैं- शरतचन्द्र, प्रेमचंद, यशपाल, अश्क, अमृतलाल नागर, भीष्म साहनी, देवेन्द्र इस्सर, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, मंटो, विनोद शाही, राही मासूम राजा, जगदीशचन्द्र, ममता कालिया, मोपसा और चेखोव आदि।

आपके प्रेरणा पुरुष कौन हैं ?

विवेकानंद और भगतसिंह।

आप काफी समय से सृजनरत हैं, आज की और पुरानी परिस्थितियों में जब आपने लिखना शुरू किया, क्या अन्तर पाते हैं ?

मेरी रचनायात्रा 1970 के करीब से शुरू होकर आज तक निरन्तर है। 1973-74 में मैंने नौकरी के लिए दरवाजे खटखटाने शुरू किये। 1975 में नौकरी मिली।तब ईमानदार आदमी की इज्जत भी थी। बाकी लोग डरते भी थे। 2008 में जब नौकरी से बाहर आया ईमानदार आदमी को दफ्तरों में 'टिच' 'मूर्ख' सनकी समझा जाने लगा था। पहले साधारण डाक से रचना भेजने पर कमलेश्वर जैसे सम्पादक पत्र लिखकर सूचित करते थे। यह चलन कम होता चला गया है। समाचार पत्रों के बिक्री विशेषज्ञों ने उन्हें बताया है कि फिल्म, क्रिकेट, फैशन पर ज्यादा ध्यान दें। लिहाजा गोष्ठियों, सेमिनारों की रिपोर्टों, पुस्तक समीक्षा के लिए जगह या तो कम हुई है या कम हो रही है। एक पत्रिका आंदोलन की तासीर भी बदली है। जहाँ सम्पादक, लेखक के बीच संवाद की स्थिति है, वहाँ ढ़ंग का काम हो पाता है। सभी जगह ऐसी सुविधा नहीं। सरकारी पत्रिकाओं के सम्पादक कम ही संवाद की स्थिति में होते हैं। पहले एक रचना छपने पर पाङ्कों के कई पत्र आ जाते थे। अब पाँच-दस फोन आ जाये तो गनीमत है। पत्रिकायें और पुस्तकें सुंदर छपने लगी हैं, परन्तु खरीददार के कम होने की शिकायतें मिल रही हैं। उपभोक्तावाद ने मिजाज बिगाड़ा है। ....सरकारों की जेनुइन साहित्य में दिलचस्पी होती नहीं, परन्तु प्रतिरोध के साहित्य पर आज भी खलबली मचती है।

लेखक आज मुफ्त का मजदूर समझा जाता है। लेखक संगठनों की भूमिका सीमित होती चली गयी। फर्क तो आया ही है, परन्तु जेनुइन राइटिंग का सदा अलग मुकाम रहा है, रहेगा ही। अच्छी रचना को देर-सबेर सम्मान मिलता ही है।

आज साक्षरता की दर बड़ी है, लेकिन साहित्य में रुचि कम हुई है। दूरदर्शन, इंटरनेट और मोबाइल के अतिरिक्त और कौन-से कारण आपको साहित्य में अरुचि के दिखाई पड़ते हैं ?

साक्षरता दर निश्चित रूप से बढ़ी है। आपके इस प्रश्न के उत्तर में मुझे यह जानना है कि हिन्दी अधिकारियों की फौज क्या रही है ? क्या वे अपने यूनिटों

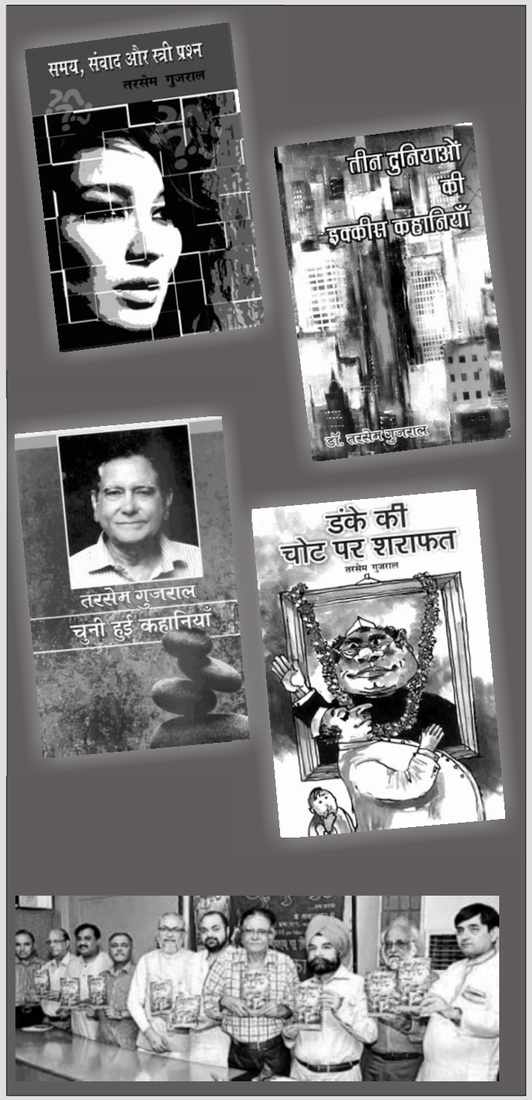

में अच्छे साहित्य के प्रचारक तक हैं ? कॉलेजों में हिन्दी-साहित्य के कितने अध्यापक हिन्दी-साहित्य गहन दिलचस्पी से पढ़ा रहे हैं?उनमें कितने हाजिरी लगाने और पगार पाने ही कॉलेज जाते हैं। मैंने हिन्दी की रोटी नहीं खायी, लेकिन कर्ज उतारने की भरपूर कोशिश की है। हिन्दी अधिकारी हिन्दी अध्यापक अपनी पगार का एक छोटा-सा अंश भी हिन्दी पत्रिकाओं/किताबों पर खर्च करें तो कुछ बदलाव हो। दूरदर्शन से लोग अब ऊबने लगे हैं। वैसे भी पापुलर साहित्य और सच्चे साहित्य की जगह अलग-अलग रही है। पाठक और किताब का रिश्ता मजबूत होने की संभावना ज्यादा है। पुस्तक मेलों में किताबें बिकती हैं। पेपरबैक संस्करण ज्यादा आकर्षित करते हैं, ज्यादा बिके हैं। आज के बाजारवाद में टूथपेस्ट, आइस्क्रीम का जितना विज्ञापन होता है, उसके मुकाबले किताब पर फोकस बहुत कम है। नहीं के बराबर।

आपकी रचना प्रक्रिया क्या है ? वे कौन-से बिन्दु हैं जो सृजन के समय आपके सामने रहते हैं?

अनेक लेखकों ने लेखन का उद्देश्य सत्य की खोज बताया हे। लेखन में संवेदन का गुण कुदरत ने दिया है। मुझे मिला। सभी अपने अध्ययन, अनुभव, विचार से पर्तों में छुपे सत्य को खोजने की कोशिश में जाते हैं, मैं भी गया। जीवन का कोई अन्तर्विरोध प्रभावित करता है तो उस तक जाने की कोशिश करता हूँ। कई दिनों तक मेरे भीतर कुछ घुमड़ता रहता है, उथल-पुथल-सी मची रहती है।जब तक वह अपना रूपाकार खोज नहीं लेती, बेचैन किये रहती है। कभी कोई अमूर्त होकर छूट भी जाती है, यह बात अलग है। कागज पर उतरने में भी समय लगता है। सृजन के समय पड़ताल जारी रहती है जो किसी को उसके हालात तक पहुँचाती है। कुछ समय बाद फिर उठाता हूँ, देखता हूँ, परखता हूँ और प्रकाशन के लिए भेज देता हूँ।

आपकी रचनाओं को लेकर आलोचकों का रवैया क्या रहा है ?

साहित्य में लंबे समय तक डगर-डगर घूमने पर पता चला जाता है कि किस आलोचक ने कहाँ लंगड़ी मारी है या कोई छिपी भड़ास निकाली है। जहाँ चीजों को समझने और समझ कर जाहिर किया गया हो वह बेहतर काम है। हम साहित्य के लोकतंत्र में हैं। अपने हक में भुगतने वाला लोकतंत्र नहीं। मैं अपनी पसंद किसी पर लाद नहीं सकता, न ही लादनी चाहिए। आलोचक को छूट है कि वह मेरी रचना को मन से स्वीकार करें या नकार दे, परन्तु फतवा देकर नही। तर्क की कसौटी पर परख कर ही बात हो, तो बेहतर है। प्रेमचंद के बारे में कहा जाता है कि वह एक हाथ से प्रहार करते थे, दूसरे हाथ से सहलाते भी थे। अब राही मासूम राजा के उपन्यास 'आधा गाँव' को लेकर अगर आलोचना यह है कि इसमें गालियाँ हैं, लिखते हुए सावधानी नहीं बरती गई। गुलाम हुसैन खाँ पर हमला करने वाला चिरोजीबाद में झिंगुरिया बन जाता है, चरित्र चित्रण भी कहीं न कहीं कमजोर है, परन्तु 'आधा गाँव' को इस प्रहार से घायल नहीं किया जा सकता। वह सैकड़ों फुसफुसे ढीले-ढाले उपन्यासों से बेहतर इसलिए है कि उसके भीतर मर्म छुपा है - डर की फसल हमीं को काटनी पड़ेगी। आप लोगों ने तो उर्दू को मुसलमान कर दिया- नफरत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती। हमें क्या गालियाँ गिनवाने वाली आलोचना की तरफ जाना चाहिए या उपन्यास के उस मर्म की तरफ जो मानवता का लोकतंत्र रच रहा है। आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण का काम तो लगातार जारी रहता ही है। मेरा काम रचना का काम है। मैं आलोचक को भला क्या कह सकता हूँ। उनका स्वागत है।

प्रसंगवश लगे हाथ हिन्दी आलोचना की स्थिति पर कुछ कहना चाहेंगे ?

हिन्दी आलोचना की स्थिति संतोषजनक नहीं है। मठाधीशी मुँह देखकर बात करना, उखाड़ना-पछाड़ना, साहित्यिक राजनीति करना, कम पढ़कर बड़े-बड़े दावे करना, जिस आलोचना के चरित्र में शुमार होता चला जाये उसकी क्या दशा होगी ? पिछले कुछ समय से 'नीर क्षीर विवेकी' होना मजाक/व्यंग्य का हिस्सा हो गया। आप किसी की भी बरसों की मेहनत, लगन, समर्पण को एक पंक्ति में रद्द कर सकते हो, परन्तु ऐसा करने का अधिकार आपको दिया किसने ? अज्ञेय की जितनी चाहे निंदा करे, जितने भी हमले करें, परन्तु उनकी कुछ बातें याद रखने लायक हैं। भवन्ती में उन्होंने कहा - अगर मैं अपने से बड़े किसी विचार, आदर्श, आइडिया के लिए जीता हूँ, तो स्पष्ट है कि मेरा जीवन एक यज्ञ है, उस विचार या आदर्श के लिये अर्पित आहूति मैं हूँ। आपने तो प्रेमचंद, यशपाल, नागार्जुन को नहीं बख्शा। दिनकर की प्रगतिशीलता को दरकिनार कर दिया।

'जलता हुआ गुलाब' उपन्यास की मूल प्रेरणा क्या रही ?

जलता हुआ गुलाब 1987-88 में तैयार हुआ, 1989 में छपा। उपन्यास की पाण्डुलिपि पर ही मुझे वाणी प्रकाशन द्वारा समायोजित प्रेमचंद महेश सम्मान मिला। उपन्यास के आरम्भिक पृष्ठ पर अंकित है- इस उपन्यास का एक ही पात्र है-पंजाब, एक ही उद्देश्य है पंजाब। पंजाब जल रहा था। बसों से उतारकर मासूम लोगों की हत्यायें जितनी बुरी थी। दिल्ली और अन्य जगहों पर सिख भाईयों पर हुए अत्याचार उससे भी बुरे। बुरा वक्त था। अमृतसर दरबार साहिब पर हमला भी जख्म देने वाला था। सभी घटनायें मेरे स्पंदन तंत्र को तार-तार कर गईं। कठिन दिन थे मन की बात कह पाना उतना आसान न था। 21-08-89 को त्रिवेणी सभागार मंडी हाउस दिल्ली में किताब का लोकार्पण हुआ था। मंच संचालन डॉ. निर्मला जैन ने किया। अध्यक्षता बाबा नागार्जुन ने की। नरेन्द्र कोहली, नामवरसिंह, अमृतलाल नागर मंच पर शोभायमान थे। बाबा ने कहा था कि 'जलता हुआ गुलाब' का मतलब है कि पंजाब का सौन्दर्य झुलस रहा है। उपन्यास पाण्डुलिपि पर निर्णायक मंडल में भगवानसिंह, नरेन्द्र कोहली, रमेश उपाध्याय थे। सितम्बर में पाश स्मृति सम्मेलन में जब डॉ. रमेश कुंतल मेघ मिले, उन्होंने उपन्यास के बारे में कहा लोग तो तमंचे खाली करते हैं, तुमने तो तोप ही चला दी।

क्या आपको नहीं लगता कि आज के दौर में साहित्य सृजन कठिन हो गया है?

साहित्य-सृजन कठिन ही है, क्योंकि इसके पीछे साधना है, एकनिष्ठ कार्य है। आज अर्थलाभ की प्राथमिकता है। इस साधना में अर्थलाभ की गुंजाइश बहुत मद्दिम है, नहीं के बराबर। ज्यादा अपेक्षायें लेकर आने वाले ज्यादा दुःखी और निराश नजर आयेंगे। यहरास्ता पहले भी आसान नहीं रहा। प्रेमचंद, निराला को देख लें। गोर्की की पुस्तकें पढ़ने की लगन को देख लें। आसान उनके लिए रहा जो राज्याश्रय में चले गये। एक छन्द-छन्द पर अशरफियाँ पाते रहे। बाद में राज्याश्रय सरकारी तंत्र में बदल गये और अशरफियाँ चैक में। प्रतिरोध दर्ज

करने वाले आँख में खटकते रहते हैं। *फैज कुएँवार से निकल सुएदार (जेल) चले'* पाश, सफरदर हाशमी कहाँ बरदाश्त हुए। आज हर कदम से पहले का सोच विचार,रचनात्मक तनाव के साथ तुलसीदास जैसी (सलिल प्रवाह) समतल भूमि उपलब्ध नहीं। जार्ज आरवेल ने कुछ साल पहले ही कह दिया था - हम करीब-करीब निश्चित रूप से अधिनायकवाद के युग में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं जब चिन्तन स्वातन्त्र्य शुरू में घातक गुनाह होगा और बाद में एक अर्थहीन शब्द। स्वतंत्र व्यक्ति इस संसार में लुप्त होते जा रहा है- मार्क्सवादी लेखकों ने जार्ज आरवेल ने रूस की आलोचना कर प्रतिक्रांतिवादियों तथा पूँजीवाद का समर्थन किया है।

मनोहरश्याम जोशी ने एक जगह लिखा है कि प्रकाशकों को हर चीज का ध्यान रहता है। उस चीज पर वे पैसा लगाते घबराते नहीं, लेकिन ज्यों ही लेखक की रायल्टी की बात आती है, उनके हाथ खड़े हो जाते हैं। इस संदर्भ में आपका अनुभव और कहना क्या है ?

मनोहरश्याम जोशी गलत नहीं हैं। अगर उनका अनुभव यही है तो बाकी लेखकों का इससे बेहतर तो नहीं हो सकता। किताब प्रकाशक का उत्पादन है। उत्पादन एक इन्वेस्टमेंट तो होता ही है। वे लेखक पर इन्वेस्टमेंट क्यों करें जब आगे एक-दो चार लेखक अपनी जान लेकर प्रतीक्षा में खड़े हैं। मेरी जब पचास किताबें छप चुकी थीं, वार्षिक रायल्टी पचास रुपये भी नहीं थी। हिन्दी का लेखक मजदूर जितना श्रम ही करता है, परन्तु हालात मजदूर से गयी-गुजरी है। मजदूर पसीना सूखने से पहले मेहनत की मजदूरी माँग सकता है, हिन्दी का

लेखक नहीं।

आजकल आप 'साक्षात्कार' विधा की ओर आकर्षित हुए हैं और विभिन्न साहित्यकारों के साक्षात्कार ले रहे हैं। इसकी मूल प्रेरणा क्या रही है ?

मैंने पहला साक्षात्कार जगदीशचन्द्र का किया था। दैनिक ट्रिब्यून के दफ्तर विजय सहगल से मिलने गया था तो उन्होंने यह कार्य करने को कहा। मैंने उनसे कहा मुझे डेढ़महीने का समय दें। वह हैरान हुए। मैंने बताया कि मैंने उनका उपन्यास 'धरती धन न अपना' ही पढ़ा है। कुछ अन्य कृतियाँ पढ़ूँगा तभी बात कर पाऊँगा। उन्होंने मुझे वांछित अवकाश दिया। संवादहीनता में साक्षात्कार संवाद रचने का काम करता है । मैंने साक्षात्कार करते वक्त आपकी तरह कभी शार्टकट नहीं अपनाया। जैसे लोग बीस प्रश्नों का एक बैंक बना लें और बीस जगह भेजकर उत्तर सम्पादित कर लेते हैं मैंने सभी को पढ़ा। पढ़कर उनकी रचनाधर्मिता के अनुकूल बात की। मैंने यहाँ भी कुछ मिथ तोड़े हैं। जब यह काम कर रहा था तब मुझे हिदायत दी जा रही थी। सीनियर, जूनियर का साक्षात्कार नहीं करते ? अखबार/पत्रिका में हो, जैसे कोई बड़ा पुरस्कार मिला हो या उसके साथ कोई हादसा हुआ याने वह न्यूज आइटम हो। मैंने किसी हिदायत का पालन नहीं किया। कोशिश की कि रचनाकार का भीतरी व्यक्तित्व, उनके अनछुए पहलू, कृति की विलुप्त सच्चाई सामने आ पाये। समय, संवाद और स्त्री प्रश्न किताब में 13 महिला कथाकारों के साक्षात्कार हैं। मुझे पता था कि वे अन्ततः तेरह अन्य किताबों में आयेंगे, वही हुआ। मूल रचना प्रक्रिया का आंतरिक सत्य उद्घाटित करने की कोशिश की, वास्तविक जीवन, साहित्यिक जीवन में कोई गैप तो नहीं ? स्त्री में कोमलता होती है, दृढ़ता भी होती है, इसको उभारा जाये ताकि घटनाओं की जगह जीवन दृष्टि को रेखांकित किया जा सके, स्त्री अस्मिता को बाधित करने वाले तत्त्व क्या हैं और कहाँ हैं, बताया जा सके। यह काम अभी जारी है एक और किताब के रूप में।

आज के युवा रचनाकारों के विषय में कुछ कहना चाहेंगे ?

रचनात्मक साहित्य के केन्द्र में मूल्यगत चिंताये ही होगी जबकि शोर का साहित्य बाहरी टकरावों से लदा होगा। युवा लोग रचनात्मक साहित्य से ही जुड़ें। मैंने युवा रचनाकारों को गौर से पढ़ा है, अवसर मिलने पर स्नेहपूर्वक लिखा भी है। उनके लिए मैं, गोर्की तथा रिल्के (राजी सेठ का अनुवाद) काफी अच्छी बातें कह चुके हैं, उपयोगी भी। मैं सिर्फ इतना निवेदन करना चाहूँगा कि वे इस तरह न आये कि कोई किला फतह करना है और आज ही करना है। समयगत प्रश्नों को अपने भीतर दुहरायें और पाचन शक्ति के साथ दर्ज करें। खोये हुए व्यक्तित्व की काफी बात हो चुकी, अब व्यक्तित्व को खोजने का समय है।

अपना जीवन साहित्य को समर्पित करने के बाद आज आप कैसा महसूस कर रहे हैं ?

अच्छा महसूस कर रहा हूँ। डटकर काम किया है और करने की प्रबल इच्छा है। चीजों को वाइडर प्रसपैक्टिव में देखने की कोशिश में हूँ। विकट से विकट परिस्थितियों में सृजन लेखक का पहला धर्म है। इससे कभी पलायन की चेष्टा नहीं की। अच्छे लोग आज भी हैं और बहुत हैं। मेरा ध्यान उन पर रहता है जो नकरदा गुनाहों की सजा पाते हैं। काफ्का के 'ट्रायल' की भूमिका में क्या यही सवाल नहीं है ?

एक फंतासीनुमा सवाल आखिर में। पुनर्जन्म में भी क्या आप साहित्यकार होना पसंद करें या कुछ और ?

टोकी जी पुनर्जन्म में विश्वास नहीं। कैसे कह सकता हूँ जब इस उम्र तक पिछले जन्म की बात का कुछ अता-पता नहीं। वैसे एक ही जन्म में कई जन्म हो जाते हैं। लता मंगेशकर से जब यही सवाल पूछा गया था उन्होंने कहा था कि अगले जन्म में लता नहीं होना चाहेंगी। मुझे धक्के मिले हैं, गहरे दुःख मिले हैं, पर समुचित प्यार और विश्वास भी मिला है। इसी प्यार और सृजन के आधार पर कहता हूँ कि अगर सचमुच कोई अगला जन्म है और मुझे याद रहे कि मैं क्या था, तो लेखक ही होना चाहूँगा।

निकट भीष्म प्रकाश पार्क (मुख्यद्वार)
पीरखाना रोड, गोकुलपुरी, खन्ना-141401 पंजाब

iNDEXT-c

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી

ઈન્ડસ્ટ્રીઅલ એક્ષટેન્શન કોટેજ
(ગુજરાત સરકારની સંસ્થા)

રજી. ઓફીસ :
બ્લોક નં. ૭/૧, ઉદ્યોગ ભવન, સેક્ટર - ૧૧, ગાંધીનગર.
ફોન. : ૦૭૯ - ૨૩૨૫૪૨૬૧ - ફેક્સ:૦૭૯ - ૨૩૨૫૬૦૦૭
E-mail : exdire-indext-c@gujarat.gov.in
Website : www.craftofgujarat.gujarat.gov.in

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી - કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવામા માહિતી અને માર્ગદર્શન પૂરું પાડતી ગુજરાત સરકારશ્રીની સંસ્થા

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સીની રચના કોઈપણ નફાકારક પ્રવૃત્તિ સિવાયના નીચેના ઉદેશો માટે થયેલા છે.

૧. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક સાહસિકોને ઉદ્યોગોની પસંદગી, સ્થળ પસંદગી તથા જે તે ઉદ્યોગ માટે સરકારશ્રીના પ્રવર્તમાન પ્રોત્સાહનો / લાભો વિગેરેની જાણકારી આપવી.

૨. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રની વિવિધ સહાયની યોજનાઓને એકત્રિત કરી તે વિશે ભાવિ ઉદ્યોગ સાહસિકોને માહિતી આપવી અને આવી માહિતીનું સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવું.

૩. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રના વિવિધ ઉદ્યોગની માહિતી અને ઉદ્યોગ માટેની રૂપરેખા (પ્રોજેકટ પ્રોફાઈલ)એકત્રિત કરી તે વિશે ઉદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક વ્યકિતઓને તેની જાણકારી આપવી.

૪. કુટિર ઉદ્યોગ ખાતાની તથા કુટિર ઉદ્યોગ સંલગ્ન બોર્ડ / કોર્પોરેશનની વિવિધ યોજનાઓના ફોર્મ / અરજીપત્રક પૂરા પાડવા.

૫. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે જાહેરાત મારફત પ્રચાર ઝૂંબેશ ચલાવવી.

૬. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે સેમિનાર, વર્કશોપ તથા પ્રદર્શનનું આયોજન કરવું અને આવા આયોજન માટે સહાય પૂરી પાડવી.

૭. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસમાં ઉપયોગી હોય તેવી અન્ય પ્રવૃતિઓ હાથ ધરવી.

૮. કુટિર ઉદ્યોગ ક્ષેત્રની આર્થિક સમસ્યાઓના નિવારણ માટે બેન્કો તથા અન્ય નાણાંકીય સંસ્થાઓ જોડે ચર્ચા-વિચારણા હાથ ધરવી.

वाग्देवी का शतदल-समाराधन

डॉ.बालकृष्ण शर्मा

'समावर्तन' मासिक पत्रिका भारतीय वाङ्मय की आराधना के सातत्य का परिणाम है। यह पत्रिका साहित्य के सनातन प्रवाह की सामयिक अभिव्यक्ति का शिवसंकल्प भी है। साहित्य किसी भी भाषा का हो, वह सदैव अपने परिवेश में उन तत्त्वों का अभिराम दर्शन है, जहाँ रचनाकार भूत-वर्तमान-भविष्य के ताने-बाने में स्वस्फूर्त शब्दार्थाराधन की तपस्या कर सृजन की वरेण्य फलश्रुति का अध्वर्यु बन जाता है और वही यजमान भी है। इसी सोद्देश्य भावना का प्रतिरूप है- समावर्तन का प्रथम पृष्ठ।

स्वर्गीय श्रद्धेय डॉ.जगदीश शर्मा के उपरान्त डॉ.भट्टाचार्य जी ने प्रथम पृष्ठ का दायित्व डॉ.केदारनाथ शुक्ल को सौंपा। डॉ.शुक्ल उज्जयिनी की वेदमूर्ति परम्परा के अभिनव अध्येता हैं, अतः वैदिक वाङ्मय के अयातयाम विस्तार से सूक्तों/मन्त्रों/ऋचाओं/अथर्वों के अनुवाद/भावानुवाद की विधा से प्रथम पृष्ठ को सज्जित करते हुए उन्होंने शब्दार्थ-शतदल से वाग्देवी का समाराधन किया।

डॉ.शुक्ल ने ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण की अपौरुषेय वाणी के शत-संख्यात्मक स्थलों के समावर्तन के प्रथम पृष्ठ को स्पृहणीय बनाया। वेदवाणी के हिन्दी रूपान्तरण में पंच महाभूतों का मानवीकरण, राजधर्म, सामाजिक न्याय, कविकर्म, आशीर्वाद, नदियाँ, सरोवर, समुद्र, लोक-जन-धर्म, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, सरोवर, समुद्र, लोक-जन-धर्म, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, दान-प्रतिदान, दिन-रात, उषा, भूत-वर्तमान-भविष्य, रोग-प्रशमन, चिकित्सा, भूख, चिन्ता, करुणा, मातृभूमि, घर-बाहर, आचार्य-शिष्य, अनुष्ठान-साधना, मन-आत्मा पशु-पक्षी, जलचर-स्थलचर, शान्ति-अध्यात्म, आश्रम-अरण्य, नगर, वास्तु, राष्ट्र, शृंगार, वीर, भय, उत्साह, प्रशासन-अनुशासन, नाट्य-गीत-संगीत, संवाद, संवत्सर, ऋतु, मित्र-शत्रु, हिंसा-अहिंसा, इत्यादि को श्रुतिगम्य बनाते सूक्तों-मन्त्रों में प्रतिध्वनित सामयिक साहित्यबोध के सोपानों का दर्शन है।

वेदों के रूपान्तरण में यह सामयिक कविकर्म हमारी सनातन आस्था और वैदिक साहित्य के अमरत्व के साथ ही साहित्य की प्रभविष्णुता का परिचायक है।

'समावर्तन' की एकादशवर्षीय साहित्य यात्रा के सपादशतक पर्यन्त अंकों में वेदवाणी से मंगलारम्भ हुआ है। यह हमें अपने साहित्य-गौरव के अक्षत, अप्रतिहत, शब्दार्थ-यागानुष्ठान के वरदान रूप में प्राप्त ज्ञान-शेवधि है।

डॉ.शुक्ल ने अपने द्वारा प्रस्तुत रूपान्तरणों के साथ, सीमित शब्दों में परिचय की पंक्तियों के कलेवर में वेद-रहस्य का अभिनव आलेखन भी किया है। प्रथम पृष्ठ पर अंकित चित्रों की सुषमा में यह दीर्घकालीन अध्यवसाय 'समावर्तन' पत्रिका के दैवीय सम्मोहन का अनुभव है।

आचार्य (संस्कृत) एवं निदेशक
सिन्धिया प्राच्यविधा शोध प्रतिष्ठान
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
मो.नं.9302227019

अंतिम पृष्ठ पर उम्मीद जगाता 'अनंतिम'

निरंजन श्रोत्रिय

मुझे लगता है कि एक कथाकार के लिए कथेतर गद्य लिखना मुश्किल होता होगा। मुझे यह भी लगता है कि कवि के लिए गद्य लेखन आसान है, उसकी परीक्षा भी तो वहीं होती है न! फिर भी वह कथाकार हो या कवि, सभी से गद्य की अपेक्षा की जाती है। यह वाकई कठिन कार्य है, दुःसाध्य! यहाँ आपके पास विधागत चोर-दरवाजे नहीं होते बचकर निकलने के लिए। सीधे-सीधे दो टूक बात...आएँ-बाएँ-दाएँ... कुछ नहीं। मानो मुक्तिबोध छाती पर बैठ गए हों और अब तो 'पार्टनर' को अपनी 'पॉलिटिक्स' बताना ही पड़ेगी। प्रख्यात कहानीकार और 'समावर्तन' के प्रधान संपादक मुकेश वर्मा पिछले सौ अंकों से 'अनंतिम' स्तम्भ के जरिये यह चुनौती सफलता पूर्वक झेल रहे हैं। पत्रिका में इस स्तम्भ का प्लेसमेंट भी दिलचस्प है- पत्रिका का एकदम अंतिम पृष्ठ और नाम 'अनंतिम'!

एक सुविचारित तर्क पद्धति से गढ़े गए शब्दों की अनवरतता की उम्मीद! हर बार अपने समय-समाज से केवल नया ही नहीं मौजूँ विषय उठाना और उस पर एक पृष्ठ का लगभग संपादकीय आलेख लिखना बहुत सहज-आसान नहीं होता। एक नियमित स्तम्भ का तनाव क्या होता है, हर स्तम्भकार जानता है, मैं भी। मुकेश भाई इसके लिए अपने समकालीन समाज का कोई कोना नहीं छोड़ते। चाहे वह कथाकार शशांक की किताब के जरिये हमारे स्मृति खोते जाने की त्रासदी हो या सुशील सिद्धार्थ को नमन करते हुए हिन्दी में व्यंग्य की स्थिति, कर्नाटक के राजनीतिक परिदृश्य के जरिये समकालीन राजनीति के 'महाभारत' की विद्रूपता हो या फिर मनोरंजन इंडस्ट्री की फूहड़ता पर कठोर टिप्पणी। दोस्तों! यह तभी संभव हो पाता है जब आपके भीतर एक चेतस और संवेदित नागरिक लगातार अपनी उपस्थिति बनाए रखे। राजेन्द्र यादव और प्रभाकर श्रोत्रिय जैसे अनेक संपादकों ने यह कार्य अपनी पत्रिकाओं 'हंस', 'वागर्थ' और 'नया ज्ञानोदय' के जरिये किया है। बाद में जब हम इन्हें इकट्ठे (पुस्तकाकार) पढ़ते हैं तो लगता है कि अपने समय की नंगी सच्चाईयों से एक लम्बा साक्षात्कार कर रहे हैं। ये केवल कलमघसीट टाईप की फौरी टिप्पणियाँ नहीं होतीं, लेखक-संपादक के विवेक, संवेदन, चेतना और प्रतिबद्धता का दर्पण भी होती हैं। यह सुखद है कि इन दिनों आम पाठकों की रूचि भी भारी-भरकम, नीरस, उबाऊ अकादमिक लेखन के बजाए ऐसे छोटे मगर गहन-गंभीर सर्जनात्मक आलेखों में बढ़ी है। इसका कारण यह है कि एक आम पाठक को इनमें अपना अक्स दिखाई देता हैं, इस तरह ये अपने स्वरूप में ही जनवादी होती हैं। मैं जानता हूँ कि हर बार अलग-अलग विषयों/ अनुभवों पर लिखने के बावजूद एक भाषिक स्टीरियोटाइप में बंध जाने का खतरा स्तम्भकार पर हमेशा होता है लेकिन मुकेश भाई ने इसका सामना अपनी विशिष्ट शैली से किया है। हर बार 'अनंतिम' के जरिये मानो हम उनकी कोई नई कहानी पढ़रहे होते हैं जिसमें पाठक खुद एक पात्र है--''ऐसे सुन्दर आकाश में भारी भरकम घोटालों के भूतपूर्व और अभूतपूर्व घनघोर बादलों के झुण्ड छाए हैं कि लोग बेडमिन्टन के खेल के दर्शक की तरह दाएँ-बाएँ ही देखते रह जाते हैं। निर्णय में गर्दन कभी सीधी नहीं हो पाती, ऊँची करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता'' या फिर ''जिन पर नाज करने की आसन्न संभावनाएँ थीं ऐसे साहित्यकार या तो अतीतजीवी होकर ध्वस्त गाँव की बोरसी, ताख, ढिबरी, बैलगाड़ी, पेटियों की स्मृति में शतुरमुर्ग की तरह सिर घुसाए पैरों से आसमान को रोकने के लीलाभाव में मस्त हैं या बाजार द्वारा बुनियादी विमर्शों को कुत्सित किए जाने के खेल में ताल ठोंक कर जुटे हुए हैं।'' क्या ये दो उद्धरण मुकेश भाई की राजनीतिक समझ, सामाजिक सरोकार, समकालीन साहित्य की दशा-दिशा बताने के लिए नाकाफी हैं ' यदि स्तम्भ में 'विट' के साथ एक तीखी भाषा भी है तो उसका कारण भी तिक्त भाव बोध के साथ उसका उपजना है। ऐसा रचने के लिए आपको प्रतिपक्ष में आना होता है तमाम खतरों के साथ! मुकेश भाई यह तनाव भी झेलते हैं और चुनौती भी। हम जानते हैं कि 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' लेकिन अपने समकाल की हरिकथा को सुनने के लिए पाठक पहले उत्सुक रहता है और पढ़ने के बाद बेचैन। पाठक की यही बेचैनी मुकेश भाई की कमाई है। 'अनंतिम' के जरिये यह अपने समय की बेचैनी, बेबसी और बेहाली का भाषिक स्थानांतरण है। शुभकामनाएँ।

'विन्यास' कैण्ट रोड, लुशन बगीचा, गुना
मो.नं.9827007736

Incredible !ndia
Spot the Great White Pelican, the Little Egret,
the Indian Vulture, the Sand Greuse, Spotted Eagle, the Peregrine Falcon, Macqueen's Bustard,
and the famous Greater Flamingos in the wetlands of Gujarat.
Gujarat Tourism
Khushboo Gujarat Ki
Toll Free:1800 200 5080
www.gujarattourism.com

वक्रोक्ति-28

समावर्तन के अधबीच व्यंग्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ

विशेष सम्पादकद्वय
सूर्यकान्त नागर/श्रीराम दवे

व्यंग्याग्र

40

वक्राभिमुख : सूर्यकांत नागर

41

व्यंग्याग्र : ब्रजेश कानूनगो

आत्मकथ्य : वरिष्ठों से प्रोत्साहन और सीखने के अवसर सदैव मिलते रहे

व्यंग्य : आदमी और पुतला

कुछ लघुव्यंग्य कथाएँ

शिवानी शर्मा से ब्रजेश कानूनगो की बातचीत

48

व्यंग्य

शांतिलाल जैन

पढ़े-लिखे होने की मुसीबतें

48

व्यंग्य लघुकथा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

52

और अंत में

श्रीराम दवे

अवांछनीय को नहीं

व्यंग्यशीर्ष

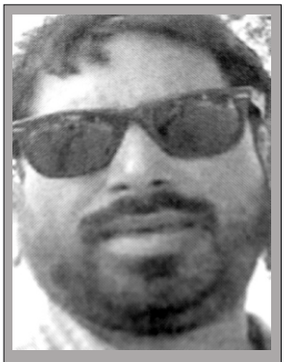

काजल कुमार के कार्टून
(49)

देवेन्द्र शर्मा के कार्टून
(50)

जवाहर चौधरी के कार्टून
(51)

एक नव प्रयोग

सूर्यकान्त नागर

हालाँकि ख्यात व्यंग्यकार सुशील सिद्धार्थ को गए थोड़ा ही अरसा हुआ, फिर भी उनका असामयिक निधन आज भी मन को कचोटता है। अनायास घटी दुर्घटना अधिक त्रासदायी होती है। शीर्ष की ओर उन्मुख जब वे कुछ और बेहतर करने की ओर अग्रसर थे, तभी काल के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे छीन लिया। ऐसा कुछ रहा इस रचनाकार में कि उसकी हस्ती मिटती नहीं। उनके लिए 'एक अच्छे लेखक का एक अच्छा इंसान होना' मात्र मुहावरा नहीं है! मित्रों की सदा सहायता करने वाले और सबका ध्यान रखने वाले व्यंग्यकार होने से पहले ही वे एक समर्थ आलोचक, स्तंभकार, लेखक और पत्रकार के रूप में अपना लोहा मनवा चुके थे। विनम्रता से, गर्वोक्ति के रूप में नहीं। वे राजकमल, ज्ञानोदय और किताबघर में संपादक रहे। 'वलेस' के माध्यम से उन्होंने व्यंग्य-लेखकों का एक अच्छा-खासा समूह खड़ा किया था। उनके व्यंग्य-संग्रह 'मालिश पुराण' और 'हाशिए का राग' की समीक्षा करने के अवसर मुझे मिले थे। विसंगत समाज की बुराइयों को सांकेतिक रूप में उजागर करने में वे सिद्धहस्त थे। 'व्यंग्य के पाँच स्वर' संपादित कृति में उन्होंने पाँच शीर्ष व्यंग्यकारों के काम को शिद्दत से रेखांकित किया था। उनके अमूल्य अवदान के मद्देनजर 'समावर्तन' ने 'वक्रोक्ति' में उन पर एकाग्र संयोजित किया था जो काफी चर्चित हुआ था। उनकी सहृदयता देखिए कि उन्होंने स्वप्रेरणा से मुझे कई संकलनों और पत्रिकाओं में स्थान दिलाया था।

चूँकि श्रद्धा और सद्भाव कभी बासी नहीं होते, समावर्तन परिवार की ओर से इस साहित्य-साधक को हार्दिक श्रद्धांजलि!

समावर्तन का यह 126वाँ अंक है और वक्रोक्ति का अट्ठाइसवाँ। इस दौरान देश के अट्ठाईस वरिष्ठ-कनिष्ठ कार्टूनिस्ट का वक्रोक्ति में समावेश कर उनके अवदान को रेखांकित किया गया। यह एक मुश्किल चुनौती थी क्योंकि व्यंग्यकारों की तुलना में व्यंग्य-चित्रकारों की संख्या काफी कम है। चुन-चुनकर यह काम करना पड़ा है। इस बार भरसक कोशिश के बाद भी व्यंग्य-चित्रकारों से वांछित सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी। इसकी एवज में इस बार हम तीन प्रतिभाशाली कार्टूनिस्ट के चुने हुए कार्टून दे रहे हैं।

काजल कुमार (दिल्ली) अत्यंत संभावनाशील कार्टूनिस्ट हैं। उनके विचारकपरक कार्टून अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छप रहे हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है उनकी विनम्रता। वे नाम और यश के पीछे नहीं भागते। समकालीन यथार्थ पर उनकी गहरी पकड़ है।

जवाहर चौधरी एक मान्य, वरिष्ठ व्यंग्यकार हैं, किन्तु कम लोगों को ज्ञात है कि वे एक अच्छे कार्टूनिस्ट भी हैं। वे बरसों से एक अखबार में व्यंग्य-चित्र बना रहे हैं। व्यंग्य-लेखन की तरह व्यंग्य-चित्रों के निर्माण में भी उनका हाथ सधा हुआ है।

और हमारे प्रिय जाने-माने कार्टूनिस्ट **देवेन्द्र शर्मा।** वक्रोक्ति को उनका सहयोग आरंभ से ही मिलता रहा है। उनकी व्यंग्य दृष्टि निराली है। उनके अनकहे में ही कहे गए की ताकत है। सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही विषयों पर उनकी बड़ी नजर है।

लम्बे अरसे से सृजनरत सुपरिचित व्यंग्यकार **ब्रजेश कानूनगो** के कृतित्व पर व्यंग्याग्र में इस बार आप पाएंगे सामग्री। उनके व्यंग्य ठंडे बलवे की तरह आक्रमण करते हैं। व्यंग्य से आरंभ कर वे कविता की और उन्मुख हो गए हैं, पर वहाँ भी व्यंग्य की अंतर्धारा मौजूद है। उनके व्यंग्य व्यक्ति के बजाए वृत्ति पर चोट करते हैं।

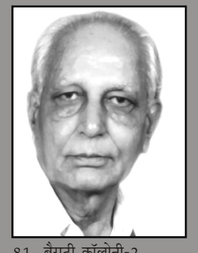

81, बैराठी कॉलोनी-2
इन्दौर-14 मो. 098938-10050

ब्रजेश कानूनगो

जन्म : 25 सितम्बर 1957 देवास, मध्य प्रदेश में।
शिक्षा : रसायन विज्ञान तथा हिन्दी साहित्य मे स्नातकोत्तर।
प्रकाशन : व्यंग्यसंग्रह : 'पुनः पधारें' (1995), 'सूत्रों के हवाले से' (2014), 'मेथी की भाजी और लोकतंत्र' (2017).
कविता संग्रह : 'इस गणराज्य में' (2014), 'कोहरे में सुबह' (2017) वसुधा की अनुषंगी कविता पुस्तिका 'धूल और धुएँ के परदे में' (1999), कविता पुस्तिका 'चिड़िया का सितार' (2017),
लघु कहानियों का संग्रह : 'रिंगटोन' (2016)
बाल साहित्य : बाल कथाओं की पुस्तक 'फूल शुभकामनाओं के' (2003) , बाल गीतों की पुस्तिका 'चाँद की सेहत' (2007) प्रकाशित।
उपन्यास : 'डेबिट क्रेडिट' (शीघ्र प्रकाश्य)
आलोचना : 'अनुगमन' लिखते,पढ़ते,सीखते हुए कुछ नोट्स (शीघ्र प्रकाश्य)
सम्मान : रमाकांत चौधरी स्मृति श्रेष्ठ लेखन सम्मान, प्रेमचंद सृजन पीठ उज्जैन से अभिनन्दन-पत्र, इंदौर जिला ग्रंथपाल संघ का कृति कुसुम सम्मान और पत्र लेखक मंच इंदौर का 'गक्खड-रत्न सम्मान', 'अभिव्यक्ति सम्मान' देवास, एवं अनेक सारस्वत सम्मान एवं अनेक संस्थागत प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।
सम्प्रति : सेवानिवृत्त बैंककर्मी, रचनात्मक लेखन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में संलग्न, तंगबस्तियों के गरीब बच्चों के लिए चलाए जाने वाले व्यक्तित्व विकास शिविरों मे सक्रिय सहयोग।

सम्पर्क : मनोरम, 503 ए,गोयल रिजेंसी,चमेली पार्क,
कनाडिया रोड, इन्दौर-452018
फोन -0731 2590469
मो.न. 09893944294 ई-मेल- bskanungo@gmail.com

वरिष्ठों से प्रोत्साहन और सीखने के अवसर सदैव मिलते रहे मुझे

ब्रजेश कानूनगो

यह मेरा सौभाग्य रहा कि जो वातावरण किसी संवेदनशील व्यक्ति को सृजन की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित करता है वह मुझे अपने बचपन में ही मिल सका। घर में पढ़ने लिखने का वातावरण था।, काका श्री यतीश कानूनगो विज्ञान, गणित के शिक्षक थे लेकिन साहित्य,चित्रकला आदि में उनकी गहरी रूचि थी। मैं उनका शिष्य भी था तो उंनसे खूब सीखने-समझने को मिला । उस जमाने में स्कूलों में लेखन की प्रतियोगिताएं बहुत हुआ करती थीं। भरपूर प्रोत्साहन मिलता, खूब भाग लेता। विजेता रहा तो हौसला बढ़ता गया। इसी पारिवारिक प्रोत्साहन से लिखने पढ़ने के संस्कारों के बीज शायद मेरे भीतर तभी से अंकुरित होने लगे थे।

प्रारम्भ में छोटी-छोटी बाल कविताएँ, कहानियां अपने आसपास की घटनाओं को देख-देख कर लिखता और उन्हें नईदुनिया अखबार के खास पन्ने 'बच्चों की दुनिया' में भेज देता। वे छपने लगीं तो और अधिक उत्साह से लिखने लगा। थोड़ा विचार संपन्न हुआ तो पढी हुई सामग्री और समाज में होने वाली घटनाओं, कठिनाइयों पर अपनी प्रतिक्रिया लिख डालता और 'संपादक के नाम पत्र' स्तम्भ में भेजने लगा। लगभग प्रति सप्ताह ही कोई न कोई पत्र प्रकाशित हो ही जाता था। उन दिनों अखबारों में सम्पादक के नाम लिखे पाठकों के पत्रों का बहुत महत्व हुआ करता था। विशेषकर नईदुनिया में छपे पत्रों का बड़ा वैचारिक और बौद्धिक महत्व होता था। पत्रों पर भी प्रतिक्रियात्मक पत्र छापते। कई लम्बी-लम्बी बहसें हुआ करती थीं। मेरा कुछ छप जाता तो मुहल्ले, स्कूल और कस्बें में बहुत प्यार और सम्मान मिलता।

मेरे लिखे प्रतिक्रियात्मक पत्रों में कभी-कभी थोड़ा हास्य और कटाक्ष का भाव रहा करता था। उन दिनों नईदुनिया में विख्यात पत्रकार श्री राजेन्द्र माथुर सम्पादक हुआ करते थे। नईदुनिया के पत्र स्तम्भ में अक्सर मेरे व्यंग्यात्मक लघु पत्र भी प्रकाशित होते रहते थे। मुझे एक दिन यह देखकर बहुत आश्चर्य मिश्रित खुशी हुई कि मेरे एक लघु व्यंग्य पत्र को उन्होंने 'अंतिम-पत्र' उपशीर्षक देते हुए ख्यात कार्टूनिस्ट श्री देवेन्द्र शर्मा के बनाए कार्टून के साथ बॉक्स में प्रकाशित कर नई शुरूआत कर दी। इसके बाद एक बार फिर चकित होने का मौका उन्होंने मुझे दिया। उन्होंने मेरे एक पत्र को लौटाते हुए टिप्पणी लिखी कि इसे आप थोड़ा विस्तार दें। मैंने उनके निर्देश के अनुसार अपने पत्र को विस्तार दिया। और उस रचना को उन्होंने नईदुनिया में पत्र से अलग स्वतन्त्र व्यंग्य लेख के रूप में प्रकाशित किया। यहाँ मैं इतना अवश्य बता देना चाहता हूँ कि श्री राजेन्द्र माथुर जी से मेरी कभी कोई मुलाकात नहीं हुई थी। इस बीच मेरी रचनाएँ धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सन्डे मेल , रविवार, वामा आदि में भी प्रकाशित होने लगी थीं।

नईदुनिया और अन्य अखबारों के स्तंभों में नियमित व्यंग्य लेखन में मेरी थोड़ी-थोड़ी पहचान बन रही थी। नईदुनिया में 'अधबीच' जैसे दिलचस्प और लोकप्रिय कॉलम की शुरूआत हो चुकी थी। परसाई जी के 'सुनो भाई साधु' और शरद जी के '...और शरद जोशी' के कॉलमों के विराम के बाद राजेन्द्र माथुर जी ने इस स्तम्भ की विवेकपूर्ण शुरूआत करके नए व्यंग्य रचनाकारों को प्रोत्साहित करने का काम किया था। इस कॉलम की शुरूआत के पहले दिन ही इसमे मेरा आलेख 'एटनबरो का गांधी और सफलता के देसी नुस्खे' दिनांक 21 अप्रैल 1981 को प्रकाशित हुआ । इसके बाद नवभारत टाइम्स के

'चौखट'। दैनिक हिन्दुस्तान के 'कुल्हड़ में हुल्हड़', जनसत्ता के रविवारीय आदि में नियमित व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित होती गईं। पहला व्यंग्य संग्रह वरिष्ठ कथाकार, व्यंग्यकार श्री सूर्यकांत नागर जी के प्रोत्साहन से दिशा प्रकाशन दिल्ली से 'पुनः पधारें' शीर्षक से सन 1995 में आया। यह संग्रह मैंने स्व. शरद जोशी और स्व राजेन्द्र माथुर जी को समर्पित किया है। नईदुनिया में श्री सूर्यकांत नागर जी जब व्यंग्य के साप्ताहिक कॉलम 'खुला खाता' का सम्पादन किया करते थे तब उनकी प्रेरणा से लम्बे कथात्मक व्यंग्य लेख लिखने में बहुत संतुष्टि का अहसास होने लगा था। मेरे लेखकीय विकास में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। जिन्हें पढ़-पढ़कर व्यंग्य विधा में लिखने की मुझे सच्ची प्रेरणा मिली उनमें स्व शरद जोशी और श्री हरिशंकर परसाई सबसे आगे हैं। जिन दिनों व्यंग्य के महापुरूष स्व शरद जोशी जी को पद्मश्री घोषित हुई थी तब विख्यात नवगीतकार प्रो नईम जी की कृपा से मैं भी एक ऐसे कार्यक्रम में था जहां शरद जी का सम्मान किया गया था। शाजापुर में लायंस क्लब के एक कार्यक्रम में चूंकि शरद जी से रचनाएं सुनी जानी थी सो डग्गे-मग्गे की तरह मुझे और उस समय शाजापुर महाविद्यालय में पदस्थ आलोचक एवं व्यंग्यकार प्रो.बी.एल.आच्छा जी को भी रचना पाठ का अवसर मिल गया। यह मेरा पहला मौका था जब मैंने किसी मंच से रचना पाठ किया था। देर रात शरद जी ने मुझे अपनी कार से देवास के मेरे घर छोड़ा था। यात्रा में मंच पर प्रभावी रचना पाठ के जो सूत्र उन्होंने मुझे समझाए थे वे मेरी अमूल्य निधि हैं।

स्व. शरद जोशी, गीतकार नईम के साथ ब्रजेश।

'इंदौर बैंक' में सहकर्मी के रूप में कुमार अम्बुज जैसे दोस्त मिल गए तो अपनी बातें कविता में कहने लग गया। वरिष्ठ ट्रेड यूनियन नेता श्री आलोक खरे का सानिध्य मिला तो प्रतिबद्धता और समाज सेवा में रचनाकार की भूमिका के सही अर्थ समझ में आये। रचना शिविरों में सर्वश्री भगवत रावत, चंद्रकांत देवताले जी और कमला प्रसाद जी का मार्ग दर्शन रचना शिविरों में मिला तो कविताओं को संवारने लग गया। समकालीन कविताओं का खूब अध्ययन किया। दो संग्रह भी आये। लेकिन व्यंग्य लेखन भी साथ-साथ चलता रहा। 'मेथी की भाजी और लोकतंत्र' (2017) व्यंग्य संग्रह के बाद अब शीघ्र ही 2018 में एक उपन्यास 'डेबिट क्रेडिट' आने वाला है जो सामाजिक, रचनात्मक और बैंकिंग जीवन की कुछ खास घटनाओं, स्मृतियों और प्रसंगों पर आधारित है।

रचना शिविरों में जो सीखा वह कार्यशालाओं में खुद सिखाने लग गया। इसलिए लिखते हुए सीखा, सिखाते हुए... सीखता रहा... अब भी सीख रहा हूँ। लेकिन एक बात जो मैं अपने लिखने में हमेशा बनाये रखने की कोशिश करता हूँ उनमें आदर्श जीवन मूल्य, समाजवादी और प्रगतिशील विचारधारा और मनुष्य के प्रति प्रतिबद्धता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए अपने आग्रह। इसी लेखकीय दृष्टि से मैं अपनी दुनिया और समाज को अभिव्यक्त करने की कोशिश में लगा रहता हूँ।

व्यंग्य

आदमी और पुतला

ब्रजेश कानूनगो

आदमी और पुतले में कुछ बुनियादी फर्क होते हैं। मसलन आदमी हाड-मांस का बना होता है और आदमी ही उसे जन्म भी देता है। पुतले को कोई पुतला जन्म नहीं देता। आदमी किसी भी पुतले को छू सकता है। उससे आँखें मिलाकर बातें करने की कोशिश कर सकता है। हर कोई ऐसा कर सकता है। मैं कर सकता हूँ, आप कर सकते हैं, प्रधान मंत्री भी कर सकते हैं। किसी पुतले को छूकर हम महसूस कर सकते हैं कि वह कितना संवेदनशील या मुलायम है , वह मिट्टी का बना है या धातु का। अगर मिट्टी का है तो थोड़ा-सा चख कर भी पता कर सकते हैं कि उसमें कितनी मिठास है या वह कितनी नमकीन मिट्टी का बना हुआ है,उसकी मिट्टी का स्वाद हमारे आँगन की मिट्टी से कितना मिलता है । अधिक रूचि हो तो पुतले की मिट्टी का रासायनिक विश्लेषण भी करा सकते हैं लेकिन पुतले को यह सुविधा नहीं होती। वह पर्यटक को स्पर्श नहीं कर सकता। आदमी की प्रकृति में कोई दिलचस्पी लेना उसके बस में नहीं होता। पुतले के लिए पर्यटक मात्र पर्यटक होता है, चाहे वह किसी भी मिट्टी का बना हो। पुतला हमसे आँखें नहीं मिला सकता । उसकी निगाहें बस अतीत में ताकती रहती है। वर्तमान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। हम अतीत को अपने हिसाब से देख सकते हैं सुन्दर पर पलकें बिछा सकते हैं तो खराब से नजरें चुरा भी सकते हैं।

पुतला शौकीन तबीयत का नहीं होता। जो एक बार पहना दिया सो वह जीवन पर्यंत पहना रहता है। जो उसके हाथ में थमा दिया वह अंत तक थामे रहता है। आदमी के साथ ऐसा नहीं है। वह रंगबाज होता है। हर रंग में रंग जाता है। जैसा देश-वैसा भेष में विश्वास करने वाला होता है । पूरी स्वतंत्रता है उसे। वह चाहे तो लूंगी पहन ले। टाई लगा ले। चप्पल, सैंडल जूते कुछ भी पहन सकता है। चूडीदार,जैकेट, कुर्ता पायजामा अथवा सूट-बूट धारण करके भी आदमी देश-विदेश कहीं के भी पुतलों से बात करने जा सकता है। मगर पुतला बहुत विवश होता है। धोती लाठी लिए बरसों बरस से कड़ी धूप में, बारिश में भीगता चौराहे पर खडा अतीत में खोया रहता है। उस पर कोई छाता नहीं तानता , वह कभी धूप का चश्मा नहीं लगा सकता। आदमी धूप का चश्मा लगा कर प्रोटोकाल तक का उलंघन बे-झिझक कर सकता है।

एक महान योद्धा तलवार लिए घोड़े पर बरसों से एक ही मुद्रा में बैठा है। एक पुतला युगों से एक ही दिशा में अपनी अंगुली उठाए राह दिखा रहा है। उसे इस बात की चिंता नहीं है कि अब लोग किसी और रास्ते पर चल पड़े हैं। चिंता तो आदमी को होती है। हजारों चिंताओं से घिरा है बेचारा आदमी। करे तो क्या करे। खुद की चिंता, परिवार की चिंता, समाज की चिंता, देश और दुनिया की चिंता। चिंताएं हैं तो आदमी सक्रीय बना रहता है वरना वह भी कब का पुतला बन गया होता। यही चिंताएं उससे भाग-दौड़ करवाती रहती हैं। आम आदमी तो बेचारा परेशान रहता ही है। देश की चिंता पीएम तक से बहुत भाग-दौड़ करवा देती है।

बहरहाल, सबसे बड़ी चिंता तो यह है कि पुतलों के प्रति लोगों का अनुराग दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। पुतलों को स्थापित किये जाने की ख्वाहिश ऐसी बढ़रही है कि जीते-जी लोगों के पुतले संग्रहालयों से लेकर चौराहों तक लगाए जाने लगे हैं। पुतलों के साथ खुद व्यक्ति अपना सेल्फी उतारने में सुख महसूस करने लगा है। पुतले में रूपांतरित हो कर ही शायद चिताओं से मुक्ति का रास्ता खोजा जाना आसान है। जिन्हें आदमी होना चाहिए वे धीरे-धीरे पुतलों में बदलते जा रहे हैं।

कुछ लघु व्यंग्य कथाएँ

ब्रजेश कानूनगो

व्यंजना

'आज चड्डी-बनियान गिरोह पर जो लेख पढ़ा आपका , उसमें आप अपराधी के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं।' साधुरामजी ने आपत्ति जताई।

'वह व्यंग्य लेख है मित्र, उन फटेहाल चोरों के पक्ष में नहीं है जो रात में छोटी मोटी चोरियां करते हैं। बल्कि पूरी टीम वर्क के साथ दिन के उजाले में देश को लूटने वाले सफेदपोश बड़े अपराधियों पर व्यंजना और लक्षणा शब्द शक्तियों में प्रहार करने की कोशिश की गई है।' व्यंग्यकार ने सफाई देते हुए कहा।

'किंतु ऐसा स्पष्टतः समझ में आता नहीं लेख पढ़कर।' साधुरामजी बोले।

'वह तो समझना पड़ता है मित्र। साहित्य में बहुत से अव्यक्त को पढ़ना आना चाहिए।' व्यंग्यकार ने कहा।

'फिर भी,आपको स्पष्ट लिखना चाहिए कि आप सफेदपोश लुटेरों पर प्रहार कर रहे हैं।' साधुरामजी अपनी बात पर अड़े रहे।

'साहित्यिक विधा में ऐसा नहीं होता मित्र, पत्थर फेंकने और लाठी चलाने से अलग होता है रचनात्मक प्रहार।...और अभिधा में लिखी रचना तो फिर एक रिपोर्टिंग में बदल जाती है। व्यंजना, लक्षणा शक्तियां व्यंग्य के खास औजार होते हैं।' व्यंग्यकार ने ज्ञान बांटा।

'नहीं, यह तो ठीक नहीं है बिल्कुल। स्वीकार्य नहीं हमें। ये शक्तियां तो बहुत अराजक और आतंकी लगती हैं अपने आचरण से। इन्हें तुरंत निष्काषित करिये साहित्य से। अन्यथा हमें कोई कानून लाना पड़ेगा।' कहते हुए साधुरामजी नें अभिधा शक्ति में देशभक्ति से परिपूर्ण एक जोशीले नारे का उद्घोष किया और पार्टी दफ्तर को निकल लिए।

अभिमत

उनकी कविताओं का नया संग्रह आया तो साधुरामजी बधाई देते हुए बोले- ' बढ़िया है किताब आपकी।'

'धन्यवाद, कुछ सामग्री पर भी कहिए!' उन्होंने खुश होकर कहा।

'सामग्री भी बढ़िया है, कागज की क्वालिटी बेहतर है।' साधुरामजी बोले।

'मेरा मतलब है, कविताओं पर अपना अभिमत व्यक्त कीजिये।'

व्यंग्यकार शशांक दुबे की व्यंग्य कृति के लोकार्पण अवसर पर ब्रजेश जी।

'मेरे कुछ कहने से क्या होगा' फ्लैप पर जो वरिष्ठ कवि ने व्यक्त कर दिया है उससे बेहतर भला मैं और आगे क्या कुछ कह पाऊंगा!' साधुरामजी ने कहा।

'अरे ,नहीं मित्र! आप मेरी कविताओं पर अपने विचार रखेंगे तो वह मौलिक होंगे।'

'ऐसा क्यों' क्या फ्लैप पर वरिष्ठ कवि का लिखा ब्लर्ब मौलिक नहीं है''

'जी, वह मैंने स्वयं ही लिख लिया था,उनके नाम से।'

'अरे भाई तो जो पिछले दिनों अखबार में समीक्षा आई है,उसमें भी तो वरिष्ठ आलोचक ने बड़ी प्रशंसा की है, तुम्हारी कविताओं की।'

'अब जाने दीजिए!' उन्होंने निराश होकर कहा 'आपसे नहीं होगा, मैं ही लिख लेता हूँ आपका अभिमत।'

विवेक

साधुरामजी ने अपनी लायब्रेरी की कविता संग्रहों की सारी पुस्तकें कबाड़ी को बेच दीं तो मैंने पूछा- गद्य की क्यों नहीं बेची'

उन्होंने स्पष्टीकरण दिया- गद्य की किताब की बजाय,कविता की किताब का पन्ना स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक रहता है।

'क्या मतलब' मैं भौचक्क रह गया।

'कबाड़ी से किताबों की रद्दी मंगू चाटवाला सहर्ष खरीदता है, समोसे पर कम शब्दों की स्याही चिपकती है, जिससे बीमारी की संभावना का प्रतिशत भी जाता है।'

ब्रजेश कानूनगो की व्यंग्य रचनाओं में निहित हैं

चाक्षुक संवेदना और यथार्थ के प्रश्न

भुवनेश्वर उपाध्याय

समाज में उपस्थित स्वार्थों ,जड़ताओं और धूर्तताओं को खत्म भले ही न कर पाये मगर एक अच्छा व्यंग्य सही और गलत के मध्य फर्क तो पैदा कर ही देता है। जरा सा साहस और निष्पक्षता बुराई को नंगा कर दुनिया के सामने खड़ा कर देती है और यही व्यंग्य लेखन का उद्देश्य है।

व्यंग्य तो वो शाब्दिक शैली है जो आदमी के आक्रोश और विरोध को लक्ष्य तक पहुंचाने का सामर्थ्य रखती है परंतु जब लेखक अपने लेखन के उद्देश्य से समझौता करता है या स्वयं को स्थापित करने की कोशिश केन्द्रित होकर करता है तो उसकी छवि और शब्दों की धार दोनों भोथरी हो जाती है केवल कलात्मकता दिखाई पड़ती है जो व्यंग्य का मूल उद्देश्य तो नहीं हो सकती। व्यंग्य का उद्देश्य इससे कहीं अधिक बड़ा और सकारात्मक है।

आज के दौर में व्यंग्य के उद्देश्य तो बदले ही हैं साथ ही उसकी मारक क्षमता भी तमाम व्यवसायिक समीकरणों, शब्दों की गणना और जगह के लिए जद्दोजहद करते हुए रचनकारों की मनोदशा के नीचे दब के रह गई। आज के दौर में ऐसे व्यंग्यकारों की मांग रहती है जो तात्कालिक घटनाक्रम और जरूरत के हिसाब से अपनी सोच और लेखन का आकार बदल ले। यानि की व्यंग्य का मास प्रोडक्शन, खैर....।

व्यंग्य को व्यंग्यकारों द्वारा साहित्य में स्थापित करने की जद्दोजहद ने व्यंग्य का स्वरूप ही बदल डाला। भाषायी वक्रता और शिल्प कौशल ने कुछ हद तक इसमें सफलता भी दिलाई मगर उद्देश्य से भटककर अधिकांश व्यंग्यकारों ने एक अलग ही छवि बना ली। लक्ष्य व्यापक होते रहे और तीर भौथरे। फिर भी नये रूप में गद्य व्यंग्य ने खूब गति पकड़ी और एक मुकाम हासिल किया।

हिंदी गद्य व्यंग्य लेखन में परसाई, जोशी आदि ने जो साहित्यिक जमीन तैयार की थी उस पर ब्रजेश कानूनगो भी अपनी दावेदारी ठोकते नजर आते हैं जो अखबारों , पत्रिकाओं से होते हुये दो व्यंग्य संग्रहों तक फैली है।

लेखक की चाक्षुष संवेदनात्मक दृष्टि और सुधारात्मक सोच मिलकर लेखन को व्यंग्यात्मक बना देती हैं और लेखन को सहज। जीवन की दुश्वारियाँ लेखक को तोड़ती नहीं हैं बल्कि उन्हें प्रेरित भी करती है परिणाम

कथाकार व्यंग्यकार सूर्यकांत नागर के हाथों सम्मानित होते हुए ब्रजेश जी।

व्यंग्यकार प्रेम जन्मेजय और कहानीकार चित्रकार प्रभु जोशी के साथ ब्रजेश जी।

स्वरूप उनके समग्र लेखन में व्यंग्य की उपस्थिति देखने को मिलती है।

जीवन की तमाम जटिलताओं और बिडंबनाओं के मध्य एक आम आदमी को परिभाषित करते और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सामाजिक सड़न की मौजूदगी को चिन्हित करते ब्रजेश कानूनगो के व्यंग्य छोटे और व्यवस्थित होने के साथ साथ सहज और प्रभावशाली भी प्रतीत होते हैं। मानवीय मनोविज्ञान और लेखक की ये सोच कि जो मैंने समझा, भोगा और जाना है वो सभी का प्रतिनिधित्व करेगा, व्यंग्य को ज्यादा सरल मगर उस आकार में ढ़ाल देता है कि पाठक ये कहने पर मजबूर हो जाये कि ये सही है। सहजता में पठनीयता स्वतः ही आ जाती है। ये ब्रजेश कानूनगो की एक व्यंग्यकार के रूप में सफलता ही है। उनके व्यंग्य न ज्यादा लेखकीय कुशलता का आग्रह करते हैं और न सीधे सपाट होने के दोष को ढोते हैं।

ब्रजेश कानूनगो के व्यंग्य छोटे अखबारी कॉलमों और पत्रिकाओं की शब्द सीमाओं में बंधे होने के बावजूद भी अधिकांश व्यंग्य अपनी बात पूरी करते दिखाई देते हैं और अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। तात्कालिक घटनाक्रम और व्यक्तिगत प्रहारों से बचते हुए उनका व्यंग्य लेखन मानवीय सोच और उपस्थित हालातों की ऐसी कड़ियाँ जोड़ता है जो उनके लेखन को जीवंत बना देता है। उनकी दृष्टि मानवीय जीवन के अनदेखे कोनों को टटोलने में सक्षम है।

धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि में छपने के बाद बिना किसी भूमिका और सम्मति के 1995 में ''पुनः पधारें '' व्यंग्य संग्रह के साथ ब्रजेश कानूनगो साहित्यिक परिक्षेत्र में दस्तक देते हैं जो लेखक के आत्मविश्वास और अपने लेखन के प्रति आश्वस्त होने का परिचायक है। लेखक बड़े नामों और शोहरतों के पीछे भागता नजर नहीं आता। वह धैर्य और संजीदगी से कार्य करता है। इसीलिए दूसरा व्यंग्य संग्रह लम्बे अंतराल के बाद 2014 में ''सूत्रों के हवाले से'' आता है और फिर ''रिंगटोन '' के रूप में लघुकथा संग्रह जो उनके व्यंग्य और लेखन परंपरा को नये स्वरूप में गति देता है।

दरअसल ये दौर जटिल और संक्रमण युक्त है जहाँ व्यंग्य ही नहीं तमाम रचनात्मक लेखन अपने व्यक्तिगत स्वार्थपरता और वादजन्य निकषों द्वारा खारिज किए जा रहे हैं या फिर राई को पहाड़ साबित किया जा रहा है। ऐसे दौर

में स्वयं के लिए तमाम प्रपंचों से दूर रहकर जगह बनाना कठिन प्रतीत होत है। मगर धीरे धीरे ही सही ब्रजेश कानूनगो के व्यंग्य ऐसा कुछ करते दिख रहे हैं।

सामान्य और सहज भाषा में हालातों, धूर्तताओं, और व्यवस्थागत बिडम्बनाओं को सहज मानवीय मनोविज्ञान के साथ व्यंग्यात्मक शैली में शाब्दिक रूप देने का हुनर लेखक को आता है इसीलिए व्यंग्यों में पठनीयता का अभाव नहीं खटकता है। व्यंग्यों के विषय छोटी छोटी घटनाओं , भावनाओं , मानवीय कमजोरियों और सहज संकोचों से उपजे हालातों से उठाये हैं जो गुदगुदी के साथ चुभन भी पैदा करते हैं, और भाषा नये बिम्ब रचती है। जैसे व्यंग्य 'सफर में समाधी' में - ''हम कंडक्टर की आंखों में आंखें डालकर मुस्कुराने लगे इस आशा से कि शायद दुष्यंत को शकुन्तला की याद आ जाये , लेकिन दुष्यंत पुनः अपनी सीट पर जा बैठा और बस से नियमित सफर करने वाली शकुन्तलाओं से गुट निरपेक्ष चर्चा करने लगा।''

लेखक हर समस्या को इतनी सरलता से पटल पर रखता है कि रचना सहज ग्राह्य हो जाती है। 'समस्याओं का रामबाण नुस्खा' में शासन की कर नीति और जनता की लाचारगी का चित्रण किया है। वहीं 'गणेश जी पहुंचे कर्जा लेने' में अफसरों बाबुओं की कार्य प्रणाली और दोगलेपन पर तंज कसते नजर आते हैं, और 'तुम कम करो , हम काम करें' में राजनेताओं के अविवेकपूर्ण रवैये, वोट की राजनीति के बीच पिसते और मानसिक यंत्रणा से रूबरू होते कर्मचारियों की यथास्थिति को चित्रित कर सामूहिक मानसिकता को उजागर करते हैं।

लेखन अपने समय और मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है और छोटे बदलावों को चिन्हित करता है। लोकरूचि को महत्वपूर्ण मानकर लाभ कमाने वाले और मूल्यों ,परंपराओं ,संस्कारों की अवहेलना करने वालों को लेखक का व्यंग्यकार कुछ इस तरह चुटीले अंदाज में 'लोकरूचि काव्य में अलंकारिक प्रयोग' में कुछ सुझाव देता है। और जीवन में फिल्मों के बढ़ते प्रभाव को दर्शाता है कि सम्हाल जाओ वरना कहीं पछताना न पड़े। स्लोगनों नारों से रंगीं दीवारें हों या कुछ और...कुछ नहीं होने वाला। 'पुनः पधारें' में इस तरह लेखक अपनी बात रखता है। कहीं कहीं रचनाओं में सरलीकरण के कारण नयेपन की कमी नजर आती है और रचनागत चमक फीकी पड़ती दिखती है परंतु पठनीयता इसे सम्हाल लेती है इसीलिए व्यंग्यकार अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करता है।

दूसरे संग्रह ''सूत्रों के हवाले से'' की बात करें तो समय का अंतराल और परिपक्वता स्पष्ट नजर आती है। भाषा परिष्कृत हो और बेहतर लगती है। परंतु यदा कदा 'सूत्रों के हवाले से' जैसे व्यंग्यों में कुछ और बेहतरी की अपेक्षा कर सकते हैं। उनके व्यंग्यों के कथ्य प्रभावित करते हैं जो सही समय पर सही मुद्दा उठाते दिखते हैं। एक व्यंग्यकार के रूप में ब्रजेश कानूनगो का केवल अखबारी लेखन तक सिमटकर रह जाना कही न कहीं खलता है मगर जो वे 'सूत्रों के हवाले से' की भूमिका में स्वीकारते हैं उसे उनकी संतुष्टि मानकर संतोष किया जा सकता है।

केवल व्यंग्य ही नहीं उनकी लघुकथायें भी प्रभावित करती हैं जिसमें व्यंग्य की उपस्थिति और भाषाई वक्रता उनके लेखकीय पैनेपन को और धार देती है । इन लघुकथाओं में लेखक और निखरकर सामने आता है। जो लघुकथाओं के रोचक ,मार्मिक या फिर व्यंग्यात्मक अंत के रूप में परिलक्षित होता है । इन लघुकथाओं में लेखक केवल व्यंग्य लिखने के दबाव से मुक्त दिखा मगर व्यंग्य अप्रत्यक्ष रूप से कुछ अधिक करूणामय होकर उभरा। लेखक का संवेदनशील हृदय कुछ इसी के अनुरूप विषयों को सहज आक्रोश के साथ कथात्मक रूप देता रहा।

रचनापाठ के दौरान ब्रजेश कानूनगो।

लेखक ने भावनात्मक मुद्दे तो उठाये ही राजनैतिक गिरावट और धार्मिक पाखंड में डूबी स्वार्थपरता की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है जो 'रंग बेरंग' के कपड़ों के थानों के माध्यम से दंगों की भयानकता पर तीक्ष्ण कटाक्ष करता है। वहीं 'करतब' और 'लूट' जैसी रचना लोगों के भीतर छीजती संवेदनशीलता और खत्म होती आदमियत की ओर एक इशारा भर है।

रचना में व्यंग्य का अप्रस्तुत विधान और शाब्दिक तात्पर्य भी रचना को समृद्ध करते हुए उत्कृष्टता प्रदान करता है। साथ ही उसकी पठनीयता और रोचकता में भी विस्तार कर देता है। व्यवहारिक हालातों से परे अधूरी सोच पर टिके बालश्रम के कानूनों और उनके क्रियान्वयन के झमेलों और उसके परिणामों की प्रभावों की तस्वीर खीचतीं रचना 'तस्वीर' व्यवस्था पर सीधा प्रहार करती है। कहानी 'समाधि' अमीर और गरीब के बीच एक ऐसी खाई का चित्रण है जिसे कभी पाटा नहीं जा सका। रहमान कुत्ते की समाधि को भीगने से बचाने के लिए लगा रहता है और उसका तिनकों का घर बह जाता है। आदमियत पर धन के हावी रहने वाली सोच पर लेखक का कटाक्ष कहानी के अंत में उभर आता है।

''कोई चार घंटों में अपना काम खत्म करके वह घर पहुंचा तो उसकी आँखें फटी रह गईं। नाले के किनारे बनी उसकी झोपड़ी तेज बहाव में बह गई थी। यास्मिन किसी तरह नाले के बीचों बीच मलबे पर खड़ी ठिठुरती बकरी को बचाने के प्रयास में जुटी थी।''

कुल मिलाकर ब्रजेश कानूनगो के समग्र लेखन को देखते हुए ये कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी कलम से अपने लिए एक जमीन तैयार की है जो उनकी अपनी है। ये न जरूरी है और न उचित कि उन्हें परसाई, जोशी या सुशील सिद्धार्थ और सुरेश कांत जैसे लेखकों के समक्ष खड़ा किया जाये बल्कि उनके सहज और पठनीय लेखन का स्वागत किया जाये जिससे व्यंग्य को सकारात्मकता से भरा जा सके । उन्हें शुभकामनाएं...

डबल गंज सेवढ़ा, जिला-दतिया,
मध्यप्रदेश -475682
मोबाइल- 07509621374

''चाहता हूँ अपने लिखे से पाठक के मन में टीस उठे''

व्यंग्यकार ब्रजेश कानूनगो से शिवानी शर्मा की बातचीत

शिवानी : आमतौर पर किसी भी व्यक्ति के अनेक शौक और रूचियाँ होती है. लेकिन आपने लेखन को ही प्रमुखता दी, आखिर वह कौनसी वजह रही जिसके कारण आपने साहित्य सृजन को चुना. आपको कब महसूस हुआ कि आपका रूझान साहित्य की ओर है और किस तरह से इसे अपने जीवन का हिस्सा बनाया?

ब्र.का. : बहुत सहज सवाल आपने किया है. बहुत से लोग पूछते रहते हैं कि आप लिखते क्यों हैं? तो मुझे बहुत सारे उत्तर सूझने लगते हैं। अगर चाहूं तो ऐसा उत्तर भी दे सकता हूँ जिससे यह सिद्ध हो कि मैं बहुत प्रबुद्ध और दुनिया को दिशा देने वाला, बदलाव और क्रान्ति की कलम(मशाल) थामे कोई महापुरूष हूँ। लेकिन ऐसा कहते और करते रहने वाले सचमुच के ईमानदार रचनाकारों तक को बहुत गंभीरता से नहीं लिया गया है तो मैं एक अदना सा पढ़ने लिखने वाला किस खेत की मूली हो सकता हूँ।

हाँ, जो कुछ मैं अपने लिखने के कारणों के बारे में थोड़ा बहुत सोचता हूँ तो कुछ चीजें साफ नजर आती हैं। जो मैं ईमानदारी से कहने की कोशिश जरूर कर सकता हूँ ।

घर में पढ़ने लिखने का वातावरण बचपन से ही मिला, काकाश्री विज्ञान,गणित के शिक्षक थे लेकिन साहित्य,चित्रकला आदि में गहरी रूचि थी।मैं उनका शिष्य भी था तो खूब प्रोत्साहन मिलता रहा ।उस जमाने में स्कूलों में लेखन की प्रतियोगिताएं हुआ करती। भरपूर प्रोत्साहन मिलता, खूब भाग लेता। विजेता रहा तो हौसला बढ़ता गया, लिखने की आदत सी लग गयी। लिखने की सबसे बड़ी वजह यही प्रोत्साहन और लिखने की आदत और संस्कार जीवन में आ जाने की हो सकती है।

मैं बचपन में थोड़ा भीरू किस्म का डरपोक बालक था। अपने को रेखांकित करने का लिखने-पढ़ने के अलावा अन्य शौर्य कार्य मेरे बस में नहीं था। सो रचनाएं लिखता और उन्हें खूब छपवाता। बच्चों के पृष्ठ और संपादक के नाम पत्र ही लिख डालता। छपते तो मुहल्ले, स्कूल और कस्बें में बहुत प्यार और सम्मान मिलता । छपने और तुरन्त सम्मान अर्जित करने की आकांक्षा की भी लत लग गयी। जो अब तक कायम है। तो इस लत की आपूर्ति आज भी लिखकर ही की जा सकती है। जब मैं कक्षा छः का छात्र था, तब से ही बच्चों के कॉलमों में कुछ न कुछ भेजता रहा और वहां छपने से जो प्रोत्साहन मिला वह बहुत महत्वपूर्ण था. जिसके कारण जो संस्कार आये या यों कहें जो आदत और लत पड़ गयी उसके चलते अखबार या पत्रिका जैसे भी जहां भी यह अवसर मुझे देते हैं, मैं अपनी बात तदनुसार उसी विधा में और लोगों तक पहुँच जाए इस प्रयास जैसे कहानी,कविता,व्यंग्य,पत्र,लघुकथा आदि जो कुछ सम्भव हो अपने को उसी में ढाल लेता हूँ। लगातार लिखते रहकर सक्रीय लेखक बना रहना चाहता हूँ।

अपने भीतर के जंगल में नाचे विचार मोर को मैं सबको दिखाना चाहता हूँ। इसलिए लिखता हूँ। अब फेसबुक और वाट्सएप पर भी लिखता हूँ। ब्लॉग पर लिखता हूँ और शेयर करता हूँ।इस मयूर नृत्य को बड़ा रंगमंच मिल गया इस नई टेक्नोलॉजी में। किसी खास महत्वाकांक्षा के तहत नहीं लिखता।सम्मान और पुरस्कार के लिए नहीं लिखता।अपनी आदत,और मन की बात को अभिव्यक्त करने के लिए लिखता हूँ।

आपने अनेक विधाओं में सृजन किया है, ऐसा कैसे कर पाए आप? सामान्यतः रचनाकार पहले कविता लिखता है फिर गद्य की ओर जाता है. लेकिन आप गद्य लिखते हुए कविता की ओर आये..

कुछ ऐसी स्थितियां बनती गयी। बच्चों के लिए कविताएँ, कहानियां लिखते हुए अखबारों में वैचारिक पत्र और व्यंग्य लिखने से ही मेरी शुरूआत हुई थी। बाद में अपने बच्चों के जीवन से संवेदित होकर रचनाएं लिखीं। नईदुनिया, धर्मयुग आदि में शरद जोशी और परसाई जी की रचनाओं से प्रेरित हो कर व्यंग्य लिखे, अखबारों में मंच मिला तो कॉलमों में लिखा, खूब प्रकाशन हुआ।

सन 1994 के बाद हमारे संस्थान में ही कुमार अम्बुज जैसे दोस्त मिल गए तो अपनी बातें कविता में कहने लग गया। 'प्राची' नामक प्रगतिशील विचारों वाली साहित्यिक संस्था बनाई. साहित्य की समझ बढ़ती गयी। प्रलेस और प्राची के रचना शिविरों में सर्वश्री भगवत रावत, चंद्रकांत देवताले और कमला प्रसाद जी का मार्ग दर्शन मिला तो कविताओं को लिखने संवारने में लग गया. रचना शिविरों में जो सीखा वह कार्यशालाओं में खुद सिखाने लग गया। इसलिए लिखते हुए सीखा, सिखाते हुए लिखता रहा। वाट्स एप समूहों में जो विषय मिला उस पर लिखा, विमर्श के लिए लिखा, अब भी यही हो रहा है। लिखने के अलावा करूं तो क्या करूं।

लिखते वक्त आपके मानस में क्या खास बातें रहती हैं?

एक बात जो मैं अपने लिखने में हमेशा बनाये रखने की कोशिश करता हूँ उनमें आदर्श जीवन मूल्य, समाजवादी, प्रगतिशील विचारधारा मनुष्य के प्रति प्रतिबद्धता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए अपने आग्रह। इसी लेखकीय दृष्टि से मैं अपनी दुनिया और समाज को अभिव्यक्त करने की कोशिश में लिखता रहता हूँ। मेरे लिखे से किसी का मन बहल जाएँ, आंसू की कुछ बूँदें छलक पढ़ें, दिल में कुछ थोड़ी सी टीस उठ जाए,कोई ठहाका लगा दे, प्रेम की बरसात होने लगे भीतर, जो थोड़ा बहुत लिखता हूँ वह और ठीक से लिखने लगूँ और क्या चाहिए।

सेवानिवृत्ति के पहले और बाद में आपकी कैसी व्यस्तताएं रहीं है? कृपया बताएं!

लगभग 21 वर्ष की आयु में मैंने रसायन विज्ञान की मास्टर डिग्री लेकर स्टेट बैंक ऑफ इंदौर (अब एसबीआई) में नौकरी ज्वाइन की थी. बाद में बैंकिंग के विभिन्न क्षेत्रों में सेवाएं देने के साथ बैंक की गृह पत्रिका 'इंदौर बैंक परिवार' के सम्पादन का भी दायित्व भी कोई दस वर्षों तक निभाने का अवसर मिला. बैंक और बैंक यूनियन के समाज सेवा और साहित्यिक प्रकोष्ठों के माध्यम से भी बहुत से नवोन्मेष कार्य करने का अवसर मिलता रहा. सेवा निवृत्ति के बाद भी

यही व्यस्तताएं हैं. सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों में पूर्णतः संलग्न और व्यस्त हूँ. वरिष्ठ सामाजिक और ट्रेड युनियन कार्यकर्ता श्री आलोक खरे के साथ समाज सेवा प्रकोष्ठ के माध्यम से तंग बस्ती के निर्धन बालक बालिकाओं और महिलाओं के विकास और उन्नति के लिए सक्रीय सहयोग करते रहते हैं.

आपके कार्यों में परिवार का सहयोग किस तरह है?

परिवार के सहयोग के बिना तो कुछ भी संभव नहीं. मेरी रचना के प्रकाशन के बाद सबसे पहला फोन घर से मेरी माँ का आता था. उनके फोन से ही मेरी नींद खुलती थी. अब वे नहीं हैं. पिछले वर्ष 2017 की नवम्बर 17 से अब वह खास फोन नहीं आता। पूरा परिवार बल्कि कुटुंब के सारे सदस्य मेरे लिखने पढ़ने से बहुत खुश हो जाते हैं..स्नेह देते हैं. अब तो बेटी भी लिखने लगी है कविताएँ और लेख.. बेटा वर्ष में दो कविताएँ जरूर लिखता है...पोता भारत प्रवास पर अपने अनुभव डायरी में दर्ज करने लगा है.. पत्नी के योगदान को तो मैं सर्वोपरि मानता हूँ, सबसे पहली पाठक,श्रोता और आलोचक वहीं हैं. मेरे लिखने का सम्मान है घर में.. और यह परम्परा आगे भी बढ़ती रहे-यही चाहता भी हूँ।

आपकी साहित्यिक उपलब्धियां, सम्मान?

मेरे लिखे को पाठक लगातार पढ़रहे हैं, पसंद करते हैं यह सबसे बड़ी उपलब्धि है. यों बताने को बाल साहित्य के दो संग्रह, तीन व्यंग्य संग्रह, एक कहानी संग्रह. और चार कविता संग्रह (इनमें दो कविता पुस्तिकाएं शामिल) प्रकाशित हैं, एक उपन्यास भी शीघ्र आने वाला है. बैंक और संस्थाओं की प्रतियोगिताओं के पुरस्कारों के अतिरिक्त रमाकांत चौधरी सम्मान, प्रेमचंद सृजन पीठ उज्जैन से अभिनन्दन-पत्र, दो बार इंदौर जिला ग्रंथपाल संघ का कृति कुसुम सम्मान और पत्र लेखक मंच इंदौर का 'गक्खड-रत्न', 'अभिव्यक्ति सम्मान' देवास आदि के अतिरिक्त कोई नामी-गिरामी पदक मेरे हिस्से में आने का मौका आया नहीं है अभी तक।

भविष्य की योजनाएं?

वित्तीय मुद्दों तथा बैंकों के विलय को लेकर अपने अनुभवों पर एक उपन्यास लिखने का बहुत मन है. तंग बस्ती के बच्चों के विकास और समाज में उनकी स्थिति पर भी कुछ लिखने का विचार है. व्यंग्य और कविताएँ तो जीवन पर्यंत लिखते रहना ही है.

नई पीढी के रचनाकारों को कोई सन्देश?

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व सकारात्मक तथा ऋणात्मक बिंदुओं से मिलकर बनाता है. अपने अंदर के ऐसे सकारात्मक बिंदुओं को पहचानकर उनको यदि और विकसित किया जाए तो हमारी रचनात्मकता को बढ़ावा अवश्य मिलता है। अच्छे लेखन के लिए गंभीर रचनाकार सदैव लंबी दौड लगाते रहने के लिए उद्यत बना रहता हैजिसमे उसके अपने तथा समकालीन समाज के परिवेश और स्थितियों के साथ साथ भाषा,, शिल्प,कथ्य और संप्रेषणीयता की चुनौतियाँ तो होती ही हैं लेकिन विचारधारा,प्रतिबद्धता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बनाए रखना भी गंभीर लेखन की महत्वपूर्ण चुनौती रहती है.

अपने युवा रचनाकार साथियों को इतना कहना जरूरी समझता हूँ कि नये समय के नये सवालों का सामना करते हुए रचनाकार का हस्तक्षेप हरेक विधा में विमर्श के योग्य बिंदु है। सार्थक लेखन की तो यह अनिवार्यता ही होना चाहिए की वह अपने समय के सवालों, चुनौतियों के सन्दर्भों को साथ लेकर चले। व्यंग्य में तो यह और भी बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।जिस दौर में टेक्नोलॉजी का विकास हो गया हो, स्त्रियों की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों में बदलाव आया हो। कोई व्यंग्यकार पत्नी द्वारा बेलन से पति की खोपडिया तोड़ डालने जैसे विषयों पर कलम घिस रहा हो, उसे कैसे मान्यता दी जानी चाहिए। यह एक मात्र उदाहरण है,ऐसे कई प्रसंग और विषय दिख जाते हैं जो साहित्य को बहुत पीछे ढकेल देने का काम करते हैं।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण के बाद समाज में कई बदलाव हुए है। पाखण्ड,धूर्तताओं ,चालाकियां और सांस्कृतिक प्रदूषण के आगमन के साथ समाज का नैतिक अवमूल्यन हुआ है। बाजारवाद ने हरेक वस्तु को बिकाऊ, यहां तक कि देह,आत्मा और मूल्यों तक की बोलियां लग जाने को अभिशप्त किया है। परिवारों में रिश्तों की मधुरता और सम्मान के साथ छोटे-बड़ों के बीच का कोमल और संवेदन सूत्र टूटने लगा है। घर के बुजुर्ग हाशिये पर हैं।

दुनिया को जीत लेने की किसी शहंशाह की ख्वाहिश की तरह राजनीति के नायक-महानायक किसी भी हद तक जाने को तैयार दिखाई देते हैं। सत्ता सुख की खातिर अपने पितृ दलों को डूबते जहाज की तरह कभी भी त्याग देने में नेताओं, प्रतिनिधियों को कोई परहेज नहीं होता। असहमति किसी भी स्तर पर स्वीकार्य नहीं। आश्वासन और विश्वास जुमलों की तरह इस्तेमाल हो रहे हों।

हिंदीभाषा और देवनागरी लिपि को नष्ट भ्रष्ट करने में उन्ही संस्थानों और अखबारों की मुख्य भूमिका दिखाई देती है जिन पर उनके संरक्षण की उम्मीद लगी रही हो।

नए समय के बहुत से नए सवाल हैं, जिन पर गंभीरता से रचनाएँ लिखी जाना चाहिए। यह समय रम्य रचनाओं और संपादकीय टिप्पणियों से कुछ आगे की अपेक्षा रचनाकारों से करता है। सच तो यह हैकि श्रेष्ठ लेखन एक ऐसा लक्ष्य होता है जिसके लगभग पास पहुँच जाने के बाद वह और थोड़ा दूर जा कर खडा हो जाता है.

68 नरेन्द्र नगर स्वेज फार्म,
न्यू सांगानेर रोड जयपुर - 302019

पढ़े-लिखे होने की मुसीबतें

शांतिलाल जैन

मान लीजिए आपकी गाड़ी छूटने को है, टिकट की लाइन लंबी है, कोई लेडी भी नहीं है आपके साथ, किसी तरह आगे जगह बनाकर जैसे-तैसे खिड़की में हाथ डालने की जुगत में हैं, आप, तब तक पीछे से आवाज आती है- 'क्या भाई साहब, पढ़े-लिखे होकर लाइन तोड़ रहे हो?' पढ़े-लिखों की मुसीबत है साहब, लाइन भी नहीं तोड़ सकते! सिस्टम ही ऐसा है, पढ़ा-लिखा आदमी हर जगह पिट रहा है। हम बिजली का मीटर दुरुस्त रखें, पानी का बिल पूरा भरें, प्रापर्टी टैक्स समय पर चुकाएँ, कचरा डस्टबिन में डालें, कोनों में थूके नहीं, नियत जगह पर पार्किंग करें, हेल्मेट लगाकर अपनी लेन में चलें, अखबार खरीदकर पढ़ें, मन मारकर भी पचासों नियमों-उपनियमों का अनुपालन करें- कहीं कोई सराहना, प्रशंसा/तमगा नहीं। जरा सी चूक हुई कि भाई लोग टोक ही देते हैं- क्या यार पढ़े-लिखे होकर भी तुम...।'

कल की बात साहब। बेध्यानी में लालबत्ती होने के बाद भी चौराहा क्रॉस कर गया मैं। 'क्यों बे, पढ़े-लिखे अंधे, लालबत्ती नईं दिखती!' पुलिसवाले का मन केवल अंधा कहकर नहीं भरा। पढ़े लिखे होने का विशेषण भी इस्तेमाल किया उसने। एक बार दादू को रोक लिया पुलिसवाले ने। दादू के पास पूरे पेपर्स थे। थोड़े ही आर्ग्यूमेंट किए होंगे उसने कि पुलिसवाला बोला- 'ज्यादा पढ़-लिख गया लगता है। डबल चालान काटो इसका।' मुसीबतें यहीं खत्म नहीं होतीं। पीछेवाला धक्का दे और आगे वाले को लगे तो भी आगे वाला तो आप ही से कहेगा ना- क्या भाईसाहब, पढ़े-लिखे होकर धक्का दे रहे हो। जी करता है, इसी समय विश्वविद्यालय जाएँ और सारी डिग्रियाँ वापस कर दें। नोटरी के पास जाकर एफेडेविट साइन कर दें और वर्गीकृत में विज्ञापन छपवा दें। ऐ दुनियावालो! मुझे पढ़ा-लिखा मत मानो पर टिकट तो बिना लाइन के लेने दो, गाड़ी छूट जाएगी।

अनपढ़आदमी सब कर सकता है, साहब। चुनाव तक लड़ सकता है। पार्षद, विधायक, सांसद, मंत्री यहाँ तक कि राष्ट्रपति भी बन सकता है। हम तो विचार भी नहीं कर सकते। एक बार किया था। शुभचिंतकों ने मना कर दिया। राजनीति में मवाली, पहलवान, दादा टाइप के लोगों से निपटना पड़ता है। ये पढ़े-लिखे लोगों का काम नहीं है।

सच तो ये है कि आदमी को मध्यमवर्गीय पढ़ा-लिखा नहीं होना चाहिए। या तो अनपढ़हो या उच्चतम शिक्षित। किसी बड़े अफसर के लिए यह कहते हुए सुना है कभी कि पढ़ा-लिखा होकर भी रिश्वत लेता है। अलबत्ता, वो तो इतना पढ़ा-लिखा ही इसीलिए है कि ओहदा पाकर रिश्वत ले सके। और वे जो कर रहे हैं अरबों के खेल मंत्री, नौकरशाह, कार्पोरेट, वकील, जज, सेना के उच्च अधिकारी-सबके आपस के गठजोड़। स्कैम-दर-स्कैम, कोई नहीं कहता उनसे कि यार पढ़े-लिखे होकर ऐसा काम करते हो!

पढ़े-लिखे होने के मुहावरे का सबसे बड़ा दुरूपयोग तो तब होता है, जब आपके अकाट्य तर्कों का सामने वाले के पास कोई जवाब नहीं होता। वो कहता है- यार पढ़े-लिखे होकर भी बेवकूफों जैसी बातें मत करो। पढ़ा-लिखा आदमी क्या कर सकता है साहब, सिवाय चुप रहने के ?

ए-302, सीआई होम्स
टी.टी.नगर माता मंदिर के सामने, भोपाल
मो. 94250-19837

व्यंग्य लघुकथा

आलोचक

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

क्यों मां, बाबूजी पुस्तकें लिखते हैं न? परन्तु क्या लिखते हैं कुछ समझ नहीं आता, उस दिन जो मुझे पढ़कर सुना रहे थे, क्या तू कुछ समझी थी? सच-सच बता अगर तू नहीं समझती, तो इस तरह के लिखने से भला होगा क्या? माँ, तेरे मुंह से कैसी अच्छी-अच्छी बात सुनता हूं, उस तरह की बातें बाबूजी क्यों नहीं लिखते? क्या बूढ़ी दादी ने बाबूजी को राजा की बातें कभी नहीं सुनाईं? वे सब बातें बाबूजी अब भूल गए हैं क्या?

माँ उन्हें नहाने के लिए देर करते देख जब तू पुकार-पुकार कर चली जाती है और खाने के लिए बैठी रहती है, तब क्या उन्हें इस बात की भी याद नहीं होती? बस, दिनभर लिख-लिखकर खेल किया करते हैं!

जब मैं कभी बाबूजी के कमरे में खेलने के लिए जाता हूँ तू मुझे डांटती है, कहती है- तेरे बाबूजी लिख रहे हैं। अच्छा मां, सच कहो, लिखने से क्या होता है?

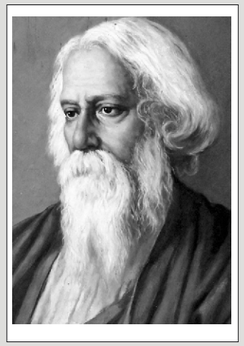

जब मैं बाबूजी का खाता खींचकर दवात-कलम ले, क ख ग घ ड य र ल व लिखता हूं, तब तू क्यों गुस्सा होती है? और जब बाबूजी लिखते हैं, तब तू कुछ नहीं बोलती!

लकीर वाले बड़े-बड़े कागज क्या बाबूजी बर्बाद नहीं करते? जब भी मैं नाव बनाने के लिए मांगता हूँ तो तू कहती है- कागज नहीं बर्बाद करना चाहिए। क्यों मां क्या सफेद कागज को काला करना ही अच्छा होता है?

काजल कुमार

उदीयमान युवा कार्टूनिस्ट, अपनी पैनी व्यंग्य-दृष्टि की वजह से पाखण्ड और मिथ्याचार को रेखाओं के माध्यम से निराकृत करने में सक्षम विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कार्टूनिस्ट का निरंतर प्रकाशन। वे मानते हैं कि केप्शन का भी उतना ही महत्व है जितना रेखांकन का। बिना दिखावे के चुपचाप अपना काम करते रहने में यकीन।

संपर्क 602, कृष्णकुंज अपार्टमेंट
प्लॉट नं.14, सेक्टर-7
द्वारका नई दिल्ली-110075

-'क्या बताऊं डॉक्टर साब, बस मेरा यही बेटा नालायक निकला जबकि बाक़ी बच्चे तो डॉक्टरी-इंजीनियरी करके विदेशों में सेटल हो गए...'

देवेन्द्र शर्मा

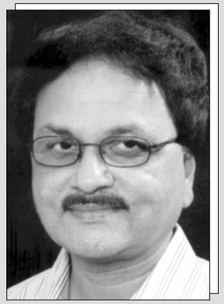

मेरे कार्टून में चुटकी के साथ हास-परिहास भी होता है। यह कहना है कोई साढ़े तीन दशक से अधिक समय से कार्टूनिंग कर रहे देवेन्द्र शर्मा का। सरिता, मुक्ता, नवभारत टाइम्स, नईदुनिया, वेबदुनिया, लोकमत समाचार आदि में हजारों कार्टूनों का चित्रण। बहुआयामी प्रतिभा के धनी देवेन्द्र ने कविताएँ, पैरोडी, व्यंग्य-आलेख और सैकड़ों रेडियो नाटक भी लिखे। स्वाभिमान गिरवी रख उन्हें कोई काम स्वीकार नहीं। न कोई पद!

41-ए, रतनबाग, एरोड्रम रोड,
इन्दौर-452005
मो.9826794153

जवाहर चौधरी

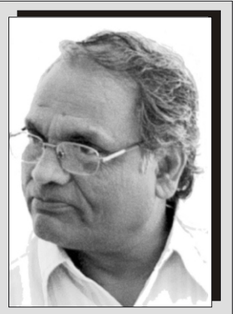

वरिष्ठ व्यंग्यकार। अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय पुरस्कारों से अलंकृत! व्यंग्य उनकी रग-रग में बसा है। ऐसा विरल ही होता है कि एक व्यंग्यकार का व्यंग्य-चित्रों में भी ऐसा दखल हो! वे लम्बे अरसे से मानस नाम से अखबार के लिए कार्टून लिख रहे हैं। विधा एक ही है, पर अभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न है। अतः अपने विचार को शक्ल देने में उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। यह बात अलग है कि अपनी रचनात्मकता में उनका जोर अपने व्यंग्य लेखन पर ही है। उनके व्यंग्य-चित्रों से गुज़रना एक अलग तरह का अनुभव है।

16, कोशल्यापुरी, चितावद रोड, इन्दौर
मो.98263-61533

कार्टून मेरी मूल विधा नहीं है...

चित्र बनाने का शौक हर बच्चे को होता है। मुझे भी था, पत्र -पत्रिकाओं में रेखाचित्र देख कर उनकी नकल बनाने में खूब आनंद आता था। आनंद का यह सोता आज भी नम है। कोरा पन्ना और पेंसिल मिलते ही बच्चा होने लगता हूँ। मानता हूँ कि तनाव, दु:ख या परेशानी सताए तो चित्र बनाओ, इनसे शीघ्र मुक्त होने लगेंगे। 1980-81 में यहाँ वहाँ कार्टूनों का प्रकाशन शुरू हुआ। दोपहर का अखबार 'नवीन इंदौर' में पाँच वर्ष तक कार्टून बनाए, इसके बाद सांध्य दैनिक अग्निबाण में पिछले लगभग तैंतीस वर्षों से कालम नियमित है। कार्टून मेरी मूल विधा नहीं है। लेखक हूँ, लिखना प्राथमिकता है। लेकिन आसपास ऐसा बहुत कुछ घटता है जिस पर एक त्वरित टिप्पणी की जरूरत होती है। जिसे कहते हैं ना पंच लाइन, बस वही । इसके साथ चित्र भी हो तो अखबार के साथ इसकी पहुँच व्यापक हो जाती है। मुख्य रूप से मेरे कार्टून राजनीतिक होते हैं। क्योंकि ऐसा कोई दिन नहीं होता है जब हमारा राजनीतिक परिदृश्य आपके लिए कार्टून की सामग्री नहीं छोड़े। लोगों की रूचि भी राजनीतिक कार्टून्स में ज्यादा होती है। हरा कुर्ता पहने एक चरित्र जिसे अखबार में अच्छेलाल के नाम से पाठक जानते हैं मेरे व्यंग्यचित्रों का सूत्रधार है। उसी की गवाही में अदालत चलती है। प्रायवेट संस्थान में नौकरी थी, सो मित्रों ने कहा कि अपने नाम से मत बनाओ। बेटे का नाम मानस है, 1984 में उसका जन्म हुआ था, तभी से चित्रों में उसका नाम जाता है। भारतीय कार्टूनकला के शीर्ष आर. के. लक्ष्मण हैं। उनकी ड्राइंग और केप्शन दोनों बेजोड़ होते थे। मारियो मेरी दूसरी पसंद हैं। इंदौर में देवेन्द्र और लहरी दोनों कार्टून के महारथी हैं और मुझे बहुत प्रिय भी। इनसे मैंने हमेशा सीखा है, ये दोनों द्रोण इतने भले हैं कि मुझसे अंगूठा नहीं मांगेंगे (प्रणाम गुरूद्वय)। कीर्तिश भी इंदौर के हैं। उनमें गजब की कार्टून प्रतिभा है, शानदार टाइमिंग वाले उनके कार्टून जोरदार होते हैं। साहित्यकार सूर्यकांत नागर जी का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे कार्टूनिस्ट के रूप में याद करते हुए प्रस्तुत किया। समावर्तन और उसके संपादक मण्डल का भी दिली आभार।

- जवाहर चौधरी

अवांछनीय को नहीं

श्रीराम दवे

'मुँह देखकर तिलक निकालने' का चलन कब से जनश्रुतियों के सहारे समाज पर किसी बेल की मानिन्द लिपट गया, कुछ नहीं कह सकता, किन्तु यह तो तय है कि इसके पीछे इतनी सावधानी रखने का तक़ाज़ा अवश्य रहा होगा कि तिलक टेढ़ा नहीं हो जाय! हो सकता है कि यह सावधानी भी रही हो कि सुपात्र को ही तिलक लगाया जाए किसी अपात्र या अवांछनीय को नहीं!

दरअसल मुँह देखने/ मुँह दिखाने या मुँह नहीं दिखाने/मुँह नहीं देखने के सैकड़ों किस्से अतीत की गलियों में विचरण करते रहे हैं। ऐसे में यदि इस अनमोल बोल के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण सावधानी को इंगित किया जा रहा हो तो भला गलत क्या है? निश्चित ही इस सबके पीछे वे पछतावे और चेतावनियाँ भी रही होगी कि- ''काश! मुँह देख लिया होता! या भविष्य में मुँह देखकर ही काम किया करो भले ही सामने वाला तुम्हारा मुँह देख सके या नहीं देख सके!

वैसे मुँह देखने के फायदे भी बहुत हैं। यह तो पता चल ही जाता है कि जिसका मुँह देखा जा रहा है वह अपने वाला है भी या नहीं। इसे यों भी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जो दिखाई दे रहा है उसकी जरूरत है भी या नहीं ? अथवा क्या वह आगे किसी काम आ सकता है? यह जो भविष्य दर्शन की चतुराई है इसी ने अतीत को पार्श्व में धकेलने की जुगत लगा रखी है तभी तो इतिहास जैसा विषय आज स्मृतियों का कोलाज़ बनकर रह गया है। सब जानते हैं कि कोलॉज में थोड़ा ही दिखता है बहुत कुछ नहीं!

बात चली थी मुँह देखकर तिलक निकालने से और कहाँ आकर ठहरने को है, लेकिन इसे यहीं ठहरने देना है क्योंकि इसमें छिपी हिदायत को समझना होगा। वैसे यह एक वस्तुनिष्ठ सत्य है- सार्वभौम सत्य अर्थात इसे हर कहीं आजमाया जा सकता है। राजनीति और धर्मक्षेत्रों के गलियारे हों या सामाजिक अथवा प्रशासन के राजमार्ग अथवा साहित्य और कलाओं के इलाके! गोया सभी जानी-पहचानी जगहों में इस सत्य को पहले भी आजमाया जाता रहा है और अब तो बाकायदा बिल्लौरी कांच लेकर देखा जा रहा है कि फलाँ के ललाट पर अपना तिलक टिकेगा भी या नहीं? और यदि टिका भी तो कितनी देर तक-कितनी दूर तक ?

कुछ लोग है जो इस आविष्कार में लगे हैं कि खुद को सामने वाले के अनुरूप ढाले बगैर ऐसा तिलक लगाया जाय कि तिलक देर तक लगा रहे ताकि उसमें समर्पण का तत्व स्थायी भाव से घर कर जाय! 'टास्क' कठिन अवश्य है लेकिन परिवर्तन की रंगीली दुनिया कुछ इस तरह एक दूसरे को आकर्षित करने में लगी हुई है कि मुँह भी दिखाई दे रहा है और तिलक भी सही निकल रहा है और मजा यह कि अब तो तिलक पर तांदुल भी चिपकने लगे हैं!

चलिए, तिलक लगवा लें और कुछ धार्मिक-वार्मिक, कुछ-कुछ सामाजिक-वामाजिक हो जाएं ताकि इस बहाने मुख्यधारा में शामिल हो सकें और न सही प्रबुद्ध या राष्ट्रवादी, आम हिन्दुस्तानी जैसा दिखने के और वैसा ही होने के गौरव से मालामाल हो सके।

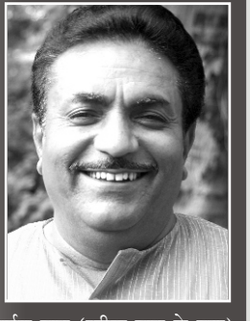

26 निर्माण नगर (रवीन्द्र नगर के पास)
उज्जैन - 456010
मो. नं. 9425915010

पुनिता जैन की तीन कविताएँ

मुट्ठी में

चारों ओर
कहने का शोर
खड़ी सुनती रही
इसे/उसे भी
किस किसको नहीं/सबको सुना
मुड़ी फिर/लौट आई

मुट्ठी में पर्याप्त था
रह जाना चाहिए था जो

वायु में/वायु सा
उसी लिपि में/लिखा
मौन!

विरोध में

और सभी घुनों ने
सर्वसम्मति से
प्रस्ताव पारित किया
-अब वे नहीं पिसेंगी
वे इकट्ठी होगी
-विरोध करेंगी

उनका एक झंडा होगा
''चींटी के पैर के नीचे दबा हाथी''
प्रतीक चिह्न होगा

वे एक जगह एकत्रित हो
चक्की चलाने वालों के विरूद्ध
पंक्तिबद्ध होंगी
रेंगते हुए पहुँचेगी वे
उनके कान नाक और मुँह में
वे पैर झाड़ेंगे
तो ये हाथों पर चढ़ेंगी
हाथ-पैर पेट छाती मुख से होते हुए
उनके सिर तक पहुँचेगी
और भीतर छिपे
दिमाग के उस कीड़े तक पहुँचेगी
जिसने गेहूं के साथ घुन पिसने के नियम को
शाश्वत करार दिया
उस कीड़े से केवल प्रश्न नहीं करेंगी ये
उसे खुद हल भी करेंगी

छोटी से छोटी एक धुन भी
खुद तय करेगी
जीने के अपने नियम

छोटी से छोटी एक धुन भी
खुद तय करेगी
जीने के उपजे नियम

नेह

प्रेम जब जहाँ मिला
जरा कम मिला
कुछ सहेजा
कुछ लुटा दिया
कुछ बाँटा/जमा किया
बाकी जमीं में बो दिया
ताकि
समय बाद
जब हो खुदाई
राहत की साँस सा
कुछ बाहर निकले
फिर हवा बहने लगे
फिर पत्ते आवारगी में उड़ें!

जी-03, फॉर्चून ग्लोरी एक्सटेंशन,
ई-8 एक्सटेंशन बावड़िया कलाँ, भोपाल-462039
मो- 94250-10223

वेद हिमांशु की दो कविताएँ

उदास सपनों के दौर में

कितना तनहा होता है आदमी,
उदास सपनों के दौर में....।
और वे स्वप्न भी ऐसे,
जिसकी न कोई भाषा
न लिपि और
न कोई ध्वनि
बिलकुल खामोश!
लापता उद्गम
न भूगोल!!
न इतिहास!!
किसी नदी की मानिंद!
आदमी सोचता है,
नदी के बारे में। और फिर
उदास सपनों में खो जाता है...
क्योंकि नदी तो हमेशा ही बेवफा होती है....!
बेचारे भोले-भाले गरीब किनारे,
जिनकी निगह बानी में वह रहती है,
उन्हें अपने जाल में फँसाती है,
और बेवकूफ बनाकर,
समन्दर की बाँहों में समाने
चल पड़ती है...!
कितना तनहा होता है आदमी,
उदास सपनों के दौर में!
सोचते हुए उन सपनों के बारे में।
लेकिन बेहद गुस्सा होता है,
सोचते हुए समन्दर के बारे में
हों समर्थ और संपन्न समन्दर के बारे में!
नदी और समन्दर के बारे में!
सोचते हुए
वह तनहा हो जाता है। और
तनहा होते,
आदमी के उदास सपने
अक्सर नपुंसक होते है!
वे किसी का कुछ नहीं
बिगाड़ सकते!
न नदी का
न समन्दर का!!

खुदकुशी करते स्वप्न

सपनो भरी रातों से लबरेज,
बाइस वसंत देख चुकी लड़की,
स्मृतियों की जुगाली करती है!
यह जानते हुए कि अब
अर्थहीन हैं सब वे स्वप्न सारे!
फिर भी वह जब तब
खोल देती है पुराना सन्दूक!
निकाल लेती है,
मात्राओं की गलतियों से भरपूर
पुराने खत!!
पढ़ती है बार-बार/और
मुस्कुराने लगती है लगातार!
उसे याद आते है वे तर्क/कि
प्रेम कोई व्याकरण नहीं है/कोई
भाषा विज्ञान नहीं है।
उसे हँसी आ जाती है/फिर अनायास
तकिए में मुँह छुपाकर रोने लगती है,
खत के पीछे,
किराने का हिसाब दूध का उधार/और
सब्जी के हल्दिया निशान देखकर!
सच है सपने जब,
गोपनीयता और सनसनी पैदा
नहीं करते
जिन्दगी भी मर जाती है/और
स्वप्न भी खुदकुशी कर लेते
हैं!!

239, संचार नगर एक्स,
कनाड़िया रोड,
इन्दौर -452016
मो.94245-86658

मानव बजाज की तीन ग़ज़लें

तेरा यशगान या अपनी सुनाने तो नहीं आया
मैं तेरी सल्तनत पे सर झुकाने तो नहीं आया

भलिभांति हूँ मैं परिचित तेरी दहशत के घेरों से
मैं अपना हाथ पर तुमसे मिलाने तो नहीं आया

चलेंगे एक दिन इस गांव के मुर्दे यकीं मानो
मैं कुनबे में फ़कत लाशें जलाने तो नहीं आया

परिंदो फड़फड़ाओ घौंसले छोड़ो उड़ो खुलकर
मैं दरवाजा ये खाली खटखटाने तो नहीं आया

अँधेरों में छिपी होगी उजालों की किरण खोजो
मैं लम्हें भर चरागों को जलाने तो नहीं आया

उठो खोलो ये चिलमन और परदों को हटा डालो
तुम्हें मैं नींद से खाली उठाने तो नहीं आया

सफ़र की फिर करो तैयारियाँ पतवार फिर थामो
मैं कश्ती को फ़कत साहिल दिखाने तो नहीं आया

--------"--------

तुम्हें मुबारक चाँद तुम्हारा, मौसम भी पुरवाई भी
अभी हमारे साथ खड़ी है, आफ़त भी, रुसवाई भी

बेगाने भी साथ तुम्हारे, चलते वीराने में
और हमारे साथ नहीं है, ख़ुद अपनी परछाई भी

इस जलसे में दुनिया वाले सारी शोहरत लूट चले
मेरे फ़न की नहीं मयस्सर, जलसे में सुनवाई भी

वीणा के जख़्मों से सहमी ढोलक और बाँसुरी जब
दूर वहीं ख़ामोश खड़ी थी, खौफ़ज़दा शहनाई भी

रेशा-रेशा बिखर रहे थे, तेरी यादों में जब हम
टूट न पाई मद में डूबी, यार तेरी अँगड़ाई भी

बीज लगाना, पानी देना, फसल उगाने से पहले
पूरा खेत सुरक्षित करने, लगवाना बिरवाई भी

--------"--------

कल से बदतर तो आज देखा है
पुर्जा-पुर्जा समाज देखा है

चोर ही चोर थे गुलामी में
डाकुओं में स्वराज देखा है

जानवर में वफ़ा, हया देखी
आदमी बे-लिहाज़ देखा है

मैंने ख़ामोश इस समंदर का
क़ातिलाना मिज़ाज देखा है

भीड़ के बाजुओं से हमने भी
सल्तनत का इलाज देखा है

बेबसों के लिये बना बेशक
हमने हर इक रिवाज देखा है

ठोकरों में पड़ा हुआ इक दिन
हमने हिटलर का ताज देखा है।

घराना कलेक्शन गाड़ीखाना के पास
नया बाजार नं.3 मेन रोड, दमोह-470661
मो.088273-63515

सूर्यप्रकाश मिश्र के तीन गीत

सोता लोकतन्त्र

रमई काका का कुक्कुर दिन भर सोता है
सारी रात भौंकता रहता या रोता है

सुनते रहे कहानी में, था कोई राजा
नहीं बन्द होता था तब घर में दरवाजा
इस टोले पर अब भी ऐसा ही होता है

वैसे भी टोले के घर सारे छप्पर हैं
जिनके मालिक लोग नहीं खांटी ईश्वर हैं
उनके रहने पर अन्याय कहाँ होता है

आ जाती है जब कोई आमद सरकारी
चल जाती है कुछ दिन की रोटी तरकारी
हर कोई बन जाता सरकारी होता है

टोले की किस्मत में स्याही पुती हुई है
बैल बनी जिन्दगी शौक से जुटी हुई है
जैकारा उस मालिक का जिसने जोता है

नई पौध के सपने रोज शहर जाते हैं
सेहत के बदले बीमारी ले आते हैं
इससे बढ़कर नेमत कोई क्या खोता है

टोले ने हर बार फसल मेहनत से बोई
लोकतन्त्र का पर्व मनाता है हर कोई
देखें आखिर लोकतन्त्र कब तक सोता है

खेती-बारी

बिगड़ा चैत अषाढ़ हो गया
टूअर हुआ किसान
विधवा हुईं खेत की मेड़ें
खेती निःसन्तान

ओले पड़े पकी फसलों पर
बादल जमकर गरजे
कैसे भला उतर पायेंगे
अब किसान के करजे

घायल पड़ा कराह रहा है
खेती का सम्मान

फैले हाथ अन्नदाता के
आसमान के आगे
किस्मत पूरे विधि-विधान की
लिखने चले अभागे

क्या समझे दुःख हरियाली का
हँसता रेगिस्तान

नून तेल लकड़ी के किस्से
कबसे तरस रहे हैं
कत्ल हुए पेड़ों के आँसू
रह-रह बरस रहे हैं

बारी बिना कहाँ हो सकता
खेती का कल्याण

फोटो छपे हैं अखबारों में
पौधों के संग हँसकर
किसने कितने पौधे रोपे
पर्यावरण दिवस पर

लगता है- अवतरित हो गये
धरती पर भगवान

खेती के मजहब की जाने
कब आयेगी बारी
कब माँगेगा लोकतन्त्र में
अपनी हिस्सेदारी

कब काबिज होंगे संसद पर
गौशाला खलिहान

बी-23/42ए.के. बसन्त कटरा गाँधी चौक
खेजवां (दुर्गाकुण्ड) वाराणसी-221001

सृजन स्मरण

धर्मवीर भारती का पत्र पुष्पा जी के नाम

11-06-1957

पुस्सी,

कितने दिन हो गये तुझे, न कोई कहानी भेजी न कविता। पर मेरा स्वास्थ्य और यहाँ का भयावना मौसम कुछ भी काम नहीं करने दे रहा है। इसलिए कोई नयी कहानी, कविता नहीं लिख पाया। पर विश्वास रख जरा सी ताकत आते ही मैं नयी कृतियों से लाद दूँगा तेरी डाक !

इधर कुछ पढ़ने का भी जी नहीं हो रहा, उस दिन गया, अर्नेस्ट हैमिंग्वे की एक पुस्तक लाया - अफ्रीका के जंगलों पर लिखी हुई, दो घंटे में आधी पढ़कर रख दी। जी ऊब गया। फिर सोचा कुछ ऐसे उपन्यास पढ़े जाएँ जो पहले बहुत अच्छे लगे थे। ग्राहमग्रीन का एक उपन्यास मुझे और फादर एक्सट्रॉस को बहुत पसन्द था। उसे पढ़ना शुरू किया फिर सारी कथा मालूम थी तोध्यान उसकी शैली और शिल्प पर जाने लगा। दो-एक अध्याय और पढ़े पर फिर वह भी नहीं चला। कल सुबह से एक किताब बहुत याद आ रही थी-'A Pair of blue eyes' Thomas Hardy की लिखी। पर वह मेरे पास थी ही नहीं। आठ बजे ही गाड़ी लेकर ऊप Books गया। वहाँ वह किताब थी। खड़े-खड़े उलटा-पलटा। पर जिन दृश्यों ने सात साल पहले रुला दिया था वे आज अत्यन्त कृत्रिम और बनावटी लगने लगे। सोचा इसे पढ़कर जो पिछला जायका बसा हुआ है इस उपन्यास का, उसे क्यों बिगाड़ा जाय।

बेहद थकान, बेहद क्लान्ति और बेहद भारीपन महसूस हो रहा था और मैंने ऊप Life of Christ उठायी। मार्था और मेरी वाला अध्याय और उससे अकस्मात् वह चित्र याद आ गया जो तुझे भी फादर एक्सट्रॉस ने चर्च में दिखाया था। वह जहाँ ईसा को सूली से उतारकर लाया गया है और ऊपा ऍंडे - मैरी मैग्दालेन, वर्जिन मैरी और ईसा की मुँहबोली बहन मैरी - तीनों उनके शव के पास हैं। और उसके बाद मैंने पुस्तक बन्द कर दी और ऐसा लगा जैसे मृत्यु की वह भावना मेरे मन के किसी कोने में ऐसी बस गयी कि मैं कह नहीं सकता। तीन-चार बरस पहले मुझे उपनिषद् अच्छे लगते थे और मैं सुबह उठकर उनका पाठ करता था। उनमें बराकर मृत्यु के प्रति जिज्ञासा है, मृत्यु की व्याख्या है। मृत्यु के मर्म को, भेद को समझाने की कोशिश की गयी है। बहुत आशावादी है उनका स्वर, उन्होंने मृत्यु की प्रक्रिया का सारा भय और खेद हरकर उसे भी आनन्दप्रद बनाने की चेष्टा की है- पर अब मुझे वह दृष्टिकोण नहीं भाता। इधर अक्सर मैं मृत्यु के बारे में बिल्कुल बौद्धों की तरह सोचता रहा हूँ। जीवन एक चेतना प्रवाह है, अकस्मात् झटके से टूट जाता है। जैसे अँधेरे में ज्योतिशिखा अकस्मात् जल उठे और फिर एक फूँक से बुझकर विलीन हो जाय। वैसा ही है मेरा अस्तित्व। मृत्यु में न कोई अवसाद, न आनन्द ! (तू जानती है इतने तटस्थ रूप से मैं क्यों सोच पाता हूँ। सच मानो, पुस्सी, ऐसा लगता है जैसे मैं अपनी मृत्यु के बारे में नहीं सोच रहा - वह कोई और है- कोई भारती नाम का व्यक्ति जिसका मेरा दूर का परिचय है-)

और कल से एक और अजीब बात सोच रहा हूँ। पुस्सी, मृत्यु शायद किसी एक अमंगल क्षण में घटित होने वाली विभीषिका नहीं है। वह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। कहीं-न-कहीं हमारा कोई-न-कोई अंश प्रतिक्षण मरता रहता है। कभी-कभी क्या ऐसा नहीं लगता कि पाँच साल पहले किसी एक व्यक्ति, किसी एक आदर्श, किसी एक भावना को हमारे जिस व्यक्तित्व ने बेहद प्यार किया था, अपने को उत्सर्ग कर दिया था, आज हमारा वह व्यक्तित्व मर चुका है, ठंडा पड़ चुका है, विलीन हो चुका है। पर कभी-कभी इसके बिल्कुल विपरीत बात भी लगती है। हमारे व्यक्तित्व का कोई भी अंश कभी भी नहीं मरता। जाने कहाँ बीज की तरह परत-दर-परत जमीन के अन्दर दबा रहता है। मौका पाकर उसमें अकस्मात् जीवन का संचार हो उठता है, हरियाली दौड़ आती है।

सच्चाई कहाँ है पुस्सी, मैं आज तक नहीं समझ पाया। मैं उस मृत्यु की चिन्ता नहीं करता जो अकस्मात् झटके से साँसों की डोर को तोड़ देगी। मैं उस मृत्यु के बारे में अक्सर सोचता हूँ जो क्षण-क्षण घटित हो रही है- हममें, तुममें, सबमें। वह किन क्षणों को, किन स्मृतियों को, किन उल्लासों को, किन समर्पणों को, किन ममताओं को, किन पवित्रताओं को कब कण-कण रिता डालेगी, इसका कुछ पता नहीं। और जब सब रीत जाएगा, सब छीज जाएगा, सब नष्ट हो जाएगा तब क्या बचेगा - इस शरीर में भोगे हुए जीवन की एक अवसादपूर्ण थकान और इस मन में सारे खोये हुए सुखों और सान्त्वनाओं की एक कटुतामात्र !

सुख्यात कवि, कथाकार, नाटककार एवं कई-कई वर्षों तक 'धर्मयुग' जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका के यशस्वी संपादक रहे स्व. धर्मवीर भारती जी की २१वीं पुण्यतिथि ४ सितम्बर को है। उनकी प्रेरक स्मृतियों को नमन करते हुए यहाँ प्रस्तुत है 'मृत्यु' को रेखांकित करते हुए एक पत्र जो स्व. भारती जी ने लगभग ६१ वर्ष पूर्व अपने कविमन की एक विशिष्ट मन:स्थिति के दौरान अपनी पत्नी श्रीमती पुष्पा भारती जी को लिखा था।

- संपादक

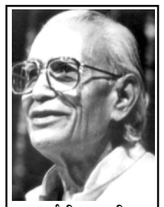

धर्मवीर भारती
जन्म : 25 दिस.1926
निधन : 4 सित.1997

वैष्णवों ने इस समस्या को अनुभव किया था। तूने तो पढ़ा होगा अपने एम.ए. के क्लास में कि वे मानते थे कि ये सारी ममताएँ, स्नेह, काम, क्रोध, अभिमान तक परिशोधित हो जाते हैं, यदि ये कृष्णार्पण कर दिये जाएँ। फिर ये मरते नहीं- कबीर ने लिखा है न - "हम न मरैं मरिहै संसारा, अब मोहि मिला जियावनहारा।" पर वे लोग किसी मानवोपरि सत्ता ईश्वर में विश्वास करते थे। इसीलिए उनका सारा मानवीय प्रेम, राग, मोह सभी उस प्रभु को अर्पित था और मानते थे वे कि वे क्षण, वे उल्लास,वे विश्वास, वे प्रेम जो कृष्णार्पित हैं फिर मरते नहीं। मेरा संकट यह है कि आज मुझे लगता है कि ये उनकी मन समझाने की बात थी, क्योंकि या तो प्रभु हैं नहीं या हैं भी तो उनको इसकी कोई चिन्ता नहीं कि मनुष्यों को क्या होता है क्या नहीं। न वे कोई समर्पण स्वीकारते हैं न किसी को अमरत्व प्रदान करते हैं। इसीलिए अक्सर मुझे ध्यान आता है कि यह जो चरम उल्लास, विश्वास, ममता, प्यार, आदर्श, उत्सर्ग का क्षण हम जी रहे हैं वह कल मर गया तो ? और जैसे-तैसे मेरे मन में जीवित रहा- पर दूसरों के मन में मर गया तो ? इसीलिए पुस्सी, मैंने श्यामलता जी वाले पत्र में अन्त में लिखा था कि कौन जाने लालकनेर का गुच्छा लेकर आने वाला सिर्फ मृगजाल साबित हो और अँधेरे में जाती हुई लालटेन वाली नाव सिर्फ एक छलना मात्र हो। पर कभी-कभी पुस्सन, यह भी लगता है कि मैं भी जाने हूँ या नहीं या मेरा अस्तित्व भी एक प्रत्याभास मात्र है। पहाड़ों पर अक्सर चरवाहे खूब जोर से गीत की एक कड़ी गाते हैं और गाकर चुप हो जाते हैं। पर उसके बाद एक गूँज उसकी बड़ी देर तक घाटियों से सिसकती रहती है। वह गूँज गीत नहीं होती। गीत तो कब का बन्द हो चुका होता है । गूँज एक अवास्तविक प्रत्याभास मात्र होती है। वैसे ही लगता है कि मैं किसी ऐसे निर्जन पहाड़ी संगीत की प्रतिध्वनि हूँ जो कब का समाप्त हो चुका है, केवल उसकी गूँज-अनुगूँज हूँ, मैं जो ऊबड़-खाबड़ घाटियों से टकरा-टकरा कर बार-बार अपने को दोहरा रहा हूँ और धीरे-धीरे मिटती हुई क्षीण ध्वनि की तरह चीड़ के जंगलों में खो जाऊँगा।

....आज से वर्षों पहले पुसिया, मैंने अपनी डायरी में ब्राउनिंग की एक कविता उतारी थी। बहुत मशहूर कविता है वह- 'Prospice' मृत्यु पर ही है वह कविता- कविता का भावार्थ संक्षेप में यों है-

"मृत्यु से भय ? - कंठ में घुटता हुआ कोहरा
और चेहरे पर धुँधली छायाएँ महसूस करना !
जब हिमपात प्रारम्भ हो जाय और झँझाओं का गर्जन सूचित करे
कि हम उस स्थान के निकट आ रहे हैं -
रात की प्रगाढ़ता, तूफान का आवेग/ और शत्रु जहाँ खड़ा है
शत्रु साकार सन्देह, भय..../ मगर जो शक्तिशाली है वह जाएगा, रुकेगा नहीं
क्योंकि सफर खत्म हो रहा है, चढ़ाई खत्म हो रही है/अवरोध समाप्त हैं

यद्यपि अभी एक आखिरी युद्ध बाकी है-
पर कोई बात नहीं/ मैं योद्धा रहा हूँ - अतः एक युद्ध और -
सबसे खूँखार और सबसे आखिरी ! / मैं नहीं चाहता कि मैं आँख पर पट्टी बाँधकर
काँपते, रेंगते हुए जाऊँ / न, मैं उसे सम्पूर्णतः जानूँगा, निर्बन्ध,
सब सहूँगा - जीवन के सुखों का मूल्य चुकाऊँगा/ दर्द से, अँधेरे से, संगदिली से-
क्योंकि अकस्मात् साहसी के लिए सब बदल जाता है / काला क्षण तत्क्षण समाप्त
हो जाता है/ और प्रकृति का उत्पात और चीत्कार करती हुई प्रेत-ध्वनियाँ

जर्जर पड़ती हैं, घुलमिल जाती हैं/ फिर बदल जाती हैं - दर्द से उभरती हुई एक शान्ति में / फिर एक ज्योति और फिर तुम्हारा कोमल वृक्ष -
ओ मेरी आत्मा की आत्मा ! मैं तुम्हें फिर बाँहों में समेट लूँगा/ और फिर हम प्रभु में निमज्जित हो जाएँगे/ सब कुछ उन्हीं के हाथों में छोड़कर !...''

ब्राउनिंग की यह कविता मुझे बहुत पसन्द थी- मुझे एक नये संघर्ष की प्रेरक भी लगती थी ! पर धीरे-धीरे क्यों वह अदम्य विश्वास भी टूटता गया।

शायद ब्राउनिंग की यह कविता या उसकी अन्य कविताएँ अच्छी लगने का एक कारण था, जो अब नहीं रहा। इस बार लखनऊ में कान्ता ने किसी से तुम्हारी भेंट करायी थी न! मेरी एक कविता की एक पंक्ति क्या उसे देखकर तुम्हें याद नहीं आयी- ''वह झुकी मुँदी पलक सीपी में खाता हुआ पछाड़ - बेजुबान समन्दर !''

- तो ब्राउनिंग की एक कविता थी जो मुझे बेहद अच्छी लगती थी और जिसे मैंने पहली बार उसकी कापी में पढ़ा था। और तब मुझे पहली बार यह अहसास हुआ था कि गहनतम ममता में कैसे शरीर और आत्मा, दिव्य और भौतिक, लौकिक और पारलौकिक बिल्कुल घुलामिला रहता है- वह कविता है- "A Woman's last word." जिसमें एक स्त्री के भावनात्मक समर्पण का चरम क्षण दिखाया गया है। वह कहती है-

Let's contend no more, love ! strive, nor weep ;
All be as before, love ! only sleep.
Be a God, and hold me with a charm !
Be a man, and fold me with thine arm !
Teach me, only teach, love ! as I ought
I will speak thy speech, love, think thy thought
Meet, if thou require it both demands
Laying flesh and spirit in thy hands.
Must a little weep, love (foolish me!)
And so fall asleep, love ! loved by thee.
(आओ अब कलह समाप्त करो, न झगड़ो, न दुःखी होओ
जैसे पहले थे वैसे हो जाओ प्रिय, चुपचाप नींद में डूब जाओ)
(तुम मेरे लिए ईश्वर बन जाओ प्रिय! मुझे मन्त्रों से बाँध दो -
तुम मेरे लिए मात्र पुरुष रह जाओ, प्रिय! भुजाओं में बाँध लो!)
(तुम मेरे निर्देशक बन जाओ प्रिय! शिक्षा दो कि मैं क्या करूँ
मैं तुम्हारी ही बोली बोलूँगी प्रिय ! तुम्हारे विचार ही मेरे विचार होंगे-)
(तुम्हें आवश्यकता हो तो मुझे दोनों स्तरों पर स्वीकार करो
मैंने शरीर और आत्मा दोनों तुम्हें अर्पित कर दिये हैं)
(अब मुझे थोड़ा रो लेने दो प्रिय, (आह मैं नासमझ भी तो हूँ!)
और रोकर सो जाने दो प्रिय, तुम्हारे प्यार में डूबकर!....)

इस कविता के दूसरे Stanza का बहुत अच्छा रूपान्तरण मुझे अज्ञेय की प्रारम्भिक काव्य-पुस्तिका 'चिन्ता' में मिला था-

''ईश्वर बन कर मन्त्रशक्ति से छू दे मेरा भाल
मात्र पुरुष रह, भुजबन्धन से मर्माहत कर डाल!''

यह तो समझ लो एक भावनात्मक प्रतीति थी। इसके बाद मैंने और जाना वह यह था कि समर्पण के किसी एक स्तर पर हमरा सारा भौतिक जीवन केवल एक प्रतीक मात्र रह जाता है हमारे आरम्भिक जीवन का। हमारे प्यार, हमारी ममताएँ, हमारे सम्बन्ध, हमारी कामनाएँ- उन सबको बहुत गहरा नया अर्थ मिल जाता है और अर्थ शारीरिक नहीं होता- वह शरीर से बहुत ऊपर उठा हुआ होता है- और उस स्तर पर शरीर या तो केवल माध्यम मात्र होता है या कभी-कभी होता ही नहीं। शरीर की चेतना भी हममें नहीं रह जाती। हम सिर्फ भावना मात्र बन जाते हैं। एक दिवास्वप्न, एक अदृश्य संगीत, एक अशरीरी समर्पण।

यह सब मैंने पाया था, अनुभव किया था बरसों पहले... और उन दिनों मन में एक अदम्य विश्वास था- मृत्यु के प्रति भी...

... लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीते एक-दूसरा कटु सत्य भी उदित हुआ। यह भी...यह भी मरणशील है। इस भावना की भी मृत्यु सम्भव है। और मैंने देखा है...धीरे-धीरे समय के गुजरने के साथ इस भावना को मरते हुए! उन झुकी, मुँदी पलक सीपियों में आज भी समन्दर लहराता है- पर उसमें सबकुछ मर चुका है। मूँगे के हरे-भरे द्वीप मर चुके हैं। फेनोज्ज्वल उत्ताल लहरें लहरों की ढलान में बहती हुई चन्द्रमा की मोतिया छायाएँ, झूमती हुई नमकनी समुद्री हवा, सब कुछ मर चुका है- वह अब एक मुर्दा समुद्र है-Dead Sea!

और मैंने अनुभव किया कि जब चीजें मरने लगती हैं तो सिर्फ यही होता है कि उनके गहरे अर्थ खोने लग जाते हैं, वह केवल अर्थहीन छिछली बेजान-सी होकर रह जाती हैं। कितना उल्टा है यह चित्र ब्राउनिंग के दिये हुए चित्र से, जहाँ अँधेरा, उलझन, पीड़ा, धुन्ध सब कुछ पहले एक शान्ति में बदलता है, फिर एक ज्योति में ('प्रातकिरन' में) और फिर...। ...लेकिन यहाँ मैं अपने को पाता हूँ एक मुर्दा समुद्र के किनारे अकेले खड़ा हुआ - क्रमिक मृत्यु के सामने...मृत्यु जो क्षण-क्षण घुन की तरह हमको अन्दर से खा रही है। लगता है एक अन्धा प्रवाह है जिसमें हम बहे जा रहे हैं...तूने पुष्टिमार्ग के बारे में पढ़ा है न, निरोध का सिद्धान्त। सभी इस भावप्रवाह में बहे जा रहे हैं, पर भक्तजनों को प्रभु जल में अपनी अंजलि डालकर निरुद्ध कर लेते हैं, फूल की भाँति। मैं जानता हूँ कि कि अब कोई अंजलि नहीं जो मुझे निरुद्ध कर सके- कोई नहीं, क्योंकि मैं तो प्रवाह में बहता हुआ फूल भी नहीं हूँ - मैं तो तट पर छूटी हुई सूखी रेत हूँ। (निराला ने लिखा है कहीं- ''स्नेह निर्झर बह गया है, रेत सा तन रह गया है) सो मैं - वह सूखी रेत, किसी की भी अंजलि में कब तक रूकूँगा। चाहे वह प्रभु की ही अंजलि क्यों न हो। कभी तूने नदी किनारे बालू का खेल खेला है? सूखी महीन रेत अंजलि में भरना कितना अच्छा लगता है पर ज्यों-ज्यों मुट्ठी कसो त्यों-त्यों और भी तेजी से रेतकण खिसकते जाते हैं...

और क्या मैं बिल्कुल उन्हीं रेतकणों-सा नहीं हूँ ? सभी की स्नेहभरी अंजुलियों से बेबस मजबूर खिसक कर धूल में मिलता हुआ ?

कोई है जिसके लिए मैं बहुत छोटा हूँ, इतना छोटा कि वक्ष में छिपाकर, आँचल में दुबकाकर- उसकी इच्छा होती है- कि मुझे लेकर उड़ जाय, कोई है जिसके लिए मैं इतना बड़ा हूँ, इतना महान् कि उसकी इच्छा होती है कि श्रद्धा से विनत होकर, विश्वास से भरकर वह मुझे सब कुछ उत्सर्ग कर दे, कोई है जिसके लिए मैं बराबर का हूँ- जिसकी कामना होती है कि मन का रेशा-रेशा खोलकर अपने को मेरे समक्ष बिल्कुल उन्मुक्त कर दे...और मैं क्या कहूँ अपने लिए ? जानती हो- सिर्फ एक ऐसा व्यक्ति जो न बड़ा है, न छोटा है, जो हर क्षण अपनी मृत्यु का क्षण जी रहा है, और जानती हो न तुम कि मृत्यु के क्षण में मनुष्य सबका अतिक्रमण कर जाता है- आयु का, भावनाओं का, बन्धनों का...वह कुछ नहीं रह जाता! ऐसा हूँ मै। पुसनिया! बाकी सब जो है न! मेरा अत्यन्त हँसमुख स्वभाव, मेरा लिखना-पढ़ना, मेरे फूल पौधे, मेरे प्यार,मेरी ममताएँ, सब नकाबें हैं, सब आवरण हैं, जिनसे मैं अपनी इस क्रमिक मृत्यु की आन्तरिक ट्रैजेडी को बराबर ढाँके रहता हूँ, भूले रहता हूँ। सिर्फ कभी-कभी एकदम वह मुझे आक्रान्त कर लेती है और उस क्षण में वैसा ही अग्राह्य, सुदूर हो जाता है जैसा उस दिन सुहागी की पहाड़ियों पर महाकाल के मन्दिर में सायं की आरती के समय मैं हो गया था और उस समय तुमने क्या कहा, कान्ता ने क्या कहा, शोभा दीदी ने क्या कहा, साही ने क्या कहा, जगदीश ने क्या कहा - मुझे कुछ पता नहीं, मैं वहाँ था ही नहीं।

कभी-कभी ऐसी स्थिति में जो सचमुच बड़े लोग होते हैं- वे चले जाते हैं तो फिर आगे ही चलते चले जाते हैं। लौटते नहीं। मैं तो कमजोर हूँ न, बेहद कमजोर - इसीलिए लौट आता हूँ। वापस- इस क्षणिक मृत्यु और अगणित मृगतृष्णाओं के देश में- लौट आता हूँ इस डेड सी के तट पर- यह बेजबान समन्दर जो मुझे अब कुछ नहीं दे सकता।... अच्छा पुस्सी-बस ! तुम नाराज थीं न कि मैं तुम्हें 'ठीक-ठीक' से खत नहीं लिखता। लो, मैंने इतना लिख डाला। जाड़ों के दिनों में अक्सर जब तुम और शोभा घर आ जाती थीं तो शाम को हम सब अपने नीले कमरे में बैठते थे। शोभा दीदी ज्यादातर अपनी किताबों में डूबी रहती थीं और मैं इधर-उधर की बेकार की बातें करता रहता था या अंग्रेजी कविताएँ सुनता रहता था। कमरे में एक नीली बत्ती जलती रहती थी...और धूपबत्ती के सुगन्धित धुँए की टेढ़ी-मेढ़ी लहरें...ठीक वैसा ही इस खत को समझना- बस एक शाम की हल्की-फुल्की गपशप...अच्छा अब जाओ- अपनी रिसर्च की पढ़ाई में डूब जाओ- बस!

भारती

(पत्र श्रीमती पुष्पा भारती के सौजन्य से)

खुरदुरे यथार्थ में सम्वेदना के तर्क को जीती कहानियां

बी.एल.आच्छा

'कथा मध्यप्रदेश' उस जगमगाते सृजनद्वीप की तरह है, जो हिन्दी के विशाल कथासागर से ही तरंगायित है और उसकी जगमगाती रोशनियाँ भी हिन्दी कहानी के विशाल सागर में ही प्रतिबिम्बित होती है। यह अवदान है अविभाजित मध्यप्रदेश के कहानीकारों का, जो समय और समाज की धड़कनों को कहानी की संरचना के बदलते रूपों में देशकाल का इतिहास बना जाते हैं। इस विराट संपादकीय कर्म के पीछे सुचिन्तित मंत्रणाओं का समन्वयी सहकार है, कहानी परम्परा की धारा को चीरकर आलोचनात्मक विमर्श की अन्तर्दृष्टि है। विभिन्न कहानी आन्दोलनों से गुजरते हुए उनके पुनर्पाठ की झलक है। प्रेमचन्द काल की कथा भूमि से लेकर भूमंडलीकरण की बाजार-भूमि तक आते हुए आलोचनात्मक विमर्श की गहरी समझ है। इसीलिए कथा मध्यप्रदेश के छह विशाल खंड महज कहानी-संकलन नहीं है। उनमें संकलन के साथ युगीन खंड अपनी ऐतिहासिक सृजनात्मकता के साथ उतर आये हैं। इनमें संकलन के साथ कहानी संरचना की प्रवृत्तियां और निरंतर बदलावों के साथ आलोचना के प्रतिफलित को उकेरने की जुगलबन्दी भी है। यह सहयोग के आर्थिक पक्ष का जितना सृजनात्मक विसर्जन है, उतना ही हिन्दी कहानी और आलोचनात्मक विमर्श का सुचिन्तित सृजन भी है। निश्चय ही इस उपक्रम के लिए प्रधान संपादक संतोष चौबे की भूमिका ऐतिहासिक है, इसके नेपथ्य में सहयोगी दल के साथ।

'कथा मध्यप्रदेश के चतुर्थ खंड में कहानी का जगमग संसार विषयक भूमिका और अंत में कहानियों-कथाकारों के प्रायोगिक विमर्श इस संग्रह को समय सजग दृष्टि और अन्वेषण के नजरिये से अर्थवत्ता देता है। कहानी नयी कहानी के लेखक नामवरसिंह ने कहानी के रचाव की पड़ताल में निहित वैचारिक परतों को चिह्नित किया था। वे सामाजिक बदलावों के इतिहास की झलक देखते हुए लिखते हैं- ''आजादी के साथ भारत में शिक्षित मध्यमवर्ग स्थापित, विकसित और संवर्द्धित हुआ, जो साहित्य के इतिहास में कहानी का जन्मदाता है।'' निश्चित ही संस्कृत साहित्य के मानवेतर गल्प की परम्परा में हिन्दी कहानी की मानविकी उसकी सामाजिक अन्तर्धाराओं, मनोवैज्ञानिक परतों, उसकी सांस्कृतिकी और विषमताओं से दशित आर्थिकी, विभिन्न समाजों की संस्थिति से उपजे प्रभावों, आँगन के पार द्वार के विदेशी प्रस्तावों, रचना शिल्प से अन्तर्ग्रथित है। यह आलोचकीय नजरिये की ही शिल्पक्रिया से उपजा विमर्श है। संतोष जी ने इसीलिए कल्पना, हंस, प्रतीक जैसी पत्रिकाओं की चर्चा ही नहीं की है, बल्कि सामाजिक पारिवारिक रिश्तों में उभरते तनावों, नवयथार्थवाद कविता की जमीन से संक्रमित होती लेखकों की कथा-भूमि, समय के संदर्भों को इतिहास बनाती यथार्थ की झलक अस्तित्ववादी प्रभावों की भी चर्चा की है, जो विशिष्ट आलोचकों ने रेखांकित किये हैं। सुरेन्द्र चौधरी के साथ विशेषतः धनंजय वर्मा की आलोचना दृष्टि के समावेशी रूप को भी वे रेखांकित करते हैं, जो कहानी की बुनावट, प्रभाव, आलोचनात्मक मूल्यांकन के प्रतिमान बिन्दु बने हैं।

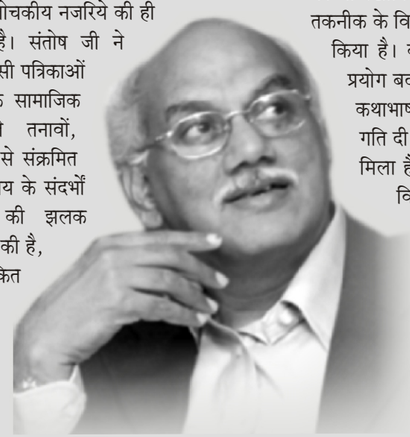

कहानियों में साक्षात्कार के पहले यह भूमिका लुभाती है,क्योंकि कहानी, नयी कहानी, अकहानी, समकालीन कहानी जैसे आंदोलनों की आंतरिक, हलचल और प्रदेश को इन आलोचकों के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। अस्तित्ववाद के प्रभाव से उपजी अकहानी में मन की टूटन के साथ एक अवसाद सिनिसिज्म के रूप में आया, जो मूल्यों की अर्थहीन संगति की मनोदशाओं को व्यंजित करता था। इन कथा-प्रवृत्तियों को आलोचकों ने गहराई से पकड़ा है, इसीलिए वे इन कहानियों में नंगे यथार्थ सेक्सिज्म और आत्मकेन्द्रीयता के साथ घटती हुई पाठकीय संप्रेक्षणीयता का साक्षात् करते हैं। पर रचाव की दृष्टि से औपचारिकताओं से मुक्त होती हिन्दी कहानी की शिल्पगत विशेषताओं की भी पड़ताल करते हैं। यही नहीं, साठोत्तरी पीढ़ी की हिन्दी कहानी के बदले हुए मिजाज और समकालीनता से उपजी नयी कथा-भाषा की भी पहचान करते हैं। इस पहचान में अनुभव की पारदर्शिता, तिक्तता, व्यंग्य, सिनिसिज्म के साथ खिलदड़ापन, हास्यबोध और आँचलिक संगीत की लय भी प्रचुरता से अन्वित है। संतोष जी ने शंभु गुप्त, विजय मोहन सिंह, खगेन्द्र ठाकुर के माध्यम से हिन्दी कहानी के विकसित होते ग्राफ को लक्षित किया है, जो कहानी के कलेवर में विश्व परिदृश्य के साथ इतिहास, समाजशास्त्र, नृत्यशास्त्र को भी देशकाल में संयोजित कर इतिहास की संदर्भबद्धता का मापदण्ड बन जाता है। कहानी में घटते हुए कथा तत्व और मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का व्यक्तिपरक गहराइयों को संजोता था, पर परवर्तीकाल में सामाजिक जीवन की जटिलता के बावजूद चेतना के उत्स को तलाशता था। समकालीन कहानी वैश्विक घटनाचक्र के परिणामों से किस प्रकार संक्रमित है, यह भी सोवियत साम्राज्य के विघटन और बाजारीकरण की अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। यही वह बिन्दु है जहाँ भूमण्डलीकरण और संचार क्रांति से प्रभावित वैश्विक परिदृश्य के साथ संवेदना को उपभोक्ता संस्कृति में बदलते कैनवास का हिस्सा बन जाता है, पर शोभित समाज में चेतना का विस्तार भी।

नीरज खरे की टिप्पणी के माध्यम से हिन्दी कहानी के शिल्पगत बदलाव को भी रेखांकित किया गया है। जहाँ संवेदना बदली है, फॉर्म भी बदला है। तकनीक के विज्युअल उपादानों ने हिन्दी कहानी की संरचना को भी प्रभावित किया है। कथा भाषा में दृश्यात्मकता, प्रतीकन, रूपक, फेन्टेसी जैसे प्रयोग बदलते जीवन की संश्लिष्टता को सहेजते हैं। कभी कभी तो यह कथाभाषा अमूर्तन की सीमा तक जटिल बन जाती है। तकनीक ने जो गति दी है, उससे उपजे प्रभावों को जहाँ महानगरीय सभ्यता से जुड़ाव मिला है, वहीं आँचलिकता के तरल संगीत के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में विस्थापन से उपजी रिक्तता के परिदृश्य भी देशकाल का इतिहास बन जाते हैं। कहीं सामाजिक आर्थिक विवशताओं की उदास मुद्राएँ हैं, तो कहीं उसका चेतस प्रतिरोध भी। यह जरूर है कि हिन्दी कहानी का आदर्शवादी चेहरा यथार्थ की पारदर्शिता में रूपांतरित होकर अपनी संवेदना के साथ लोकतांत्रिक नायकत्व को विकसित करता है। अर्थ के ध्रुवीकरण से उपजी शोषण की दुनिया के साथ आतंकवाद और कट्टरता ने सौहार्द्र को भय में तब्दील कर दिया है, तो

विस्थापन का अध्याय भी कहानी के समाजशास्त्र का विवश हिस्सा बन गया है। इन बदले परिदृश्यों में प्रतिबद्धता के सूत्र भी ढीले हुए हैं। हिन्दी कहानी में इन परिदृश्यों में भारतीय समाज महानगरीयता के संजाल के साथ अपनी आँचलिकता के विविध रंगों में भी पसरा है। तकनीक ने इन सामाजिक रिश्तों को प्रभावित किया है तो फोटोग्राफी, बिम्बात्मकता, गतिशीलता के विज्युअल का जादुई विस्तार, सांगीतिक लय की अन्विति भी दृष्टिगत होती है। हिन्दी कहानी का वर्णनात्मक शिल्प टूटा है देशकाल में चित्रात्मकता के साथ गति और लय की स्पर्शिल अनुभूति भी कथ्य का हिस्सा बनी है। तात्पर्य यही कि आजादी के बाद देश का समाज जिस तरह राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय परिवर्तनों तथा प्रौद्योगिकी के प्रभावों से बदला है। कहानी ने बदलते शिल्प के साथ उसे गढ़ा है। इसीलिए कहानी में विधागत संक्रमण और कलाओं की अन्तःक्रिया का सन्निवेश हुआ है।

लगे हाथ अंतिम हिस्से की बात भी करली जाए, फिर 'कथा मध्यप्रदेश' में संकलित कहानियों से गुजरा जाए। पुस्तक के अंत में संकलित आलेख प्रायोगिक हैं, कहानी या कहानीकार की अंतरंग दृष्टि को समग्र या कहानी विशेष के संदर्भ में विश्लेषित करते हुए। स्वयं प्रकाश ने कहानी की सृजन प्रक्रिया को स्वयं के संदर्भ में आसान दृष्टांत से समझाया है, जिसमें मानवीय संवेदन मृत्यु के अवसाद का अतिक्रमण कर सजग कर्तव्य और जीवन मूल्य बन जाता है। यही उनकी समय की टूटफूट से टकराने की निर्माणी रचनाधर्मिता है। अपने पाठक से सीधे संवाद करती उनकी कहानियों के संवेदी संसार को बलिराज पाण्डेय ने बारीकी से विश्लेषित किया है। मुकेश वर्मा ने संतोष चौबे की कहानियों के अन्तः संगीत को सुना-परखा है। दृश्यों के स्पन्दन में अपने फलसफे को अन्वित कर देना कलात्मक संतुलन है, जो समय सापेक्ष जीवन का इतिहास संदर्भ बन जाता है। विचार और कला की या संवेदना और शिल्प की यह जुगलबन्दी 'उनकी कहानियों में स्पर्धा करती है। परन्तु कहानियों की जमीन विज्ञान, प्रौद्योगिकी और तकनीक से संवलित है जिसमें मनोविज्ञान भी जटिल अन्तर्विरोधों के बजाय मानवीय संघर्षों में सहजता से लय पा जाता है।

मुकेश वर्मा ने संतोष चौबे की कहानियों से गुजरते हुए उन दौरों की भी चर्चा की है- ''लेखक चुप, किस्सागोई खामोश, और किसिम किसिम के विमर्शों ने बोलना शुरू कर दिया। आलोचक चुप, सिर्फ संपादकों के फरमान सुनाई देने लगे। कथ्य की जगह यौन संबंध आ गये। दूसरी आजादी आते-आते, जाने कहाँ बिला गयी कि देह की आजादी आ गयी। ''यह वह शून्य है जहाँ सामाजिक सरोकारों की मूल्यवादिता अपनी बुनियादी जरूरत महसूस करवाती है। वे संतोष की कहानियों के जरिये कालजयी रचनाओं को पुनः केन्द्र में लाने की वकालत करते हैं। लेकिन शंभु गुप्त ने कहानी में इतिहास के मार्फत उन्हीं सवालों को देशकाल में निहित इतिहासबद्धता के मार्फत उकेरा है। पंकज मित्र की 'हुहुकलुल्लु' के बहाने वे लिखते हैं- ''शब्द का सीना बहुत बड़ा, गहरा और बहुलतावादी होता है, ठीक किसी भी देश के बृहत्तर सामान्य जन की तरह जो रफीक की तरह फाकाकशी से तंग आकर अँधेरों का रास्ता अख्तियार नहीं कर लेता बल्कि मेहनत की रोटी खाने में। विश्वास रखने वाली रोक सनिया और कमरूद्दीन की तरह 'बेजारी और बेकारी' की चरम स्थितियों में भी जीवन को एक नये सिरे से शुरू करने की कोशिश करता है।'' हिन्दी कहानी का अवसादों के शून्य में भी यह चेतस और तेजस चरित्र है, जीवट को प्रतिमान बनाता हुआ। कई कहानियों के मार्फत शंभु गुप्त ने आलोचना के आधारभूत तत्त्वों को नयी अर्थवत्ता के साथ तलाशा है। 'देशकाल' में वे इतिहास के सामाजिक या भावात्मक सन्निवेश को महत्त्वपूर्ण मानते हैं, वहीं कालबद्धता का प्रतिमान बत जाता है। इसी तरह वे कहानी की वस्तु और अन्तर्वस्तु, फैन्टेसी और रूपक बनाम यथार्थ से सीधे बुलफाइटिंग, पाठक का संवेदनात्मक पुनर्संस्कार, समय और समाज के बहाने असली जिन्दगी का ब्यौरा, शब्द और वाक्य और उनके बीच खाली जगहों का सन्नाटा, इतिहास और इतिहास के अक्स, परंपरागत, इतिहास दृष्टि और व्यक्ति की अंतःप्रेरणा, इतिहास का संवेदनशील और तार्किक कथान्वयन, यथार्थ का आतंक और उसके प्रति खिलंदडापन जैसी आलोचना भाषा से कहानी-यात्रा की अन्तर्वस्तु का विश्लेषण करते हैं। पंकज मित्र, उदयप्रकाश, राजेन्द्र दानी, असगर वजाहत आदि कहानीकारों की कहानियों से गुजरकर वे समय की इतिहास बद्धता और सामाजिक सरोकारों की अन्तर्दृष्टि को सामने लाते हैं। लघु उपन्यास की सीमा तक जाते-जाते रह गयी, संतोष चौबे की कहानी 'नौ बिन्दुओं का खेल' पर बलराम गुमास्ता की टिप्पणी भी बहुत मौजू है - पूँजीवादी व्यवस्था के खतरनाक संजाल के बरअक्स उसका तरीका अपने निहितार्थ में मूलतः गाँधीवादी विचार की प्रतिच्छाया है। कहानीकार ने औद्योगिक विकास के भारतीय समकाल में पूँजी की खुली लूट के खिलाफ उसके प्रतिनायक को खड़ा किया है, जिसके भीतर मनुष्यता का या भारतीयता का अन्तःसंगीत है। यों शशांक की कहानियों के दृश्य विधान पर संतोष चौबे की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है- 'फैन्टेसी तभी ताकतवर हो सकती है, जबकि आपका मूल आधार ताकतवर हो। मतलब फैन्टेसी एक तरह का गुणात्मक प्रभाव डालती है। कहानी के कथ्य के ऊपर। शशांक के बहाने उन्होंने कहानी में तेज गति और बिम्बात्मकता के प्रतिरोध में उस खुरदरेपन को पैदा करने की बात की है, ताकि पाठक को रुकना पड़े। हरि भटनागर की कहानियों पर संक्षिप्त टीप में कृष्णमोहन ने लिखा है- 'ये कहानियाँ न केवल मध्यमवर्गीय नैतिकता का विखंडन करती हैं, बल्कि नई इंसानी नैतिकता के स्रोतों की ओर हमारा ध्यान खींचने की कोशिश करती है। इस सारे सैद्धांतिक विमर्श में कहानी की अन्तर्वस्तु और बुनावट को समझने की आलोचना दृष्टि निहित है। यद्यपि आलोचना की दृष्टि की अनेकांतिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता पर कहानियों के अन्तरंग को चीरकर इन सरोकारों और शिल्पगत बदलावों को समझने में यह प्रायोगिक उपक्रम अपनी अर्थवत्ता साबित करता है।

चतुर्थ खण्ड में अड़तालीस कहानीकार संकलित हैं। यदि इनके जन्मकाल को लक्षित किया जाए तो 1930 से 1960 के बीच, कुछ दिवंगत है तो अधिकतर आज तक सृजनरत। एक लंबा कालमान है, आजादी के पहले और उसके बाद का। अर्थव्यवस्था के उपनिवेशवादी तंत्र का, मिश्र अर्थव्यवस्था का और उदारवादी छोर पर क्रांतिकारी वैश्विक बदलाव से जुड़ते हुए भूमंडलीकरण की बाजारवादी अर्थव्यवस्था का। संयुक्त परिवारों के विखंडन और दांपत्य के टकरावों का। सामाजिकी के आदिवासी छोर और विस्थापन का। राजनीति के आदर्श और सत्ता के भ्रष्ट तंत्र का। गँवई परिवेश के आँचलिक परिवेश और महानगरीय सभ्यता के संजाल का। नायक के खलनायक बनते और खलनायक के प्रतिरोध में मुखर होती लोकतांत्रिक चेतना का। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अवसाद और पूँजी के औद्योगिक शिखरों का। रेलों में लकड़ी के गट्ठर गिर जाने से आदिवासी चेहरे के अवसाद और बैंकों के एनपीए से अपने घरानों को चमकीला बनाने की फाँक और नीयत का। स्त्री के आदर्श चरित्र और बदलते समाज में उसकी वैयक्तिक अस्मिता का। समाजों की विभिन्नता में पलती सहिष्णुता और कट्टरताओं के केन्द्रीकरण का। नेतृत्व के लेमिनेटेड चेहरों स्खलित होते चरित्र का। प्रेमचन्द की 'मंत्र' कहानी के भगत और आज की अस्पताली संवेदना के बाजारीकरण का। परंपराओं में धँसी सामाजिकता और नगरीकरण में उचाट होती लोक संस्कृति का। सूदखोरी के

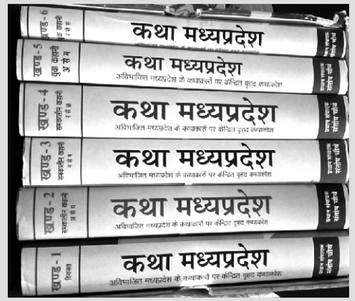

पुरानेपन पर अतिक्रामक होते हत्या के बाजार और वसूली के अंदाज की। देह की पवित्रता बनाम देह के बाजार का। पुरानी परम्पराओं के सतीत्व और उससे विद्रोह करती चेतना का। गूँगेपन में समर्थ विद्रोह और समर्थ सामाजिकता में गूँगी आवाज़ का। सत्यों में समाये भ्रम और भ्रमों में प्रकट होते सत्यों का। और किसान, मजदूर, पति, पत्नी, औरत, माता-पिता, नेता, डॉक्टर वगैरह-वगैरह संज्ञाएँ तो सारे संजाल में अपने सामाजिक-मनोवैज्ञानिक विमर्शों के साथ चरित्रों की अनंत कथाएँ बनते चले गये हैं। इस कालगत और सामाजिक विषमता की फॉक के बीच जितना देशकाल का भावबोध दृश्यमान हुआ है, कहानी का शिल्प भी अपनी वर्णनात्मकता से घटककर नये रूपों में आविष्कृत होता रहा है।

इन कहानियों में इसीलिए पारदर्शी अनुभव की रेन्ज बहुत लम्बी और व्यापक है। आदिवासी या ग्रामीण अर्थ-तंत्र के उदास चेहरों में गढ़ी भूख, विवशता, निरीहता, विस्थापन, मृत्यु, अवसाद की दृश्य भाषा अनुभव के कई कथानक रचती है अलग अलग पार्श्वों के साथ। रतन चौहान की 'काली कविता' में बोगदों के अँधेरे और कुल्हाड़ियों के घाव के बीच व्यथा की रोजमर्रा कविता का एक अंतरा है तो श्यामसुन्दर दुबे की 'बिगना' पुलिसिया अत्याचारों से आहत। शशि तिवारी की 'कन्हाई' यदि बड़े गॅवई परिवार की खोखली जेब में भूख और श्रम की उदासी को बसाये हुए हैं, तो करुणा और वात्सल्य से पराये को हिलगा देते हैं। शीतेन्द्रनाथ चौधरी की ''नसैनी'' कम उम्र के मजदूर में मजदूरी न मिलने पर जानवर जैसी चमकती आँखों सा विद्रोह भर देती है। राजेन्द्रकांत राय की कहानी 'गुलामों का गणतंत्र' गँवई पात्रों के साथ पशुओं पर पुलिसिया अत्याचारों की व्यथाकथा आजादी के गणतंत्रीय कैनवास पर रच देती है। रामकुमार तिवारी की 'कुतुब एक्सप्रेस' रोजगार के लिए शहरी विस्थापन और सूने होते गाँवों के बीच शून्य के संगीत का मर्सिया गाती है। स्नेह मोहनीश की कहानी 'डाइन' गॅवई अंधविश्वासों में जीते साधनविहीन अर्थतंत्र में जादुई कर्मकाण्ड वाले झाड़फूँकों के ऐसे चरित्र को रचती है जो देवी की तरह है पर छठवीं संतान को न बचा पाने पर 'डाइन' की तरह पिटने को विवश है। इन सारे परिदृश्यों में गॅवई जीवन का जीता-मरता दृश्यमान इतिहास है, जो सूचकांकों की अर्थव्यवस्था और वैज्ञानिक विकास के बुनियादी विवेक से कोसों दूर है और आज भी ये संकेत अवशेष नहीं बल्कि जीवन्त रूप में शेष हैं।

पारिवारिक जीवन और दांपत्य की दरारें भी इस सामाजिकी का अनुभवात्मक संदर्भ रचती हैं, जो गॅवई परिवेश में अलग किस्म का है और महानगरीय परिवेश में सन्देहों के धूमिल रंगों में छटपटाता हुआ। ललित साह की अस्वीकृत कहानी में खुद्दार माँ अपने बेटे को लौटा देती है, तो प्रेमिका के चक्कर में पत्नी को बीस साल पहले छोड़कर फिर घर लौटता है। सुबोध चतुर्वेदी की कहानी 'गुनहगार' में ऐसे ही पति को पत्नी दुत्कार कर लौटा देती है, माँ भले ही कसमसाकर रह जाती है। श्याम मुंशी की 'मुलाकाती' में अफसर बेटा अपने गरीब पिता को ही पितृत्व से छिटकाकर मुलाकाती बना देता है। पर रमेश बक्षी की कहानी 'कोई ओर' 'शहरी दांपत्य में शक की सुगबुगाहटों को बरक सी मनोवृत्तिक व्यथाओं तक ले जाती है। बेहद कसे हुए शिल्प और संवादों में यह कहानी नारी सौन्दर्य के बिम्बों को रचाती हुई प्रेम के दैहिक गुरुत्वाकर्षण को पैदा करती है, उतना ही शक की छापामारियों से सौंदर्य को कुत्सा तक पहुँचा देती है। नारी के कलाओं से प्रेम वाली वैयक्तिक अस्मिता से खिझाये और पत्नी के लेखक कलाकारों से संबंधों को लेकर हर कीमत पर इस सौन्दर्य को पाने की लालसा वाला पति इन्हीं संदेहों के भ्रमजाल में 'कोई ओर प्रेमी' की तलाश में दांपत्य को किरचा किरचा संदेहों में उलझा देता है। कथा भाषा में मनोवृत्तियों, आवेगों, बॉडी लेंग्वेज के दृश्य रूपों का नियोजन इस कहानी की थीम को पुरअसर बनाता है। पर संतोष श्रीवास्तव की 'गूँगी' कहानी में अमीर पति का लांग ड्राइव पर प्रेमिका से सहवास और पत्नी को दरकिनार करती स्थिति के समान्तर उस गूँगी नौकरानी को रचा गया है, जो गूँगेपन में भी विद्रोह करती है। सतीश दुबे की 'सप्तशृंगी' पारिवारिक अर्थशास्त्र में उन दरारों को सामने लाती है, जो रिश्तों को बिखराती है और उनका असर बच्चों के भोलेमानस पर होता है। शुक्ला चौधरी की कहानी 'सुनो तो' जहाँ वृद्धावस्था में युवाओं से प्रदर्शनी स्पन्दनों में प्रेम की अंतरंगता को मूल्य बनाता है तो स्वाति तिवारी की कहानी 'प्रायश्चित' में स्त्री के दैहिक भटकाव में पति की यही अंतरंग चाहत प्रायश्चित की अंतहीन कसक बन जाती है। राधेलाल बिजधावने की कहानी 'चौथा बिम्ब' में प्रेम और दांपत्य का यह मूल्य ग्लोबल दुनिया के चमकीले संसार की चमक में ही खो जाता है- 'भव्य और आलीशन जीवन के सुख के साथ।' इन सभी कहानियों में गँवई-शहरी-ग्लोबल परिदृश्यों में अंतरंगता, भटकाव, बिखराव, टूटन से गुजरते परिदृश्यों को काल के संदर्भ में समझा जा सकता है जहाँ चरित्र का एक आदर्श त्याग की उच्च अंतरंगता में चरितनायक बन जाता था, और बदलते सामाजिक परिदृश्यों में वह अंतरंगता से खिसककर देह और चमकीले संसाधनों में जीवन मूल्यों की सफलता को आँकता है। इतना तो झलकता ही है कि हिन्दी कहानी ने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान जैसे विषयों से गुजरते हुए अपने समय और समाज के अंतरंग-बहिरंग पार्श्वों को शिराओं सहित उकेरने की कोशिश की है। इनमें एक उगता हुआ तेजस रूप भी है, जो विवशताओं में घुलता नहीं बल्कि विद्रोही बनकर सामने आता है। गँवई जीवन से ग्लोबल दुनिया के रंगीन परिदृश्यों में परिवार और दांपत्य के ये पार्श्व हिन्दी कहानी को अपने समकाल के यथार्थ से कालबद्ध करते हैं।

जाति, धर्म, संप्रदाय के सौहार्द्र और कड़वाहटें केवल बाह्य संघर्षों तक ही नहीं ले जाती वह मनोवृत्तिक संकीर्णताओं का अन्तर्जाल बन जाती है। संवेदनाओं की कसक सौहार्द्र के मूल्यों को संजोती है और कट्टरताएँ रंगों-रूपों में जुलूस बना जाती है। लक्ष्मेन्द्र चौपड़ा की 'लालटेन' भोपाल के भूगोल में प्रतीकात्मक रूप से सिमटी है, पर पटियों की संस्कृति में सौहार्द्र के इतिहास और दरकते जातीय संबंधों का बिना सन संवत का इतिहास रच देती है। अपने रचाव में शहरी मौलिकता को बुनते हुए वह सभी वर्गों की दुनिया को रोशन करती है- 'खाँ लालटेन तो पानी के अंदर जलने दो उसके अपने जलते रहने से ताल में कोई मगरमच्छ नहीं आएगा और मछलियाँ बेफिक्र होके तैर सकेंगी।'' मगरमच्छ लालटेन से डरता है। यही सौहार्द्र की प्रतीकात्मक रोशनी पटिया संस्कृति की अंतरंग पहचान है, जो दंगों में झुलसकर भी इन्सान की जान पिचान किस दिन के लिए होती है- के रूप में मददगार बना देती है। हरि भटनागर की कहानी ''बिल्ली नहीं दीवार'' सांकेतिक है जो जिगरी दोस्ती से महाभारत में बदलकर प्रतिशोध की निर्ममता बन जाती है। हिन्दू-मुस्लिम के विकारी मनोभावों में युद्धात्मक आवेशों के बीच बिल्ली की निर्विकारता और जमावट सांकेतिक अर्थवत्ता दे जाती है। रोमेश जोशी ने

मानवेतर पशु-प्रतीकों की बफादारी से संप्रदायों की संकीर्णता पर गहरा व्यंग्य किया है, 'स्वीटी' कहानी में। राजेन्द्र लहरिया की कहानी 'दीक्षांत' सर्वोत्थानवादी आदर्शों में जाति और राजनीति के दंश को पीड़क उत्तेजना बना देते हैं। विनोद मिश्र की कहानी मिसेज मैसी के जीवन की एक उदास रात का फलक इन संदर्भों को छूते हुए भी बहुत अलग और समर्पण की गहराइयों से उजला है। 'मिसेज मैसी' ने पादरी के कहने के बावजूद नन बनना स्वीकार नहीं किया। उसे हर बार प्रतिकार सहना पड़ा। गिरजाघर से तिरस्कृत रहकर भी यीशु के चित्र के सामने प्रार्थना करती रही। पर दंगों में जब लाशें भी हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई पूजागृहों में जातिवार रखी गयी तो वे पति की लाश के लिए प्रतिनायक से कट्टर फादर की हर शर्त मंजूर करने के लिए तैयार हो गयी। गहरे संकेतों, मानवीय अर्थवत्ता से भरे फलसफों और एकांतिक प्रेम के मूल्यों से पगा यह चरित्र कट्टर सांप्रदायिकताओं में कैसे बिखर जाता है। मार्मिकता उसके रचाव में स्पर्शिल है। हरीश पाठक की कहानी 'दो तुम्बे वाला सितार' भी प्रतीक के माध्यम से बिखरावों की ज़मीन पर उस साम्प्रदायिक सौहार्द्र को अर्थवत्ता देती है।

भूमंडलीकरण-बाजारीकरण ने भी हिन्दी कहानी को कई अक्स दिये हैं, प्रेम के अंतरंग मूल्यों पर उसकी प्रतिच्छाया है, सौन्दर्य को बाजार का औजार बनाने वाली दैहिकता भी प्रलुब्धक बनी है। सौन्दर्य और बाजार का विलयन प्रलोभन का निमित्त बना है। उदारीकरण की चमक दमक में नेपथ्य के अँधेरे को ढकने की कोशिशें बाजारी चाल का हिस्सा बनी हैं। राजनारायण बोहरे की कहानी 'बिजनेस वेब डॉट कॉम' नारी सौन्दर्य में रिश्तों के आस्वादी विलयन से प्रलोभन का बाजारवादी रचाव करती है, जो कुल मिलाकर 'मनीराम' को मूल्य बना देता है, इसमें रिश्तों के मूल्य बाजार की असफलता में अपनी सार्थकता पाते हैं, पर इसके पीछे के अवसाद को भी कहानीकार ने पुरअसर बनाया है। राजेन्द्र दानी की कहानी 'नेपथ्य का अँधेरा' में अस्पतालों की ग्लोबल चमक दमक और मुस्कान के चाल-चेहरों के नेपथ्य में लूट के संवेदनहीन अँधेरों को उकेरा गया है। यों 'चौथा बिम्ब में भी प्रेम के अंतरंग मूल्य पर बहिरंग की आलीशान मान्यता अपने रंग जमाती है। विष्णु नागर की कहानी 'प्रोफेशनल्स' अपने संवादी बुनावट में हत्या के व्यापार को वसूली का बाजार मूल्य बना देती है। विलास गुप्ते की कहानी 'पन्नालाल के जूते' भी बाजार की आँच से रिश्तों में होते परिवर्तनों तक ले जाती है, पिता-पुत्र और उपयोगिता के अन्य स्थलों पर सार्थक होते हुए जूते प्रतीकात्मक रूप से माँ-बाप को घरबदर कर देने वाली प्रतीकात्मकता तक व्यंजित हो जाते हैं।

संकलन की कुछ कहानयाँ मनोविश्लेषण के बजाय मनोवृत्तिक हैं, पर प्रभावी। सूर्यकान्त नागर की 'तमाचा' कहानी सिकुड़े हुए दिल की आशंकाओं में उस पात्र को खड़ा करती है जो अपना गुर्दा इसी सिकुड़े दिल के बेटे को समर्पित करने का प्रस्ताव रखता है। यह सिकुड़े दिल की आशंकाओं पर समर्पित भाव का जाग्रत तमाचा है। सुषमा मुनीन्द्र की कहानी 'भव्यता में भयावह भी होता है' एक फलसफे को रचती है। मृत पात्र के जीवित होने का भ्रम ही टूटते हुए मातृत्व को जीवन की संगति देता है।

कुछ कहानियाँ विशिष्ट हैं जिनकी चर्चा की जानी चाहिए। ज्ञान चतुर्वेदी की कहानी 'दंगे में मुर्गा' व्यंग्य और यथार्थ से लबालब है। इसमें किस्सागोई भी है, निबंध के पेंच भी है, औचलिकता के मुहावरे भी है, मानवेतर से मानव को लपेटने का कौशल भी है, वर्णनात्मक शिल्प को कथागति देने के मोड़ भी हैं, परवह साहस भी है जो दंगों के बाद जाँच आयोगों की कार्यप्रणाली पर मार करता है- देखो री आँखों, सुनो रे कान! न्याय घूमता है अपराधी की छत्रछाया में। क्या मिलेगा 'न्याय यहाँ? कौन सजा देगा इस सिपाही को जो सारे न्याय-तंत्र का पुर्जा है?'' और इन्हीं के साथ खाते उस मुर्गे की टांग का सन्देह उसे उल्टी करने तक ले जाता है। व्यंग्य-कहानी के बजाय यह निखालिस व्यंग्य भी कहा जा सकता है, पर कथा-कहन की बनावट और समूचे परिदृश्य की बुनावट व्यंग्य की अनुगूंज लिए कहानी के गति-विन्यास में रची बसी है।

संतोष चौबे की कहानी 'नौ बिन्दुओं का खेल' भी लघु उपन्यास की सीमा तक जाती लंबी कहानी है, पर नये किस्म की। जैसे अज्ञेय ने विराम चिह्नों के माध्यम से कविता की भाषा को अर्थवत्ता देने की कोशिश की, उसी तरह संतोष चौबे रेखाचित्रों, गणीतीय प्रयोगों, त्रिभुजों, त्रिज्याओं को लाने में नहीं चूकते। शायद ये भी बिम्बों प्रतीकों के स्थानापन्न बनकर पारदर्शी अर्थों का नियोजन करते हैं। यही नहीं कहीं निबंध के से बिन्दु भी कथाभाग में शामिल हो जाते हैं और वे ही अर्थव्यवस्था के नकारात्मक-सकारात्मक विचार तत्वों से नायक-प्रतिनायक को गढ़ते हैं। वर्तमान औद्योगिकरण के दाँव-पेचों की यह कथा निबंध, सांख्यिकी, रेखाचित्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान, प्रोजेक्ट्स, बैंकिंग जैसे कथेतर विषयों को कहानी के बहाव में ला देते हैं। बैंकों के कर्जों को एन.पी.ए. में ला देने की नकारात्मक औद्योगिक मानसिकता के भीतर कार्तिक का सकारात्मक अन्तःसंगीत अंत में प्रतीकात्मक बढ़कर उस दिशा में ले जाता है जहाँ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए आस्था और प्रगति की किरणें व्यक्ति और राष्ट्र यानी औद्योगिक घराने और जनता की पीड़ा या सुख को एकतान कर देते हैं बाँसुरी के प्रतीकात्मक आलाप में।

इस खंड की अन्य कहानियों में स्वयंप्रकाश की कहानी 'हत्या' शशांक की कहानी 'हलाल', वीणा सिंह की कहानी 'चुनमाई' वीरा चतुर्वेदी की 'बैठक में लगी तस्वीर' विशिष्ट है। स्वयं प्रकाश की कहानी में सहजता है और सहजता में ही अर्थसंकेत देने की कोशिश राजेश जोशी की कहानी फेन्टेसी के विशिष्ट शिल्प में पर्यावरणीय चिन्ताओं और सरकारी तंत्र की कारगुजारियों को बयाँ करती है। पर पाठकों से संबोधित होकर संवेदनात्मक सहकार ही नहीं पाती बल्कि, उसका हिस्सा बन जाती है।

इन कहानियों से गुजरते हुए लगता है कि परिवेश चाहे आदिम हो या ग्लोबल दुनिया का, उसके यथार्थ और असर से हिन्दी कहानी ने नये कथानक गढ़े हैं। इनमें वे प्रतिध्वनियाँ गूँजती हैं और कहन के लिए शिल्प के नये

तुम्हारे जाने के बाद : चेतना का स्पन्दन

रमेश दवे

कृष्णकान्त निलोसे एक ऐसे वरिष्ठ कवि हैं जो संबंधों में जीना जानते हैं। 'तुम्हारे जाने के बाद' निलोसे का सद्य : प्रकाशित कविता-संग्रह है जो उनकी पत्नी इन्दु के दिवंगत हो जाने के बाद उनकी मार्मिक स्मृति में व्यक्त काव्य-करुणा की तरह है। कभी-कभी भावुकता भी प्रिय लगती है और जो आलोचक काव्य या साहित्य में वस्तुनिष्ठता के पक्षधर हैं, वे भावुकता को श्रेष्ठ काव्य-अभिव्यक्ति नहीं मानते। भारतीय समाज पश्चिमी समाज की तरह यांत्रिक-बौद्धिकता से ग्रस्त तो नहीं है। तमाम यांत्रिकताओं और आधुनिक उपकरणों के हस्तक्षेप के बावजूद, भारतीय समाज अभी भी अपनी सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक चेतना से स्पंदित है। सम्बन्धों के स्वाभाविक अनुबंध हमारी सामाजिक संवादिता की पहचान है। उसी पहचान को निलोसे ने अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति बनाकर काव्य-भूमि पर उतारा है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि ये कोरी भावुकता की रोमेंटिक कविताएँ हैं बल्कि यह सच है कि इन कविताओं में कवि के हृदय ही धड़कन सुनाई देती है। कथाकार पेण्टर और पत्रकार प्रभु जोशी ने इस संग्रह को लेकर ठीक ही कहा है कि अनुपस्थिति की उपस्थिति भी एक गहरी काव्यात्मक को रचकर उसमें प्रेम के अलौकिक को आविष्कृत कैसे कर सकती है, इसका सर्वथा प्रीतिकर और पठनीय संस्करण बनाती है, कृष्णकांत निलोसे की यह कविताएँ। उसके जाने के बाद के शून्य में सृजन का यह अद्भुत अभिकरण और उपक्रम है।''

कविता संग्रह : तुम्हारे जाने के बाद
कवि : कृष्णकांत निलोसे
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन
मूल्य : रू.150/-

कृष्णकान्त निलोसे मानते हैं कि ये कविताएँ दुःख की जड़ से उपजी कविताएँ हैं और जिनका पोषण विषाद की गोद में हुआ। उसके जाने के बाद क्या हुआ- कवि की अनुभूति है- *''इन दिनों उसके जाने के बाद/कोई नहीं पूछता/ मैं होता हूँ कहाँ/और...करता हूँ क्या ?।''* इसलिए निलोसे का दर्द है मुझे अपने होने से ऊब होने लगी है।'' अब कवि के जीवन में पत्नी क्या है, यह इन पंक्तियों में व्यक्त है *''वह पहले रूप थी/आकार भी थी/शनैःशनैः। वह एक विचार की तरह/आत्मस्थ होने लगी।* पत्नी का विचार के रूप में आत्मस्थ हो जाने का यह बिम्ब सर्वथा नया है और विचार ऐसी संज्ञा होती है, जो कभी शून्य में विलीन नहीं होती। कवि को कभी-कभी एक प्रकार का क्षोभ और प्रायश्चित भरा बोध भी होता है जब वह कहता है- *''सुनो इन्दु सुनो/सच कहता हूँ। / मैंने तुम्हारे होने को/गंभीरता से कभी लिया ही नहीं/* निलोसे एक स्वाभाविक कवि हैं। उनकी चेतना सदैव उनकी सामाजिकता में स्पंदित होती रहती है। वे शब्द के मनुष्यों से संबंध पहचान कर शब्द और मनुष्य के सम्बन्धों की काव्यमयी रचना करते हैं। उनके पास पारिवारिक, सामाजिक और प्रतिबद्ध से लेकर मुक्त तक के वैचारिक अनुभव हैं जिन्हें वे अपनी कविता की ज़मीन मानकर शब्दों का कविताओं में रूपान्तरण करते हैं। उनके पास *'स्मृतियों के दरवाजें खटखटा एकान्त में। हवा की तरह प्रवेश कर/कविता के रूप में पत्नी का स्पर्श आता है। इसे वे आस्था की ज़मीन पर/प्रेम की परीक्षा/* मानते हैं। कहीं कहीं निलोसे अति भावुक होकर कहते हैं- *''अब वह नहीं है/मैं, फिर अकेला हूँ/उसके जाने का दर्द। सदन बन। झरता रहता है।''* निलोसे *''आत्मा का सदन/आँसू की भाषा में/व्यक्त करते हैं तो लगता है वे ''*स्मृतियों को दुख के पहाड़ की तरह भोगने को विवश है। कहीं कहीं निलोसे के बिम्ब इतने नए हैं कि आश्चर्यचकित करते हैं- *'चींटी के पगबंधी पेंजन की तरह लय है।* - *''कविता एक द्वीप है। तुम्हारे लौट आने की राह में/ पानी से कैसे जुदा हो सकता उसका गीलापन''* इन पंक्तियों के बाद कवि अंतिम कविता में दार्शनिक मुद्रा अपनाते हुए कहता है हम तुम देह बनकर मिले ही कब। ये कविताएँ हर वियोगी मन की मर्माहत पुकार की तरह है। निलोसे ने इन कविताओं में भाषा और बिम्ब का उत्कृष्ट संयोजन किया है और अपनी व्यक्तिगतता को समाज की प्रचलित दुःखकातर, विरहाकुल पीड़ाओं में नियोजित किया है। पत्नी वियोग की अति-भावुकता कहीं कहीं कविता के वैचारिक स्वरूप को ढँक देती है और यदि निलोसे अपनी काव्य रचना का शिल्प थोड़ा वस्तुनिष्ठ, निर्भावुक और निर्लिप्त कर ले तो उनसे बेहतर कविताओं की उम्मीद की जा सकती है।

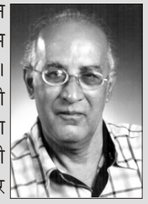

मो.नं.94065-27071

''फिल्मी गीतों के अनचिन्हें पक्षों को अनावृत करती अनुपम कृति

सूर्यकांत नागर

टीवी और सिनेमा भारतीय जन के एक तरह से अभिन्न अंग बन चुके हैं । फिल्मी गीतों के शौकीन और प्रशंसकों की कमी नहीं है । यह आवश्यक है

कि नई पीढ़ी जहाँ आज की फिल्मों के धूम-धड़ाके वाले गीतों पर थिरकना पसंद करती है, वहीं एक बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो पुरानी क्लासिक फिल्मों के गीतों के बोल और उन पर बनाई गई मोहक धुनों पर मोहित है । अनजाने-अनचाहे पुराने गीतों की पंक्तियाँ उनके होठों पर तैर जाती हैं । साहित्यकार डॉ. सुनील केशव देवधर ने कुछ पुरानी फिल्मी गीतों के अंतर्निहित भावों, प्रतीकों और सदिर्य की विशद् व्याख्या की है। कई बार ऐसा भी होता है कि गहन अर्थ वाले शब्द संगीत के माधुर्य में दब-से जाते हैं। लय याद रह जाती है, शब्द ओट में चले जाते हैं । लेखक का आशय ऐसे अर्थगर्भी बोलों को प्रकाश में लाने का है ।

डॉ. देवधर ने बहुत शोध, श्रम और चिंतन के बाद गीतों की व्याख्या की है । इससे अनेक अनखुले-अधखुले पृष्ठ सामने आए हैं । अपने कथन को पुख्ता करने के लिए उन्होंने वेद, पुराण, कुरान, धर्म-ग्रंथ और साहित्यिक कृतियों के उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। वेदों में भी सर्वाधिक उल्लेख अथर्ववेद का हुआ है । यही नहीं कबीर, तुलसी, बिहारी, दिनकर, धूमिल, बालकवि बैरागी, मुकुट बिहारी सरोज, विजेन्द्र आदि कवियों की काव्य-पंक्तियों को भी उद्धृत किया है। निश्चित ही लेखक ने अपने काम को गंभीरता से लिया है ।

डॉ. देवधर ने सन् 1952 से लेकर 1986 तक के उल्लेखनीय गीतकारों के गीतों की समीक्षा की है । इनमें एक तरफ साहिर लुधयानवी, नीरज, शकील बदायूँनी, जावेद अख्तर, गुलजार, भरत व्यास जैसे साहित्यिक पृष्ठभूमि वाले शायर शामिल हैं तो दूसरी तरफ साहित्यिक मान्यता नहीं पाने वाले आनंद बक्षी, शैलेन्द्र, राजेन्द्र कृष्ण, गुलशन बावरा जैसे गीतकार भी सम्मिलित हैं । आनंद बक्षी और राजेन्द्र कृष्ण द्वारा सृजित गीतों की संख्या के मद्देनजर उनकी लोकप्रियता का अंदाजा लगाया

बड़े अनमोल गीतों के बोल
लेखक - डॉ. सुनील केशव देवधर
प्रकाशक - बुक मार्क पब्लिकेशन
कर्वे रोड़, पुणे- 411004
मूल्य : रू. 450/-

जा सकता है। नौशाद की फिल्मों में अक्सर शकील बदायूंनी और मजरूह सुल्तानपुरी ने ही गीत लिखे हैं । हर काल में संगीतकारों और गीताकारों की विशिष्ठ जोड़ी रही है ।

साहिर लुधियानवी सन् 1957 से 1976-77 तक फिल्मी दुनिया में छाए रहे । वजह है उनके गीतों की गहराई और भाव-प्रवणता। उनकी रचनाओं में प्रेम की उदारता और सामाजिक प्रतिबद्धता के स्वर प्रमुख हैं । उनके अनुसार सामूहिक और सहकारी प्रयासों से लक्ष्य-प्राप्ति आसान होती है । अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता । इस संदर्भ में 'नया दौर' फिल्म के लिए लिखे गीत की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य है- *'साथी हाथ बढ़ाना/एक अकेला थक जाएगा/मिलकर बोझ उठाना ।'* शोषण से बचने के लिए दूसरों के लाभ के लिए श्रम करने के बेहतर है अपने लिए मेहनत करना-*'मेहनत अपने लेख की रेखा/मेहनत से क्या डरना/कल गैरों की खातिर की/ अब अपने खातिर करना।'* साम्प्रदायिकता के खिलाफ आवाज उठाती उनकी ये पंक्तियाँ देखिए- *'तू हिन्दू बनेगा, न मुसलमान बनेगा/इंसान की औलाद है, इसांन बनेगा ।'निराश न हो आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देता ''हम दोनों'* फिल्म के गीत की यह बानगी देखिए-'मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया/हर फिक्र को धुंए में उड़ाता चला गया ।' यहाँ धुएँ में उड़ाने के खास माने हैं। साहिर की दृष्टि-सम्पन्नता दर्शाती अनेक पंक्तियों की सटीक व्याख्या लेखक ने की है ।

'आनंदमठ' में बंकीम चटर्जी के लिखे 'वंदेमातरम्' गीत के बारे में लेखक ने बताया कि मूलतः इस गीत की रचना 1875 में की गई थी। 'आनंदमठ' उपन्यास, जिस पर फिल्म आधारित है, का प्रकाशन 1880 में हुआ था और आनंदमठ फिल्म 1952 में बनी थी । इससे कॉफी पहले सन् 1886 और 1896 में 'वंदेमातरम्' को कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गाया गया था। तब इसके संगीतकार थे, यदुनाथ भट्टाचार्य। ऐसी अनेक जानकारियाँ जुटाकर लेखक ने कृति को एक संदर्भ-ग्रंथ बना दिया है ।

मुगल-ए-आजम (1960) के सर्वकालिक गीत *'जब प्यार किया तो डरना क्या/छुप-छुप आहें भरना क्या'* (शकील बदायूँनी) पर टिप्पणी करते हुए देवधरजी ने लिखी है कि प्रेम में डर नहीं होता। जो डरेगा वह प्यास कैसे करेगा! प्रेम तर्कातीत होता है। वह सशर्त नहीं होता। भय और प्रेम को लेकर युवा (') कवि आशुतोष दुबे ने उम्दा कविता लिखी है । प्रेम और आंख के रिश्ते को खूबसूरती से चित्रित किया है, राजा मेंहदी अली खान ने फिल्म *'आप की परछाइयाँ' में। शायर कहता है-'* शोख नजरें ये शरारत से बाज न आएंगी/कभी रूठेगी, कभी मिल के पलट जाएंगी आदि । वस्तुतः प्यार हृदय से होता है और उसका इजहार आंखों से । आंखें दिल का हाल बयां कर देती हैं । आंखें अपने अंदर पूरा समंदर छिपाए रहती हैं । वे गुस्सा, प्यार, नफरत सब अनकहे ही व्यक्त देती हैं । अपने कथन के समर्थन में देवधर ने रीतिकालीन कवि बिहारी को कोट किया है-*'कहत, नटत, रीझत, खिझत, जुरत बतियात/भरे मौन में करत हैं, नैनन ही सौबात।'* प्रेम में डर नहीं होता इसी भाव-बोध के और गीत की जानकारी भी दी गई है । गुलशन बावरा लिखित गीत है-*''खुल्लम खुल्ला प्यार करेंगे हम दोनों/इस दुनिया से नहीं डरेंगे हम दोनों।''* (फिल्म खेल खेल में)। प्यार मुखर नहीं मौन होता है, इस को रेखांकित किया है गुलजार ने 'खामोशी' फिल्म के गीत इन पंक्तियों में *'हमने देखी है उन आंखों की महकती खुशबू'..... या ..... 'प्यार कोई बोल नहीं प्यार आवाज नहीं/एक खामोशी है, सुनती है, कहा करती है'.....या..... 'होंठ कुछ कहते नहीं, काँपते होठों पे मगर। कितने खामोश से अफसाने रूके रहते हैं।'* सिर्फ एहसास है, ये रूह से महसूस करो ।' सुनील देवधर यहीं नहीं रूके। उनकी तलाश जारी रही। भौतिक और दैहिक प्रेम से अलग प्रभु से प्रेम की बात करते हैं हिन्दी प्रेमी काव्य-मर्मज्ञ भरत व्यास। वे दूसरों के प्रति सद्भाव रख प्रेम की गंगा बहाने की बात करते हैं, जीवन-मूल्यों की भी (फिल्म संत ज्ञानेश्वर के गीत ज्योत से ज्योत जलाते चलो)। एक साहित्यिक की मान्यता न होने के बावजूद आनंद बक्षी फिल्मी गीतकार के रूप में खूब पहचाने गए। विभाजन के बाद 1947 में वे भारत आए थे । उनकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन्होंने लगभग 632 फिल्मों के लिए गीत लिखे। आर.डी.बर्मन के संगीत में 'अमर-प्रेम' फिल्म का उनका यह गीत अमर हो गया- कुछ बोल के कारण और कुछ थरथरा देने वाली मधुर धुन और किशोर कुमारजी गायकी के कारण। समाज की सोच का जिक्र करते हुए वे कहते हैं-*''कुछ तो लोग कहेंगे/लोगों का काम है कहना/छोड़ों बेकार की बातों को। कहीं बीतने जाए रैना।''*

शैलेन्द्र, मुकेश, शंकर जयकिशन और राजकपूर की चौकड़ी ने कई यादगार गीत दिए। शैलेन्द्र के गीतों में गहरा जीवन-दर्शन और संवेदनात्मक गहराई होती थी । फणीश्वरनाथ रेणु की कथा पर आधारित 'तीसरी कसम' में मनुष्य जीवन की नश्वरता की जानकारी के बावजूद मनुष्य द्वारा की जाने वाली व्यर्थ की भाग-दौड़, आपाधापी, जोड़-तोड़, लोभ-लालच पर विचारोत्तेजक टिप्पणी की है कवि शैलेन्द्र ने-*'सजन रे झूठ मत बोलो। खुदा के पास जाना है। न हाथी है, न घोड़ा हैं। पैदल ही जाना है।'* सब कुछ यहीं छूट जाना है । फिर इतनी हाय-तौबा क्यों ' गीत की अंतिम दो पंक्तियों को विशेष रूप से चिन्हित करते हुए लेखक ने इस संदर्भ में वेद की सूक्तियों, कबीर की वाणी और नजीर अकबराबादी की नजम को बतौर नजीर पेश किया है ।

गीतकार रवीन्द्र जैन के गीत 'एक राधा एक मीरा' (राम तेरी गंगा मेली) के संदर्भ में सुनील देवधर ने कृष्ण के प्रति राधा और मीरा के प्रेम में महीन पक्षों को अच्छे से प्रस्तुत किया है- 'कृष्ण के साथ मधुबन में विचरती राधा, पनघट यमुना तीरे डाल-डाल पर कृष्ण के साथ झूला झूलती राधा, देह को मन और मन को मनमोहन बनाती राधा । दूसरी ओर मीरा ने मोहन केा मन में बसाया। उसने कृष्ण की केवल मूरत देखी, लेकिन राधा ने सूरत भी । राधा प्रेम है और मीरा दास दीवानी और दर्द दीवानी भी ।

'बड़े अनमोल, गीतों के बोल' निःसंदेह बहुत परिश्रम से लिखी गई रचना है। लेकिन सृजनात्मकता में श्रम ही पर्याप्त नहीं होता । उस तरह की रूचि, लगाव, समर्पण, संवेदना, अध्ययन, कल्पनाशीलता और विषयानुकुल भाषा न हो तो केवल कलम की गोदागोदी से कुछ नहीं होता । ये तमाम तत्व हमें देवधर के कृत्तिव में मिलते है। एक कुशल समीक्षक की भांति उन्होंने गीतों की विशेषताओं को गिनाया है । बिस्मिल जैसे देशभक्त शहीद से लेकर आनंद बक्षी जैसे ठेठ फिल्मी गीतकारों के गीतों को साहित्यिक और अध्यात्मिक संदर्भों से जोड़कर विश्लेषित किया है। स्पष्ट है सुनीलजी की साहित्यिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जड़े बहुत मजबूद हैं । गहन अध्ययन और सूक्ष्म दृष्टि की छाप उनकी कृति की हर पंक्ति पर अंकित है।

81, बैराठी कालोनी नं. 2, इन्दौर-452014 (म.प्र.)
मो.नं. 098938-10050

''शब्दों से परे'' प्रेम, प्रकृतिबोध और सौन्दर्य की कविता

कैलाश मण्डलेकर

कृति : शब्दों से परे
रचनाकार : त्रिलोक महावर
प्रकाशन : पहले पहल प्रकाशन भोपाल
मूल्य : रू. 200/-

शब्दों से परे त्रिलोक महावर की कविताओं की पांचवीं किताब है। इससे पूर्व उनके 'विस्मित न होना, 'नदी के लिए सोचो', 'इतना ही नमक' तथा 'हिज्जे सुधारता है चाँद' नामक काव्य संग्रह आ चुके हैं। शब्दों से परे नामक प्रस्तुत संग्रह सिर्फ गणना के हिसाब से ही पाँचवा नहीं है अनुभूति की सघनता और वैचारिक दृष्टि से भी रचनाकार की सुदीर्घ अंतर्यात्रा का परिचय देता है। त्रिलोक महावर के पास अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, मनुष्यों और प्रकृति को देखने बूझने की अद्भुत क्षमता है। वे धैर्य के साथ प्रतीक्षा करते हैं, इस हद तक कि अनुभव विचार की शक्ल ग्रहण कर ले। अनुभूति जब देर तक ठहरती है तब वह भाशा की बैसाखियाँ नहीं तलाशती। अनुभव पर कर धीरे-धीरे विचार में परिणत होने लगता है। यही कारण है कि त्रिलोक की कविताओं में शब्दों का अतिरेक तथा वाग्विलास नहीं दिखाई देता। भाषा के आडंबर की अपेक्षा भाव की सघनता त्रिलोक की कविताओं की अन्यतम विशेषता कही जा सकती है। उनकी कविताएँ आकर में छोटी लेकिन विचार संपन्न होती हैं। जैसे एक छोटे से कप्सूल में जीवन संपदा को बचाने की समूची औषध को सहेज लिया गया हो। इन कविताओं की तासीर को व्यक्त करने के लिए नामवर जी ने तुलसी की उक्त अर्धाली को ठीक ही उर्द्धत किया है। ''अर्थ अमित अति आखर''। दरअसल शब्द की न्यूनतम अनिवार्यता में सघन और आत्यन्तिक अर्थ स्फीति ही शब्दों से परे का यथेष्ट दिखाई देता है।

इसे यदि आरोप की तरह न लिया जाए तो यह सच है कि इन दिनों पत्र पत्रिकाओं में जो कविताएं पढ़ने में आ रही हैं उनमें एक किस्म की हड़बड़ी और तात्कालिकता दिखाई देती है। कहीं कहीं तो यह भी लगता है कि सीधे-सीधे अख़बारों की हेड लाइंस का सुनियोजित तरीके से तर्जुमा प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या यह खबरों का कविता हो जाने का समय है। शब्दों से परे की कवितायें हमें आश्वस्त करती हैं कि रचनाकार के पास पर्याप्त अवकाश है। दरअसल जीवन को समग्रता में जानने और जीने की प्यास रखने वाला कवि हड़बड़ी में नहीं होता। वह धैर्य तथा दृढ़ता से महसूस करता है कि जीवन और कविता में दवैत नहीं है। भले ही फौरी तौर पर संवेदनाएं जड़ीभूत होती नजर आयें पर उसे यकीन होता है कि बर्फ से लदे चिनार के नीचे एक न एक दिन नदी फिर बहेगी, धूप के साथ साथ। (एक दिन नदी फिर बहेगी पृ.11) त्रिलोक महावर के उक्त संग्रह का नाम शब्दों से परे कदाचित इसलिए है कि इन कविताओं में अनुभूति और साक्ष्य के बरअक्स शब्द की अनिवार्यता गौण होती नजर आती है। इनमें प्रेम प्रकृति और संघर्ष का विरल सामंजस्य है। उन्होंने अपने वक्तव्य में भी इस बात को रेखांकित किया है कि जीवन के याथार्थ और स्पन्दनों से कविता को अलग नहीं किया जा सकता। कविता अनुभव से आती है जो समय को बाँधती है, समय की पड़ताल करती है। जमीन से जुड़ी कविता आपको ऊपर ले जा सकती है। जिसकी जड़ें कट गई, शाखें सूख गई उसके पत्त कभी हरे नहीं हो सकते। यही कविता है, यही समय है। इस समय को जिसने पहचान लिया वही सही है। (त्रिलोक महावर का वक्तव्य)

उपरोक्त वक्तव्य में जो जीवन के स्पंदन की बात है, वह त्रिलोक की कविताओं में पंक्ति दर पंक्ति नजर आता है। वे प्रकृति को पर्यटक की नजर से नहीं देखते, वरन उसके सौन्दर्य और पीड़ा को भोक्ता की तरह आत्मसात करते हुए अपने दैनंदीन से जोड़ते हैं। यही कारण है कि तीर्थगढ़के प्रपात में रचनाकार सिर्फ सुन्दरता ही नहीं देखता वह पहाड़ के दर्द को भी महसूसता है। उसकी मान्यता है कि पहाड़ों के शिखर पर लौट तलहटी में सिर्फ सुन्दरता ही नहीं होती वहाँ के वाशिंदों का संघर्ष और पीड़ाएं भी होती हैं। पहाड़ों के पार्श्व के जीवन से जुड़ना वस्तुतः उस समूचे दर्द से भी जुड़ना है जो वहाँ बाहरी तौर पर भले ही अलक्षित हो पर जड़ों में अवस्थित है। और यह जुड़ाव ही आदमी के मनुष्य होने की शर्त है। इधर जो हमारी नागर सभ्यता विकसित हो रही है वह टेक्नोलॉजी और अधुनातन विज्ञान से भले ही संपन्न हो लेकिन उसने हमें अपने गाँवों, पहाड़ों और जंगलों से निर्ममता से काट दिया है। इसे हम उपलब्धि के तौर पर आंकते हैं पर रचनाकार को हर वक्त अपने मूल से विगल होने का दर्द टीसता रहता है।

घर के सामने का नीम/ठूंस भर रह गया है।
जिसकी छाँव में पढ़ा था कभी प्रेम का पहला पाठ/
कदम के पेड़ के नीचे नारियल के दरख्त पर
सूरज सुस्ताता था, शाम को घर लौटने से पहले।
वहां अब है कंक्रीट के जंगल है/ट्यूबलाईट
की जगह सोडियम वैवर लेम्प ने ले ली है। सड़कें चौड़ी हो गई है,
और लोग तंगदिल। (तब और अब पृ 51)

त्रिलोक महावर अपने आसपास के वानस्पतिक दृश्यों से गहरी अंतरंगता से जुड़ते हैं। वे कभी अकेले नहीं होते उनके साथ नदी और पहाड़ों की दृश्यमान उपस्थिति बनी रहती है। उनके हर एकांत में प्रकृति और विचारों की एक जाग्रत और सांगों पांग मौजूदगी को देखा जा सकता है। वे नदी के बहाव में उसके पत्थर तोड़ने के संघर्ष को भी देखते हैं, फिर नदी की यात्रा कविता की यात्रा जैसी हो जाती है ''निपट अकेले पगडंडी पर चलते हुए रिस रही है एक कविता ''(चाह में पृ.8)

एक रचनाकार के लिए जब कविता और जीवन अविभक्त होने लगता है तब उसे दैनिक व्यवहार से जुड़ी हर घटना अर्थग्राही प्रतीत होने लगती है। त्रिलोक अपने आँगन में फुदकती चिड़िया को भी अनदेखा नहीं करना चाहते। वे चिड़ियों को जिन्दगी का गीत गाते हुए सुनते हैं। वे देखते हैं कि धीरे-धीरे चिड़िया या संसार बड़ा हो रहा है और वह अपनी चोंच में दाने के समानांतर दुनिया के हिस्सा को भी दबा लेती है। चिड़िया गुनगुना रही है जिन्दगी का कोई गीत, दुनिया है एक हिस्सा उसकी चोंच में ''(चिड़िया पृ.10) चिड़िया पर लिखी गई एक अन्य कविता में भी वे इसी तरह वात्सल्य की विरल छवियाँ देखते हैं। ''भूखे बच्चों के मुंह में चुग्गा देते वक्त, गौरैय्या होती है सिर्फ माँ/चुग्गे को लपकते उसके बच्चों में अपने आप को देखते हैं।'' भूखे बच्चो के मुंह में चुग्गा देते वक्त, गौरैय्या होती है सिर्फ माँ/चुग्गे को लपकते उसके बच्चों में अपने आप को देखते हैं मेरे बच्चे (गौरैय्या पृ 46'')।। ठीक इसी तरह बैन के पुल पर जब वे सूखी हुई नदी देखते हैं तो उन्हें धूप में झुलसता हुआ शहर याद आता है। दरअसल हमने अपनी नदियों और वन संपदा के साथ जिस तरह की अमानवीयता और बदसलूकी की है वही हमें झुलसा रहा है, (बैनगंगा-पृ 14) त्रिलोक महावर के लिए वनों का उजाड़ना एक हादसे जैसा है। एक रचनाकार का प्रकृति प्रेम किस हद तक संवेदनशील और आत्मज हो सकता है यह त्रिलोक की कविता से गुजरकर आसानी से देख सकते हैं। उनके लिए वनों का उजड़ना हादसे जैसा है। वन उजड़े धरती से ऐसे/संगीनों ल पर बच्चे बिछड़े माँ की गोदी से जैसे'' (हादसे पृ.76) हादसे को लेकर एक अन्य कविता में वे आलोचक पर भी व्यंगय करने से नहीं चूकते। ''दुर्घटना कई शक्लें में हो सकती है/कविता पढ़ते पढ़ते सनक सकता है कोई आलोचक (यह भी हो सकता है-पृ 79)

दरअसल त्रिलोक की कविता हमारी अपनी दुनिया के अनुभवों और बिम्बों से निर्मित होती है। उनके पास अनुभवों का अंतहीन संसार है। जिसमे वन और पहाड़ों से लेकर पशु पक्षियों और मनुष्यों के लोक व्यवहार, आपसदारी और प्रेम के अंतहीन सिलसिले हैं। त्रिलोक की कविता में प्रकृति अपनी उद्दाम अभिव्यक्ति के लिए आतुर प्रतीत होती है। उनकी प्रकृति की भाशा के सक्षम हमारी दुनियावी अभिव्यक्ति कई दफे बौनी साबित होने लगती है। उनकी कविता में भाषा का निःशब्द हो जाना ही वस्तुतः शब्दों से परे होना है।

सूखी पत्तियों में छुपी पगडंडी/दोनों और लदे दरख्तों से झर रहा है मकरकंद/ हवा के साथ साथ बहती महुए की गंध/शब्दों से परे आँखे/ तोड़ती मौन। (शब्दों से परे पृ 22)

त्रिलोक की कविता में आधुनिक चकाचौंध सिरे से नदारद है। उनकी कवीता जमीन के देशज भावबोध से निर्मित होती है। लेकिन यह जमीनी सच अतीतगामित नहीं है। वे आश्वस्त हैं कि आधुनिकता और कथित विकास से उपजे जीवन मूल्य मनुष्यता और सामाजिक तानों बानों की नीव को पुख्ता करने के लिए जिस मिट्टी पानी और हवा की दरकार है वह अब भी सुदूर अंचलों और खेत खलिहानों में मौजूद है। त्रिलोक अपनी कविताओं में बार-बार उन्हीं अंचलों की तरफ लौटते हैं जिन्हें समय और परिस्थितियों की विवशता के कारण बहुत पीछे छोड़ आये हैं।

कभी देखकर गये थे लोग मिट्टी का सैलाब, सन्नाटा।
आज वहां घर है ईंटों के/बांस बल्लियों और कवेलुओं की छाजलन वाले/
शाम हो रही है, घरों में धुंवा उठ रहा है/सुलग रहे हैं चूल्हे/ आदमी लौट आये हैं। (लौट आये हैं पृ 19) गरीबी और साधनहीनता के बीच गहरी जिजीविषा और संघर्ष चेतना का आह्वान त्रिलोक महावर की कविता का मूल स्वर है। उनकी कविता में शामिल लोग हारे हुए नहीं लगते बल्कि वे बहुत आशान्वित और उम्मीदों से भरे हुए हैं। तथा अपनी न्यूनतम उपलब्धियों से संतुष्ट भी। चवन्नी पर लिखी गई यह कविता उन संतृप्त दिनों को याद करती है जो अभाव के बावजूद एक सुसंपन्न तोष का परिचायक है।

चार आने के दूध से घर पी लेता था चाय/चार आने में अस्सी पेज की कॉपी/ एक शीश पेन्सिल/एक दवात भरी स्याही/चवन्नी में दस पैसे जोड़कर/

हर महीने जमा होती थी स्कूल की फीस। (सिक्के की आखरी सांस पृ 83) उक्त पंक्तियाँ भले ही सिक्के के गायब होकने की व्यंजना से भरी हों पर कविता की अंतर्वस्तु में साधनों के अभावों के बीच संतुष्टि के दुर्लभ चित्र हैं। त्रिलोक के लिए गरीबी, बेबसी और लाचारी का सबब नहीं है। उनकी मान्यता है कि अभाव हैं तो उम्मीदें और संघर्ष भी है। उनमे अभावों की प्रतिपूर्ति के लिए सब कुछ समेटने उबेरने की आकुलता नहीं है। उन्हें यकीन है कि प्रकृति बची रही, नदी और झील बची रही तो उसकी गोद में बैठकर अभावों से लड़ा जा सकता है। दरअसल हमारे यहाँ गरीबी जबसे नारों और चुनाव का जरिया बनी है गरीब आदमी और ज्यादा आत्महीनता का शिकार हुआ है। उसे जितना गरीबी ने नहीं मारा उससे ज्यादा राजनीतिक चालाकियों ने लहुलूहान किया है। त्रिलोक महावर की कविता इन सारी चालाकियों का, शालीनता और आत्मविश्वास के साथ जवाब देती है। संग्रह की छोटी कविताएं नाटक के तीर की तरह है। उनमें अर्थ गाम्भीर्य के अलावा सांकेतिकता के मार्फत बहुत कुछ कहा गया है। जैसे छाता कविता में छाता वहां तक ठीक है जब तक वह धूप और बारिश से बचाए लेकिन वही छाता जब किसी अन्य पर तानने की विवशता में संलग्न हो तब वह एक आजाद खयाल नागरिक के लिए क्षुद्र और विसंगतिपनूर्ण हो जाता है (छाता पृ.78) छोटी कविताओं में हिस्से सुाधरता है चाँद, स्मृति, तुम्हारा, होना अलविदा, सुख इतना, शेर कहा है, हादसे आदि रचनाओं में भाषा के तेवर, विन्या और व्यंजना न केवल प्रीतिकर है वरन एक नए भावबोध का परिचय देती है। अंततः राजेश जोशी के द्वारा फ्लेप पर लिखी हुई इन पंक्तियों से सहमत हुआ जा सकता है कि त्रिलोक महावर ने अपनी कविता में छोटे-छोटे उपाख्यानों को रचा है, उनकी कवितायें अनुभव की प्रयोग शाला से पैदा हुई हैं। आमीन।

38, जसवाड़ी रोड बैंक ऑफ इंडिया के पास खंडवा
म.प्र. 45600001
मोबाइल : 9425085085

व्यंग्य में विलक्षण प्रयोगों का सौंदर्य

पिलकेन्द्र अरोरा

मार्जिन में पिटता आदमी (व्यंग्य संग्रह)
शांतिलाल जैन
बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य रू.

प्रख्यात व्यंग्यकार पद्मश्री डा. ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने एक व्यंग्य आलेख में लिखा है कि व्यंग्यकारों को तभी कोई नया व्यंग्य लिखना चाहिए जब उन्हें लगे कि वे एक नए विषय पर व्यंग्य लिख रहें हैं और पिछले व्यंग्य से बेहतर लिख रहे हैं। केवल पत्र -पत्रिकाओं में प्रकाशन के मोह में लिखी गई रचनाएं न तो व्यंग्य के हित में है और न स्वयं रचनाकार के। यदि आपकी हर रचना, पिछली रचना की पुनरावृति है, तो यह सृजन कम और समय और श्रम का विसर्जन अधिक है। साथ ही रचनाकार को शिल्प के स्तर पर नए नए प्रयोग करते रहना चाहिए। व्यंग्यकार शांतिलाल जैन के नए व्यंग्य संग्रह मार्जिन में पिटता आदमी' की रचनाओं से गुजरने के बाद यह लगता है कि रचनाकार ने ज्ञानजी की इस बात के मर्म और महत्व को गंभीरता से आत्मसात किया है। शातिलाल ने अपने रचनाकर्म में न केवल पर्याप्त सावधानी और सतर्कता बरती है वरन् हर रचना को पिछली रचना से विशिष्ट और श्रेष्ठ बनाने का सफल प्रयास भी किया है। यही कारण है कि संग्रह की रचनाओं में न केवल विषयगत विविधता है वरन् उनके रचना विधान में नए प्रयोगों का अद्भुत सौंदर्य भी है जो रचनाओं को प्रभावी और पठनीय बनाता है।

शांतिलाल जैन का यह तीसरा व्यंग्य संग्रह है। इससे पूर्व कबीर और अफसर' और न आना इस देश' उनके दो संग्रह चर्चित हुए हैं। प्रस्तुत व्यंग्य संग्रह मार्जिन में पिटता आदमी' के 84 लेखों में रचनाकार ने अपनी व्यंग्य प्रतिभा और सूक्ष्म दृष्टि से समाज के कई क्षेत्रों में हो रहे नैतिक मूल्यों के क्षरण को गंभीरता से रेखांकित किया है। शीर्षक रचना मार्जिन में पिटता आदमी' में रचनाकार ने आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त किया है। जो लगातार खोखले वादों, नारों और योजनाओं के बीच पिसने को अभिशप्त है।मार्जिन के आदमी और मेन पार्ट के आदमी के बीच की भूख के अंतर को स्पष्ट करते हुए रचनाकार ने लिखा है कि मार्जिन के आदमी की भूख रोटी से शांत होती है जबकि मेन पार्ट वाले आदमी नदी, खदान, चारा, कोयला सब कुछ खाकर भी अतृप्त रहता है! विकास का माल डकारने के बाद जो झूठन बचती है वो मार्जिन के लोगों के पल्ले पड़ती है।रचना यूनियन कार्बाइड के प्रेत' भी उन मार्जिन वाले गैस पीड़ितों के दर्द को उकेरती है जो न्याय की प्रतीक्षा में प्रेत बन जाते हैं जबकि मेन पार्ट के लोगों की व्यवस्था डालर्स की गर्मी में पिघल जाती है।

शांतिलाल उन व्यंग्यकारों में हैं जिन्हें व्यंग्य की गहन समझ है । उनमें विसंगतियों को पकड़ने की सूक्ष्म दृष्टि है और उसे प्रभावी शैली में व्यक्त करने का कला कौशल भी। वरिष्ठ व्यंग्यकार डा. सूर्यकांत नागर का मत है, परिवेश जितना व्यापक और घना होगा, विसंगति जितनी गहरी होगी , संवेदना जित्नी तीव्र होगी , अभिव्यक्ति जितनी प्रहारात्मक होगी व्यंग्य उतना ही प्रभावी होगा। शांतिलाल जैन में सत्य और विरोधाभासों को पकड़ने की विलक्षण क्षमता है। संवेदनाओं की तीव्रता और अभिव्यक्ति की प्रहारात्मकता उनकी रचनाओं को प्रभावी बनाती है। उनकी रचनाएं व्यक्तिगत राग द्वेष से मुक्त है। वे व्यक्ति पर नहीं, प्रवृति पर प्रहार करते हैं उन्होनें स्वयं आत्मकथ्य अभिधा मे अपन' में लिखा है कि 'कोशिश रहती है कि व्यंग्य उत्पन्न हो, व्यक्ति निंदा न हो।'

संग्रह की एक मुख्य विशेषता यह है कि रचनाएं पति-पत्नि, पारिवारिक गुत्थियों और साधारण किस्म के पारम्परिक व्यंग्य से सर्वथा मुक्त है। रचनाकार बेहतर जानता है कि आधुनिक समाज में इतनी विरोधाभासी, विषम और विद्रूप स्थितियां हैं जो पाखंड, आडम्बर और शोषण से इतनी भरपूर हैं कि उनके स्थान पर किसी हास -परिहास को व्यंग्य का आलम्बन बनाना अपने आप में व्यंग्य का एक विषय है। इस दृष्टि से शांतिलाल एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। प्रतिबद्धता किसी राजनीतिक विचारधारा से जुड़ कर ही तय नहीं होती, वह इस बात से भी तय होती है कि समाज में अनीति, अन्याय और अवमूल्यन है उनके प्रति लेखक का क्या एटीट्यूड है। मानवीय, नैतिक और सामाजिक मूल्यों के लिए वह कितना चिंतित और चिंतनशील है। वह अपने समय, अपने समाज और अपने सरोकारों के प्रति कितना ईमानदार और जिम्मेदार है । वर्तमान स्थितियों का विश्लेषण कर जब लेखक, लेखन को आम आदमी की चिंता और ज्वलंत प्रश्नों से जोड़ता है तो वह उसकी एक आदर्श पक्षधरता है। इन रचनाओं में रचनाकार ने समाज के विरोधाभास का प्रभावी विश्लेषण कर अपनी पक्षधरता का परिचय दिया है। वरिष्ट कहानीकार जयशंकर ने संग्रह के फलैप पर इसी बात को रेखांकित किया है कि इन रचनाओं की जड़ें अपने समय,समाज और संस्कृति में धंसी हुई जान पड़ती हैं और इनका समकालीनता बोध साहित्य ओर जीवन के संयोजन के लेखकीय दायित्व का एहसास प्रदान करता है।

रचनाओं की विविधता से यह स्पष्ट होता है कि शांतिलाल जैन का अध्ययन और अनुभव संसार व्यापक है। स्वयं लेखक ने लिखा है कि लोकमान्य लेखकों की रचनाओं को पढ़ने के अलावा उन्हें विभिन्न वातावरणों को देखना, घूमना और भटकना बड़े काम आता है। समय और जीवन से जुडे अधिकांश मुद्दों पर एक सजग और सतर्क व्यंग्यकार की मानिंद रचनाकार ने कलम चलाई है।सोशल मीडिया हो या बाजारवाद, राजनीति हो या अर्थनीति, शिक्षा हो या चिकित्सा,पाखंड हो या अंधविश्वास लगभग सभी रचनाकार के तीसरी आंख की जद में हैं। कभी वे रेल यात्रा के आरक्षित डिब्बे में यात्रियों को होने वाली परेशानियों का रोचक वर्णन करते हैं तो कभी सड़कों पर महाराजा की तरह विचरण करने वाले आवारा मवेशियों की चुनौतियों का। कभी तेजी से व्यापार और उद्योग बनती जा रही चिकित्सा सेवा का ही पोस्टमार्टम कर डालते हैं। भ्रष्टाचार पर केन्द्रित एक रचना दस करोड़ का चपरासी' बहुत रंजक और रोचक है जिसमें एक पिता अपनी पुत्री से लोकायुक्त के छापे से रातोरात लोकप्रिय हुए एक करोड़पति चपरासी से विवाह के लिए कहते हैं कि देख बेटी इस देश में सरकारी महकमें का चपरासी कुबेर का नाती होता है। इसी गौत्र की रचना निलंबन का सेलिब्रेशन' में रचनाकार ने लिखा है कि निलंबित होना हमारे देश में राष्ट्रीय गर्व का विषय

हैं। इसी विषय की रचना है पलटी दांव' जिसमें रचनाकार लिखता है कि पटवारी इस देश का सबसे बड़ा अफसर होता है। राजधानी में गिद्द' में रचनाकार का व्यंग्य प्रखर हो उठता है, गिद्दों में प्रजनन क्षमता पांच साल में आती है हमारे लोकतंत्र की मांनिंद । नया जीव :नई विधायिका।

संग्रह के कई व्यंग्य आलेखों में रचनाकार ने शिल्प के स्तर नए कलात्मक प्रयोग किए गए हैं जिनको पढ़ना एक नया और सुखद अनुभव है। जैसे, नारी उत्पीड़न की समस्या पर केन्द्रित रचना देवताओं के समक्ष वास की समस्या' चुंकि अब नारियों की पूजा नहीं होती इस कारण देवता भारत भूमि छोडकर नए वास की तलाश में हैं।संसद की विसंगतियों का चित्रण करती रचना किराए पर संसद' जिसमें शादी के लिए संसद बुक कराने का विचार पत्नी इस आधार पर रिजेक्ट कर देती है कि कहीं कुंवर जी को बार बार बर्हिगमन की आदत पड गई तो गृहस्थी कौन संभालेगा! ये लोग काम कम करेंगे बहस ज्यादा! या नंगे ठंड से नहीं मरा करते' जिसमें भूख- गरीबी से मरने वालों का आंकडा जानबूझकर छिपाया जाता है उसे चित्रगुप्त की आडिट रिपोर्ट के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार ने कई व्यंग्यों का प्रारंभ कथात्मक शैली में किया है ।वह भी कलात्मक बन गया है।आभासित होता है मानों किसी लघुकथा का आरंभ है और अचानक वह रचना एक प्रभावी वक्रोक्ति बनकर विद्रूपताओं का उद्घाटन करने लगती है।

प्रायःराजनीति रचनाकारों का प्रिय विषय रहता है पर शांतिलाल केवल सरोकारों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण ही राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार करने को विवश हुए हैं। सामयिक संदर्भों पर आधारित इन रचनाओं को भी इस कुशलता के साथ रचा बुना गया है कि सामयिक होकर भी उनकी प्रासंगिकता और पठनीयता प्रभावित नहीं होती। इन रचनाओं में कई प्रभावी वाक्य हैं , आज धृतराष्ट्र होते तो 100 सीटें तो घर में ही रख लेते * हम नंगे हैं तो क्या दूसरे और भी ज्यादा नंगे हैं * संविधान की दुकान पर बिका हुआ माल पांच साल तक वापस नहीं होता * रैपर बदल जाने से साबुनों का स्वभाव नहीं बदलता, सत्ता का मामला भी ऐसा ही ठहरा * मैली कमीज उजली नहीं हो सकती इसलिए उजली कमीज को इतना मैला साबित कर दिया जाए कि अपने मैले होने का हीनता बोध जाता रहे। मंहगी दाल :सस्ती शराब ! पता नहीं किस सूबे का जननायक कब सस्ती शराब योजना की घोषणा कर दे।

संग्रह की रचनाओं की व्यंग्य शैली की तुलना हाकी के खेल से की जा सकती है। मानों लेखक की कलम एक 'स्टिक' है और विषय जो है वह 'बॉल' है और खिलाडी ड्रब्लिंग' करता हुआ तेजी से 'डी' की दिशा में बढ़ता है और गोल कर डालता है। संग्रह के रचनाकार की जो शैली है वह ड्रिब्लिंग हैं, जो देखते ही बनती है और जिस गति और सफाई से बिना किसी फाउल के वे गोल करने में सफल होते हैं, वह प्रभावित ही नहीं, चमत्कृत भी करती है। ये रचनाएं व्यंग्यकार के गहन अध्ययन और दीर्घ अनुभव का प्रतिफल है तथा व्यंग्य के क्षेत्र में नए प्रयोग करने की रचनाकार की विलक्षण क्षमता का परिचायक भी हैं जो न केवल प्रशंसनीय और पठनीय है वरन नवोदित व्यंग्यकारों के लिए एक सुबोध पाठ्यपुस्तक भी है।

आभार आजादनगर, उज्जैन
9893441760

नई किताबें

सपनों में खोई हुई स्त्री - विश्वविख्यात कहानियाँ

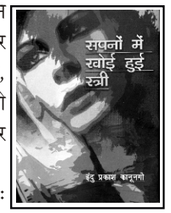

इस पुस्तक में अंतोव चेखव, एडगर एलेन पो,मोपांसां, काफका आइज़ेक बैजामिन सिंगर और सिल्वित्र ओकेम्पो की कहानियों का चयन, संकलन और अनुवाद प्रस्तुत किया गया है जो हिन्दी पाठकों की रुचि और अनुभव को विस्तार देगा।

पुस्तक : सपनों में खोई हुई स्त्री/ अनु.: इन्दुप्रकाश कानूनगो
प्रकाशक : भावना प्रकाशन, दिल्ली /मूल्य : रू.300/-

पाश्चात्य प्रगामी आलोचना - पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

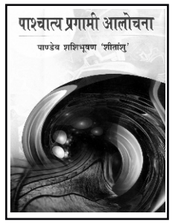

यह पुस्तक इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसमें डॉ.पाण्डेय ने मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, समाजवाद, संरचनावाद, उपनिवेशवाद, उत्तर उपनिवेशवाद, संकेत विज्ञान, शैलीविज्ञान, उत्तर आधुनिकता, विसंरचनावाद, ऐतिहासिक, मिथकीय, मनोवैज्ञानिक, स्त्रीवादी एवं तुलनात्मक आलोचना को लेकर गंभीर विमर्श किया है, विवेचन किया है जो हिन्दी की साहित्यिक आलोचना के फलक को विस्तार देता है। पुस्तक शोधार्थियों एवं समालोचनाकर्मियों के लिए विशेष उपयोगी है।

पुस्तक : पाश्चात्य प्रगामी आलोचना
लेखक : पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'
प्रकाशक : भारत पुस्तक भण्डार, दिल्ली
मूल्य रू. 500/-

स्थगित हैं यात्राएँ - पाण्डेय शशि भूषण 'शीतांशु'

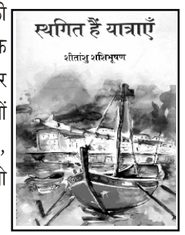

एक आलोचक, भाषा एवं शैली वैज्ञानिक की काव्य-प्रतिभा से साक्षात कराती यह पुस्तक पाण्डेय जी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति और काव्य संवेदना की परिचायक है। इन कविताओं की प्रवृत्ति प्रचलित समकालीन कविता के फार्म, वैचारिक संदर्भ एवं भाव-दृष्टि से पृथक है जो काव्यराग का नया अनुभव है।

काव्य संग्रह : स्थगित है यात्राएँ
कवि : पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'
प्रकाशक : नेशनल पब्लिसिटी नईदिल्ली
मूल्य रू : 250

- रमेश दवे

साहित्यिक हलचल

जवाहर कर्नावट का सम्मान

पटना। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पिछले दिनों प्रख्यात भाषाविद आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के 100वें जन्मदिन के अवसर पर जन्म शताब्दी समारोह मनाया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता भाषा-भारती पत्रिका के संपादक नृपेन्द्रनाथ गुप्त ने की। उन्होंने कहा कि आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा भाषाओं को आगे बढ़ाने के लिए तत्पर रहते थे। साहित्य मंत्री डॉ.शिववंश पांडेय ने कहा कि वो हिन्दी और संस्कृत के लिए आजीवन काम करते रहे। इस मौके पर बैंक ऑफ बड़ौदा के राजभाषा प्रमुख डॉ.जवाहर कर्नावट को हिन्दी का वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार करने के लिए सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉ.जवाहर कर्नावट ने हिन्दी के वैश्विक पत्रकारिता के फलक को रेखांकित किया। कार्यक्रम में नरेन्द्र सिंह, डॉ.शंकर, योंगेन्द्र प्रसाद मिश्र, प्रो.बासुकी नाथ झा सहित कई गणमान्य लोग उपस्थित थे।

वेद हिमांशु को पंच परमेश्वर सम्मान

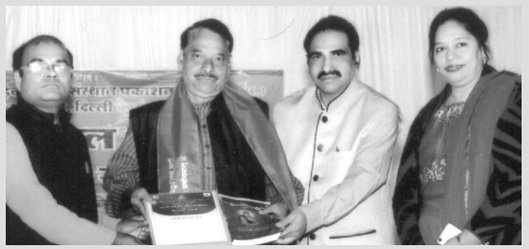

इन्दौर। हिन्दी और लोकभाषा मालवी के प्रखर साहित्यकार वेद हिमांशु को विगत दिनों साहित्य संगम संस्थान नई दिल्ली द्वारा हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट साहित्य सेवाओं के लिए वर्ष 2018 का प्रतिष्ठित पंच परमेश्वर सम्मान प्रदान किया गया। बिचौली हप्सी इन्दौर में संपन्न इस आयोजन में आचार्य भानुप्रताप वेदालंकार ने श्री हिमांशु के मालवी काव्य सृजन के संदर्भ में कहा कि लोक काव्य परंपरा में हिमांशु जी ने मालवी कविता को समकालीन मूल्यों से जोड़ते हुए सृजन के नये आयाम रचे हैं।

'कहानी के पास' का लोकार्पण

भोपाल। ललित कलाओं के लिए समर्पित स्पंदन संस्थान, भोपाल की ओर से 17 जून को महादेवी वर्मा कक्ष, हिन्दी भवन में सुप्रसिद्ध कथाकार श्री शशांक की पुस्तक 'कहानी के पास' तथा शशांक पर केन्द्रित 'राग भोपाली' के अंक का लोकार्पण डॉ.ज्ञान चतुर्वेदी की अध्यक्षता तथा श्री स्वयंप्रकाश, श्री

राजेश जोशी, श्री अजय तिवारी, श्री कर्मेन्दु शिशिर, श्री आनन्दकुमार सिंह तथा शैलेन्द्र कुमार शैली की उपस्थिति में हुआ। इस अवसर पर शशांक ने अपनी डायरी के कुछ अंशों का पाठ किया। कथाकार स्वयंप्रकाश ने कहा कि ''शशांक ने अपनी रचनात्मकता में मौलिकता बनाये रखी है। कवि-कथाकार राजेश जोशी ने कहा कि - शशांक बहुत कम कथाकारों में से हैं, जो कहानी पर खुलकर चर्चा करते हैं। डायरी संग्रह की खूबी है। आख्यान में आख्यानात्मकता है। स्मृति से उपजी बहुत सारी चीजें हैं। इनकी डायरी की तरह हैं। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ.ज्ञान चतुर्वेदी ने कहा कि - शशांक पाठक के लिए चुनौती पैदा करते हैं, वे भाषा के प्रति बेहद सतर्क हैं। इससे पूर्व स्पंदन संस्थान की संयोजक उर्मिला शिरीष ने शशांक का परिचय दिया तथा कार्यक्रम का संचालन किया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार श्री संतोष चौबे, मुकेश वर्मा, विजयबहादुरसिंह, युगेश शर्मा, पलाश सुरजन, मनोज कुलकर्णी, महेन्द्र गगन, बसन्त सकरगाय, अशोक बुलानी, संस्था के अध्यक्ष शिरीष शर्मा, सचिव सुश्री गायत्री गौड़ सहित कई सृजनधर्मी उपस्थित थे।

प्रस्तुति - 'स्पन्दन' भोपाल

सूर्यबाला को अट्टहास शिखर सम्मान

पिछले दिनों व्यंग्य लेखन को दिया जाने वाला 29वां 'अट्टहास शिखर सम्मान' वरिष्ठ रचनाकार सूर्यबाला को प्रदान किया गया। माध्यम साहित्यिक संस्थान एवं गया प्रसाद खरे स्मृति साहित्य संवर्धन संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित इस समारोह में अट्टहास पत्रिका के संपादक अनूप श्रीवास्तव एवं मंचासीन सम्मानित अतिथियों के बीच सूर्यबाला को सम्मान-निधि, शॉल, श्रीफल, प्रशस्ति पत्र एवं कलाकार परमात्मा प्रसाद द्वारा बनाया रेखाचित्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। स्वागत भाषण व्यंग्यकार श्री अरुण अर्नव खरे ने दिया। अपने वक्तव्य में सूर्यबाला ने कहा कि मेरा अपना उत्तर प्रदेश तो मुझे जन्म देकर भूल गया किन्तु व्यंग्य लेखन की उर्वर भूमि, मध्यप्रदेश सदैव मेरे प्रति अतिरिक्त स्नेह एवं सम्मान रखता आया है। उन्होंने यह भी कहा कि व्यंग्य लेखन का शब्द कोश कुछ अलग शब्दों से नहीं बना करता। व्यंग्य शब्दों में होता भी नहीं, उनके इस्तेमाल में होता है। मुख्य अतिथि डॉ.ज्ञान चतुर्वेदी ने कहा कि व्यंग्य लिखने के लिए व्यक्ति का सबसे पहले इमानदार होना आवश्यक है। जो व्यक्ति निर्भीक निष्पक्ष नहीं है वह व्यंग्य कभी नहीं लिख सकता। समारोह के अध्यक्ष डॉ.नरेन्द्र कोहली ने व्यंग्य लेखन की

बारीकियों से रूबरू करते हुए कहा कि समाज की विसंगतियों और विद्रूपमाओं से उपजे आक्रोश व्यंग्य से का जन्म होता है। विशिष्ट अतिथियों में वरिष्ठ व्यंग्यकार हरि जोशी, डॉ.गिरीश पंकज, राकेश कुमार पालीवाल, सुभाष राय उपस्थित थे तथा संचालन अशोक शुक्ल ने किया।

हिन्दू कॉलेज में सुधा अरोड़ा का रचना पाठ

दिल्ली। स्त्री मुखर हुई है। उसकी शक्ति ज्यादा धारदार हुई है। तो उसके संघर्ष भी गहन और लंबे होंगे। आज भी उसका संघर्ष थमा नहीं है। वह संघर्ष कर रही है। पुरुषों के मोर्चे पर पुरुषों के साथ और अपने मोर्चे पर पुरुषवादी स्त्रियों के साथ भी। वक्त के बदलने के साथ संघर्ष का स्वरूप भी बहुत कुछ बदल गया है। बस नहीं बदला तो स्त्री के संघर्ष की प्रकृति। उक्त विचार सुप्रसिद्ध कथाकार सुधा अरोड़ा ने हिन्दू कॉलेज में हिन्दी साहित्य सभा के एक कार्यक्रम में व्यक्त किये। लेखक से भेंट शीर्षक से हुए इस आयोजन में अरोड़ा ने कहा कि यह संघर्ष दोहरा तिहरा नहीं। चहुँमुखा है और लंबा भी। यह बहुत जल्दी समाप्त होने वाला नहीं है। यह चल रहा है और आगे भी चलेगा। सकारात्मक ऊर्जा, शक्ति, प्रकृतिगत लचीलेपन और दूरदर्शिता से स्त्री स्थितियों को बदल पाने में सक्षम होगी। किसी भी प्रगतिशील समाज के विकास और उन्नति के लिए यह जरूरी भी है। उन्होंने इस कार्यक्रम में अपनी दो बहुचर्चित कहानियां 'रहोगी तुम वही' तथा 'सत्ता संवाद' तथा अपने कविता संग्रह कम से कम एक दरवाजा से दो कविताओं का पाठ भी किया। रचना पाठ के बाद युवा विद्यार्थियों से सवाल-जवाब का सत्र भी हुआ। इससे पहले विभाग की प्रभारी डॉ.रचना सिंह ने अरोड़ा का स्वागत किया। संयोजन छात्र विनीत कांडपाल ने तथा आभार सौरभ ने माना।

प्रस्तुति - रचनासिंह

सूर्यकांत नागर सम्मानित

भोपाल। म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल द्वारा संचालित पावस व्याख्यानमाला के रजत जयंती समारोह में वरिष्ठ कथाकार सूर्यकांत नागर को व्याख्यानमाला में सतत भागीदारी और समग्र साहित्यिक अवदान के लिए सम्मानित किया गया। हिन्दी भवन, भोपाल में उन्हें यह सम्मान बंगाल के राज्यपाल माननीय केसरीनाथ त्रिपाठी द्वारा प्रदान किया गया। सूर्यकांत नागर के दस कहानी-संग्रह दो उपन्यास, दो व्यंग्य संग्रह, दो निबंध-संग्रह और संस्मरण साहित्य की दो कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रस्तुति - दामोदर खड़से, पुणे

प्रभाकर चौबे की स्मृति में आयोजन

रायपुर/प्रगतिशील लेखक संघ रायपुर द्वारा हाल ही में दिवंगत वरिष्ठ साहित्यकार व्यंग्यकार व पत्रकार श्री प्रभाकर चौबे के व्यक्तित्व व कृतित्व पर केंद्रित आयोजन किया गया। आयोजन में छत्तीसगढ़के विभिन्न जिलों के साथी रचनाकारों ने उन्हें बड़ी शिद्दत से याद किया तथा उनके कृतित्व पर विमर्श किया। उल्लेखनीय है कि श्री प्रभाकर चौबे पत्रकारिता व साहित्य के साथ ही समाजसेवा व ट्रेड यूनियन में भी लगातार सक्रिय रहे। प्रारंभ में जीवेश प्रभाकर ने आमंत्रित अतिथियों का स्वागत किया। कथाकार लोकबाबू ने प्रभाकर चौबे के सांगठनिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। डॉ.आलोक वर्मा ने अपने संस्मरण साझा करते हुए कहा कि उनके व्यक्तित्व व कृतित्व में कोई अंतर नहीं था। वे जैसे थे वैसे ही लिखते भी थे। उन्होंने कहा कि प्रभाकर चौबे ने लगातार लोक शिक्षण का काम किया। मिन्हाज असद ने कहा कि उनकी तीन बातें महत्त्वपूर्ण थी पढ़ना, लिखना और सामाजिक जुड़ाव। श्री रवि श्रीवास्तव, नथमल शर्मा, महेन्द्र मिश्र एवं जयप्रकाश ने भी अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम के अध्यक्ष ललित सुरजन ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि प्रभाकर चौबे लोक शिक्षण का कार्य सिर्फ अखबारों में लिखकर ही नहीं बल्कि जनता के बीच जाकर सीधे संवाद के जरिये भी करने पर जोर दिया करते थे। उन्होंने अपने साथ प्रभाकर चौबे लगभग 6 दशकों के संबंधों को याद करते हुए अनेक प्रसंगों का जिक्र किया। अरुणकान्त शुक्ला ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि उन्हीं के प्रोत्साहन से मेरा कविता संग्रह निकल सका। कार्यक्रम का संचालन प्रगतिशील लेखक संघ रायपुर के अध्यक्ष संजय शाम ने किया। जीवेश प्रभाकर ने आभार व्यक्त किया। इस गरिमापूर्ण आयोजन में नगर के बुद्धिजीवी रंगकर्मी व सुधिजन बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

श्रद्धांजलि

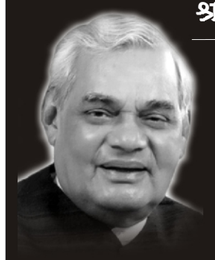

सुविख्यात कवि, ओजस्वी वक्ता तथा देश के पूर्व प्रधानमंत्री, भारतरत्न पं.अटलबिहारी वाजपेयी के निधन पर विनम्र श्रद्धांजलि

जन्म : 25 दिस.1924
निधन : 16 अगस्त 2018

समावर्तन परिवार
उज्जैन, भोपाल, इन्दौर, मुम्बई, सूरत, गुना, कोलकाता

समावर्तन के संपादक मंडल में परिवर्तन

समावर्तन के संस्थापक संपादक समन्वयक **डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य** ने सम्पादक मंडल में निम्नानुसार साथियों के पदनाम परिवर्तन किये हैं

अभी तक समावर्तन के संपादक का दायित्व निर्वहन कर रहे कवि-कथाकार **श्री निरंजन श्रोत्रिय** को अब समावर्तन का मुख्य संपादक बनाया जा रहा है। श्री श्रोत्रिय अपने लोकप्रिय स्तम्भ 'रेखांकित' को जारी रखेंगे।

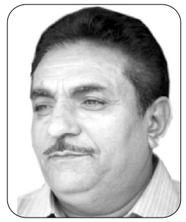

अभी तक समावर्तन के कार्यकारी संपादक का दायित्व निर्वहन कर रहे कवि-समीक्षक **श्री श्रीराम दवे** को अब समावर्तन का संपादक बनाया जा रहा है। वे समावर्तन के कार्यालय प्रमुख का कार्य भी करते रहेंगे।

समावर्तन के सह कार्यकारी संपादक के रूप में कार्य कर रहे व्यंग्यकार **डॉ.हरीशकुमार सिंह** को अब समावर्तन का कार्यकारी संपादक बनाया जा रहा है।

सूचना

समावर्तन के वार्षिक सदस्यों/विज्ञापनदाताओं से निवेदन है कि वे सदस्यता शुक्ल आदि का डिजिटल भुगतान भी कर सकते हैं। डिजिटल भुगतान हेतु बैंक विवरण निम्नानुसार है।

बैंक का नाम : आय.डी.बी.आई.
ब्रांच का नाम : फ्रीगंज, उज्जैन म.प्र.
खाता क्रमांक : 0088102000031620
आयएफएससीनं. : आयबीकेएल 0000088

पुस्तकें मिलीं

घिसी चप्पल की कील (कविताएँ)
भारतरत्न भार्गव
संभावना प्रकाशन, हापुड - 245101
मूल्य रू.250/-

संकल्प और सपने (लघुकथाएँ)
सदाशिव कौतुक
शिवना प्रकाशन सीहोर-466001
मूल्य रू. 150/-

साजिश के चलते (चुनिंदा कविताएँ)
सदाशिव कौतुक
अयन प्रकाशन नई दिल्ली-110030
मूल्य रू. 300/-

संवाद और हस्तक्षेप खण्ड 24
संपादक : सुनीता खत्री
प्रकाशन : मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल
मूल्य रू. 250/-

रिश्तों की बूँदे (कविताएँ)
सुदर्शन व्यास
बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य रू. 195/-

मेरा गाँव की सुबह (कविता संग्रह)
नर्मदाप्रसाद कोरी
वैभव प्रकाशन रायपुर (छ.ग.)
मूल्य रू.100

मन के मौसम (काव्य संग्रह)
राधारानी चौहान 'मानवी'
संदर्भ-प्रकाशन, भोपाल
मूल्य रू. 250/-

पावस : एक यात्रा
संपादक - उर्मिला शिरीष
प्रकाशक : पं.रविशंकर शुक्ल हिन्दी भवन न्यास, भोपाल
मूल्य रू. 200/-

सूचना

पिछले अंकों से नियमित स्तम्भ 'पाठ स्मृति' तथा 'प्रतिश्रुति' (दस्तावेज पत्रिका पर विशेष आलेख) अपरिहार्य कारणों से इस अंक में प्रकाशित नहीं हो पाये हैं, जिसका हमें खेद है। अगले अंक में ये स्तम्भ जारी रहेंगे। - संपादक

मध्य प्रदेश, भोपाल में स्थित 'वनमाली सृजनपीठ' साहित्य एवं सृजनात्मकता का सक्रिय और प्रतिष्ठित अखिल भारतीय केन्द्र है। यह सृजनपीठ और पूर्व में आईसेक्ट यूनीवर्सिटी के नाम से विख्यात और अब रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय शायद ही हिन्दी के किसी पाठक, रचनाकार और अध्येता के लिए अन्जाना हो। मध्य प्रदेश की साहित्य, कला और संस्कृति की भी राजधानी भोपाल में यह सृजनपीठ बकौल सुख्यात साहित्यकार प्रभु जोशी, अशोक वाजपेयी के दिनों के भारत भवन की गरिमा, ऊँचाई एवं सम्मिलन स्थल की याद दिलाता इकलौता, जीवंत और अब कदाचित् सबसे उत्कृष्ट केन्द्र है।

उल्लेखनीय है कि ढाई दशक से यहाँ देश भर के जाने-माने लेखक, संस्कृति- सहचर एकत्र होते रहते हैं, तब भी जब उनका सम्मान या रचना-पाठ या व्याख्यान हो और तब भी जब इन्हीं गतिविधियों के लिए दूसरे सृजनधर्मी आ रहे हों। वनमाली सृजनपीठ रचनाकारों के आगमन और उनसे संवाद का एक खुला तथा बड़ा जनतांत्रिक स्थल है। यहाँ सुनने आना भी भाग लेने के बराबर के महत्व का होता है। बड़ी संख्या में लेखक केवल श्रोता की तरह आने में भी खुशी तथा सम्मान का अनुभव करते हैं। यहाँ परस्पर मिलना-जुलना, संवाद में भागीदारी और श्रेष्ठ को सम्मानित होते हुए देखना अद्वितीय और अपूर्व है। ऐसे समय में जब रचनात्मक मंच लगातार सिकुड़ रहे हैं, सरकारें रैलियों की संयोजक हो गई हैं और लेखक संगठन तथा समूह संसाधनों की कमी के चलते साल में एक दो अच्छे और प्रतिष्ठित आयोजन मुश्किल से कर पाते हैं, संतोष चौबे के ये असम्भव से महती आयोजन न केवल विशिष्ट हैं बल्कि कभी भुलाये न जा सकेंगे। वर्तमान में वनमाली सृजनपीठ और टैगोर वि.वि. अखिल भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक आर्काइव की भांति हैं।

इस साल वनमाली सृजनपीठ ने 25 वर्ष पूरे किए। कहना चाहिए कि यह इस केन्द्र के ही नहीं हिन्दी साहित्य और अंतर्विधायी संवाद के विगत 25 सालों का भी विनम्र रजत जयंति वर्ष है। गुजरे सालों की स्मृतियों को संजोते हुए, यहाँ आए और सम्मानित हुए साहित्यकारों की रचनाधर्मिता और समय के उनके बोध को प्रस्तुत करते रचना समय -11 के दस्तावेज, न केवल उत्कृष्ट अनुभव का भागीदार बनाते हैं बल्कि प्रीतिकर तथा प्रगतिगामी अनुभूतियों का भी साझेदार बनाते हैं। वनमाली सृजनपीठ की गतिविधियों में किसी भी रूप में शामिल होकर ही इस बात को बेहतर समझा जा सकता है कि कैसे साल-दर-साल नवाचार और कल्पनाशीलता फूलती-फलती रहती है। कैसे एक निजी विश्वविद्यालय में भी साहित्य एवं संस्कृति की नई नई कोंपलें फूटती रहती हैं। कैसे कोई कवि, कहानीकार और उपन्यासकार साहित्य के लिए इतना बड़ा स्पेस पैदा कर पाता है।पिछली 17-18 जुलाई को कहानी पर केन्द्रित कार्यक्रम रचना समय -11 का आयोजन हुआ। इस अवसर पर कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और रवीन्द्रनाथ टैगोर वि.वि. के कर्ता-धर्ता एवं इन सभी गतिविधियों के सूत्रधार संतोष चौबे द्वारा सम्पादित दो ग्रंथ ' आख्यान का आंतरिक संकट ' और ' कहानी : स्वप्न और यथार्थ ' का लोकार्पण हुआ। दोनों किताबें सही अर्थों में ग्रंथ कहे जाने के योग्य हैं क्योंकि इनमें 25 सालों में विभिन्न समारोहों में आए सभी तरह के मत, विचार और वाद के लेखकों तथा विचारकों द्वारा साहित्य और कला की विधाओं पर व्यक्त लिखित एवं मौखिक विचार, संवाद और चित्र संकलित तथा संग्रहीत हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन्हें उपयोगी और प्रामाणिक दस्तावेजों की तरह विद्यार्थियों, शोधार्थियों और अध्येताओं द्वारा सहेजा और इस्तेमाल किया जा सकेगा। इनके तैयार करने में संतोष चौबे और सृजनपीठ के साथियों की टीम का महत्वपूर्ण योगदान अवश्य याद किया जायेगा। वास्तव में, दोनों ग्रंथ आयोजित हुए सुअवसरों की मोहक स्मृति के भी आत्मीय अभिलेख है जिन्हें समय अपने खाते में गौरव से दर्ज करेगा।

पुस्तकों के लांकार्पण में वरिष्ठ लेखक नंदकिशोर आचार्य, रमेश चंद्र शाह, शशांक, विनोद तिवारी और अल्पना मिश्र के वक्तव्य महत्वपूर्ण रहे। जहाँ एक ओर नंदकिशोर आचार्य ने कलागत विधाओं में सम्वेदना को केन्द्र में रखते हुए साहित्य का प्रमुख स्थान और उसके मूल मन्तव्यों को रेखांकित किया, रमेश चंद्र शाह ने अपने उद्बोधन में साहित्य की महत्ता प्रतिपादित की लेकिन एक ऐसी बात कह दी जो आपत्तिजनक और विवादास्पद मानी गई कि वे ब्राह्मण ही थे जिन्होंने भारत की संस्कृति को बचाया। वरिष्ठ कथाकार शशांक ने दोनों किताबों का सार-संक्षेप बताकर उनके प्रति लगाव और दिलचस्पी पैदा की। आलोचक विनोद तिवारी ने सधे हुए लहजे में न केवल आख्यान के बहाने इस वक्त के संकटों का खुलासा किया अल्कि सृजनपीठ के समक्ष डिजिटल संग्रहालय निर्माण का दूरगामी प्रस्ताव भी रखा। कहानीकार अल्पना मिश्र ने अपने विनम्र और संकोची से लगने वाले सूक्ष्म संकेतों से भरे प्रभावी वक्तव्य से अपनी बात कही। सत्र का संचालन अपने खिलन्दड़े अंदाज में सृजनपीठ के निदेशक मुकेश वर्मा ने किया। राज्य संग्रहालय का हॉल ठसाठस भरा हुआ था। मंजूर एहतेशाम, स्वयंप्रकाश, ज्ञान चतुर्वेदी, कुमार अंबुज को छोड़कर भोपाल के शायद ही कोई जाने-माने साहित्यकार हों जो वहाँ मौजूद न दिखे हों। इसे भी याद रखना चाहिए कि जो वहाँ नहीं थे लेकिन उनका नाम और जिक्र तो था।

दूसरे दिन टैगोर वि.वि. के अत्याधुनिक, साफ-सुथरे, सन्दर और भरे सभागार में कथेतर गद्य और कहानी विषय पर संवाद हुआ। परिचर्चा में विषय-प्रवर्तन करते हुए विनोद तिवारी ने तथ्यात्मक वक्तव्य दिया। अपनी निष्पत्तियों को प्रस्तुत करते हुए विषय को भटकने नहीं दिया। जिन्होंने विषय को बड़ी कुशलता से पटरी से उतरने नहीं दिया और उसमें सवालों तथा स्थापनाओं की गरिमा भरी, उनमें प्रमुख थे युवा कहानीकार राकेश मिश्र, युवा आलोचक वैभव सिंह और अध्यक्ष के रूप में कवि लेखक राजेश जोशी संयोग से जिनके जन्मदिन की खुशी और गरिमा सदन में उपस्थित रही। राकेश मिश्र ने न केवल कथेतर गद्य की लोकप्रियता में ऑथरशिप का महत्व बताया बल्कि उन्होंने भोपाल पर एक चरित्रमूलक टिप्पणी भी की कि जैसा भोपाल है, वैसे ही यहाँ के विषय ऊपर से बड़े सरल हैं मगर ध्यान से देखने पर जटिल और अनेक परतों वाले मिलते हैं। राजेश जोशी ने कथेतर गद्य की लोकप्रियता का कारण वर्तमान समाज में इन्सान की स्मृति और तकनीकी आधारित रिश्तों की पारस्परिकता को बताया। इनके अलावा वरिष्ठ आलोचक जयप्रकाश और कथाकार वंदना राग ने अपनी बातें विस्तार से कहीं। सत्र का संचालन युवा आलोचक अरूणेश शुक्ल ने ऊपर से दिखने वाली लापरवाही मगर जिम्मेदार संजीदगी से किया। अंतिम सत्र में महत्वपूर्ण कथाकारों यथा मुकेश वर्मा, अल्पना मिश्र, पंकज मित्र, मनोज पांडेय और प्रज्ञा ने कथा-पाठ किया। मनोज की कहानी 'तितलियाँ' ने कल्पनाशीलता एवं अनिश्चितता के वैभव, कदाचित बुरे चरित्र के मानवीय आयामों को मार्मिकता तथा सरोकारों के साथ मूर्त किया। इस सत्र का संचालन युवा कथाकार पंकज सुबीर ने किया और अध्यक्ष थे ख्यात कथाकार संतोष चौबे।

कुल मिलाकर दो दिवसीय रजत जयंति आयोजन जीवंत और श्रेष्ठ आयोजनों की ऐतिहासिक श्रृंखला में शामिल समझा जाना चाहिए। इस आयोजन के आलोक, स्मृतियाँ और विमर्श अवश्य ही साहित्यिक सुधिजनों को प्रेरित करते रहेंगे।

मोबाइलः 94250-14166

Follow us on /RNTUniv www.rntu.ac.in

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL *(Formerly known as AISECT University)*

AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

Where aspirations become achievements!

nirf
INDIA RANKINGS 2017
(Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India)
Among all Central, State, Private and Deemed universities

Ranked amongst Top 20 Engineering Universities in India — competition success review
Ranked amongst India's Top 30 Private Universities 2018 — INDIA TODAY
Awarded ★★★★ Rating for Best University of India 2018 — CAREERCONNECT
BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 — करियर्स 360
Recognised as one of the Leading Private Universities of India — OUTLOOK
Ranked Number 2 in Madhya Pradesh 2018 — competition success review

COURSES OFFERED 2018-19

Engineering & Technology | Management | Arts | Commerce
Computer Science & IT | Paramedical | YogaScience | Agriculture |
Mass Communication | Law | Nursing | Education | Ph.D. &
M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

AWARDS AND ACCOLADES

Most Innovative University of Central India" by News 18

RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018

RNTU Awarded as India's first Skill based University by Career Connect Magazine 2018

ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018

World Education Summit 2017 & 2017 (Dubai)

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Contact us : 9893350135, 8085384458, 9826812783

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
City Office : 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016,
Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email : info@rntu.ac.in

विगत 42 वर्षों से उज्जैन नगर के रंगकर्म की एक प्रतिष्ठित संस्था
मध्यप्रदेश नाटक लोककला अकादमी, उज्जैन

अकादमी द्वारा संचालित की जाने वाली नियमित गतिविधियां

1- प्रशिक्षण- नाट्य डिप्लोमा कोर्स
2- विशेषज्ञों के व्याख्यान
3- मंच सज्जा, प्रकाश और ध्वनि
4- अभिनय
5- पार्श्व मंच
6- माईम
(राष्ट्रीय माईम महोत्सवों का आयोजन)
7- लोक संस्कृति
8- विशेष अवसरों पर कालजयी संस्कृत नाटककारों के नाटकों का मंचन एवं प्रतिमाह अन्य नाट्य प्रदर्शन
9- चौपाल नाटक

मध्य प्रदेश नाटक लोककला अकादमी — पंजीकृत नं.5220/76

प्रधान कार्यालय- माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन, 456010
दूरभाष - 0734-2520263
संस्थापक : डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य

डॉ.निवेदिता वर्मा	राजीव शुक्ला	संजय मुंगी	प्रकाश बांठिया	कृष्णा बनर्जी
महानिदेशक	निदेशक	महासचिव	कार्यकारी अध्यक्ष	अध्यक्ष
मो.नं.94250-66911	मो.नं.94250-94611	मो.नं.85188-9988	मो.नं.98260-69558	मो.नं.098203-40589

श्रीराम दवे	जितेन्द्र टटवाल	हरदीप दायले	जितेंद्र वाड़िया
कार्यालय प्रमुख	निदेशक रंग मंडल	सचिव	सहसचिव
मो.नं.94259-15010	मो.नं.85188-9988	मो.नं.9770871304	मो.नं.79879-94939